सुनील बत्रा

बनाम

दिल्ली प्रशासन और अन्य

(Sunil Batra

Vs.

Delhi Administration and Others)

और

चार्ल्स गुरमुख सोबराज

बनाम

दिल्ली प्रशासन और अन्य

(Charles Gurmukh Sobraj

Vs.

Delhi Administration and Others)

(30 अगस्त, 1978)

मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर, एस० मुर्तज़ा फ़ज़ल अली, पी० एन० सिंघल और डी० ए० देसाई)

संविधान—भाग—3—मूल अधिकार—सिद्धदोष व्यक्ति निस्संदेह अपने मूल अधिकारों से पूर्णतया वंचित नहीं है, किन्तु किसी बंदी की स्वतंत्रता उसके निरुद्ध रहने के परिणामस्वरूप सीमित अवश्य है—दोषसिद्ध से व्यक्ति का 'व्यक्तित्व' समाप्त नहीं हो जाता है, लेकिन उसके अधिकार कारागार प्रशासन के मनमानेपन के अधीन होते हैं और कारागार के भीतर उस पर दण्डारोपण प्रक्रियागत रक्षोपायों के पालन पर निर्भर है।

संविधान—अनुच्छेद 13—कारागार अधिनियम, 1894 जैसे संविधान-पूर्व अधिनियम की सांविधानिकता पर आक्षेप किया जाना—न्यायालय का कर्त्तव्य है कि वह कारागार के अमानविक वातावरण तथा आंतरिक व्यवस्था और अनुशासन के भीतर सामंजस्य स्थापित

करे और इस बात पर ध्यान दे कि बंदी कारागार से भाग न निकले किन्तु अन्त में उसका पुनर्वास किया जा सके।

कानूनों और दस्तावेजों का निर्वचन—क्रमिक अर्थान्वयन द्वारा न्यायालयों का कर्त्तव्य है कि वे सूझबूझ से संविधान के मूल्यों से अपने आपको अवगत रखें और ऐसा अर्थान्वयन अपनाएं जो कि मानविक रूप से प्रश्नगत कानून को सांविधानिक रूप देता हो।

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9)—धारा 30(2)—निर्वचन और प्रविषय—धारा 30(2) बंदी प्राधिकारियों को यह प्राधिकार नहीं देती कि ये भारतीय दण्ड संहिता की धारा, 73 और 74 के अर्थान्तर्गत बंदी को एकांत रूप से निरूद्ध रखें।

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9)—धारा 30(2)—"मृत्यु दण्डादेश के अधीन बंदी"—अर्थान्वयन :

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1988 का 5)—धारा 366(2) और प्रारूप 40—उक्त धारा द्वारा अनुध्यात कारागार में अभिरक्षा।

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9)—धारा 30(2)—यह धारा न तो संविधान के अनुच्छेद 20(2) का और न ही अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करती है—पश्चादुक्त अनुच्छेद के अधीन जीवन और दैहिक स्वतंत्रता की गारंटी।

संविधान—अनुच्छेद 14 और 19—कारागार [अधिनियम, 1894 की धारा 30(2)]—संविधान के उक्त दोनों अनुच्छेदों का उल्लंघन नहीं करता है।

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9)—धारा 56—सांविधानिक विधिमान्यता—यह धारा कहां तक जेल अधीक्षक को इस बात के लिए सशक्त करती है कि उसे सलाखों में बंद रखे—यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन नहीं करती और न ही यह उनके अधिकारातीत है।

पिटीशनर को तीन विदेशी साथियों के साथ एक होटल में गिरफ्तार किया गया था। वह 1976 से लेकर हिरासत में है उसके बारे में 'इंटरपोल' गुप्त रिपोर्ट में यह कहा गया है कि वह एक अत्यंत खतरनाक व्यक्ति है और जहां तक उसके कारनामों और करतूतों का सवाल है उनमें जेल तोड़कर निकल

भागना और गम्भीर अपराध करना भी आता है । वह जुलाई 1976 से लेकर भागतः आंतरिक सुरक्षा बनाए रखना अधिनियम के अधीन और इस समय हत्या सहित गंभीर अपराधों का सामना करने वाले विचारणाधीन व्यक्ति के रूप में निरन्तर और अनिश्चित निरोध में है । लगभग 2 वर्ष तक प्रतिमास प्रत्येक दिन उसे 24 घंटे लोहे की कठोर सलाखों में बंद रखा गया है । संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उसने एक रिट पिटीशन फाइल किया जिसमें उसने यह शिकायत की कि हालांकि उसकी एड़ियों पर घाव हैं चिकित्सीय परामर्श के बावजूद भी उसे जेल की सलाखों में बंद रखा जा रहा है ।

राज्य ने प्रत्यर्थी को कारागार अधिनियम, 1894 की धारा 56 के अधीन उसे सलाखों में बंद रखने की प्रतिरक्षा पेश की । उक्त धारा में यह उपबंध किया गया है कि जब कभी जेल का अधीक्षक कैदियों की प्रकृति को देखते हुए यह आवश्यक समझता है कि किन्हीं कैदियों की सुरक्षित अभिरक्षा हेतु उन्हें सलाखों में बंद रखा जाना चाहिए, तो वह ऐसे नियमों और अनुदेशों के अधीन रहते हुए, जैसे कि महानिरीक्षक (इन्सपेक्टर जनरल) द्वारा स्थानीय सरकार की मंजूरी के साथ निर्धारित किए जाएँ, वह उन्हें ऐसे परिरुद्ध रखने का निदेश दे सकता है । इस न्यायालय ने एक पूर्ववर्ती अवसर पर सलाखों में कठिन कारावास की छूट के बारे में निदेश दिया था, किन्तु पिटीशनर का परिवाद यह है कि उसे इसके बावजूद ऐसी सलाखों में निरन्तर बंद रखा जा रहा है । उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत किए गए पिटीशनों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित--

न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर :

सोबराज को जो बेड़ियाँ पहनाई गई हैं, उन्हें तुरन्त खोल दिया जाए और उपवर्णित व्यादेशों का यथार्थ रूप से पालन किए बिना पुनः नहीं पहनाया जाएगा । कारागार संबंधी न्याय तथा भावना की घोर यंत्रणा पथ भ्रष्ट की परम्परा को विधायी उद्देश्य और पुनर्वासात्मक प्रक्रिया श्रृंखलापूर्ण विवद्ध रुग्ण मस्तिष्कों के पीछे सलाखों के लिए स्वास्थ्यकर आशा के रूप में पुनर्जन्म प्रदान करती हैं । यह सुधारात्मक आविर्भाव सामाजिक न्याय की सांविधानिक विवक्षा जिसके सूचक (मनमानापन) अनुच्छेद 19, युक्तियुक्तता का विरोध तथा अनुच्छेद 21 प्रक्रियागत मानविकता के प्रति संकेत करते हैं । (पैरा 189)

लोहे की सलाखों में जकड़े जाने में सामान्य रूप से एक बर्बरता है और जिस प्रकार कोड़े मारने की रीति को समाप्त किया जाना चाहिए उसी प्रकार इनको भी बंद किया जाना चाहिए । सभ्य जागरूकता बंदीगृहों की चार दीवारों

के अन्तर्गत यातना के विरुद्ध है। एकान्त परिरोध कोठरी में रखा जाना और किंचित् रूप से उपान्तरित ऐसी प्रक्रिया है जो इस प्रक्रिया में अमानविक तथा अविवेकशील है। जब ऐसी जेलों के एक वरिष्ठ अधिकारी की अनियमित तथा अप्रशिक्षित शक्ति द्वारा जिस मानव मनोविज्ञान, स्ट्रेसालोजी, शरीरविज्ञान की कोई शिक्षा न हो, अधिरोपित की जाती हैं तो यह अधिक खतरनाक होती है क्योंकि इसे मनोचिकित्सा में ऐसा कोई अन्य अनुक्रम, दबाव अथवा शारीरिक निकाय नहीं है जिससे चिकित्सीय अथवा मनोवैज्ञानिक परीक्षा पर निर्भर करना पड़े, पूर्व इसके कि उसे सलाखों में बंद किया जाए या एकान्तवास में रखा जाए जैसे कि सुनवाई करने का कोई अवसर उसे नुकसान पहुँचाए बिना प्राप्त न हो, जिसके 'कारण' वृत्तान्त पर्णी पर दिए गए होते हैं और इसलिए वह उन्हें न जान सके और जर्नल में भी ऐसा ही अभिलिखित किया गया हो जिसके प्रति बंदी की कोई पहुंच न हो। कारागार के महानिरीक्षक की परामर्शदात्री शक्ति ऐसी दशा में भ्रामक होती है जबकि बन्दी को पुनरीक्षण को भंग करने के अधिकार का पता नहीं होता और महानिरीक्षक का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह एकान्त परिरोध में रखे गए या श्रृंखलाबद्ध व्यक्तियों का दौरा करे और इस प्रकार दण्डादिष्ट प्रत्येक व्यक्ति की परीक्षा करे। जेल के निरीक्षकों को अधीक्षक के आदेशों को रद्द करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं होती और न ही उन पर यह बाध्यता होती है कि वे ऐसी जांच करें, सिवाय इसके कि वे उस पर दयाभाव प्रकट कर सकते हैं और अपने टिप्पण अभिलिखित कर सकते हैं। जब दौरा करने पर आए अधिकारी अथवा उच्चपद-प्राप्त व्यक्ति उनको बाहर लाने के लिए कहते हैं तो बन्दियों की कालावधिक परेडें राजनीतिक दृष्टिकोण से चिड़ियाघर में सर्कस के रूप में दर्शित होती हैं अथवा/और जर्नल में की गई प्रविष्टियां तथा वृत्तान्त-पर्णियां नियम के अनुसार एक जादू का काम देती हैं, जहां कि उल्लेखनीय मुख्य प्रश्न यह है कि कारागार के अन्तर्गत वह सार्वजनिक प्रदर्शन के पश्चात् ऐसे बन्दियों के रूप में अंकित किए जाते हैं जो कि श्रृंखलाबद्ध अधिकारों की कठोर दयालुता पर निर्भर करते हैं, क्योंकि कारागार के अन्तर्गत कोई सक्रिया विधिक, सहाय्य प्रयोजन विद्यमान नहीं होते। विधि का कठोर नियम, जो कि असभ्य तथा स्पष्ट होता है, किसी मनमाने, युक्तियुक्त तथा प्रक्रियागत हृदय विहीन कार्य के सिवाय कायम नहीं रखा जा सकता है। अनुच्छेद 13 के साथ पठित अनुच्छेद 14, 19 और 21 के घातक आघात से उद्भूत उसके जीवन के संकट में किसी ऐसी दलील की आवश्यकता नहीं है जो कि दूरस्थ हो। 'खतरनाक' तथा 'आवश्यक'

के समान ऐसे शब्दों में उपचारात्मक मार्गदर्शन के लिए गम्भीर खोज, पत्थर की दीवारों और लोहे की सलाखों की पृष्ठभूमि को विस्मित करते हुए अपरिष्कृत वास्तविकता को विदाई देते हैं और शाब्दिक मार्ग को समाविष्ट करती है। विधि कोई निरर्थक जादू टोना नहीं है, बल्कि वह तुरन्त व्यावहारिक तथा बुद्धिमत्तापूर्वक पद्धति है और वह कारागार के अधिकारियों द्वारा अभिरक्षा को बढ़ा-चढ़ा कर बताए गए भावों के समक्ष अपनी शक्ति को अभ्यर्पित नहीं करती है। 'एकान्तवास' तथा 'बेड़ियों' के अनुकल्प के रूप में कारागृह की तकनीक उपलभ्य है, यदि इसके लिए इच्छा विद्यमान हो, सिवाय वहां कि जहां कि उदासीनता, अक्षमता तथा सूझबूझ की अविद्यमान्यता कारागार अधिकारियों को बन्दी बनाती हो। सामाजिक न्याय तन्द्रागत नहीं पड़ा रहेगा यदि संविधान लड़खड़ा कर लटक जाता है जहां कि उपभोक्ताओं को इसकी मानविकता की अत्यन्त आवश्यकता होती है। (पैरा 192)

निर्वचन द्वारा यथा मानविक रूप से परिशीलन किए जाने पर कारागार अधिनियम की धारा 30 और धारा 56 की विधिमत्ता को कायम रखते हैं। यह और अन्य उपबंध जो कि वर्तमान दण्डात्मक मूल्यों से किंचित् विसंगत हैं तथा मानव अधिकारों के आधारों पर ध्यान नहीं देते हैं, इसलिए नया विधान लॉ का उन्हें पुनरीक्षित कर दिया जाएगा। इस बात का अफसोस है कि कारागार मैनुअल अधिकतर कठोर उपनिवेषक संग्रह और उनकी प्रतियां भी बंदियों को प्राप्य नहीं हैं। सभ्य समाज में निश्चित रूप से ऐसे दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए जिससे मनुष्य की गरिमा में ह्रास को अथवा उनके शरीर तथा भावना को चोट पहुंचे। दण्डादेश का महत्वपूर्ण उद्देश्य सुधारात्मक है जिससे कि दण्डादेश व्यक्ति की भावना कोई सामाजिक प्रतिरक्षा सुनिश्चित की जा सके। जहां कि कारागार संबंधी व्यवहार के अन्तर्गत सुधारात्मक प्रयोजन का परित्याग किया जाता है और ऐसी परिपाटी बनाई जाती है जो कि अमानवीकरण की तकनीकों के रूप में होती है वहां अयुक्तियुक्तता के विरोधी छोर पर मंडराना विनाशकारी, अनुपयोगी तथा अव्यवहारिक होगा। (अनुच्छेद 19) और न ही यातना संबंधी तकनीकें निवारात्मक प्रयोजन धारण करके सांविधानिक चुनौती से बच सकती हैं। स्वाभाविक रूप से अमानविकता अभिरक्षा को जिम्मेदार ठहराना पिछले दरवाजे से निकलकर अनधिकृत कर देना है क्योंकि वर्जन बर्बरता का होता है। उसकी आवश्यकता दण्डात्मक अथवा प्रतिषेधक है। (पैरा 197)

एकांत परिरोध जहां वह कुचल दिया जाए तथा सीमांत रूप से उपान्तरित कर दिया जाए, धारा 30 द्वारा 'मृत्यु दण्डादेश' बन्दियों के लिए

मंजूरशुदा नहीं है। किन्तु यह उस धारा के अधीन वैध है कि ऐसे दण्डादिष्ट व्यक्तियों को शस्त्र कारागार समुदाय से ऐसे समयों पर अलग रखा जाए जब कि बन्दी सामान्य रूप से जेल में बन्द रहते हैं। बंदियों की विशष देखरेख जो कि अभिरक्षकों द्वारा ऐसे दण्डादेश में की जाती है उचित है। हो सकता है कि एकान्तता का अधिक्रमण अनिवार्य है। किन्तु अभिरक्षकों के लिए यह आवश्यक है कि वे व्यवहार में कम-से-कम मानविक एकान्तता प्रदान करेंगे। (पैरा 197)

आवश्यक विवक्षा द्वारा मृत्यु दण्डादेश के अधीन बंदियों को ऐसी किन्हीं सामूहिक सुविधाओं से वंचित नहीं किया जाएगा, जैसे कि खेलकूद, समाचार-पत्र पुस्तकें, इधर-उधर घूमना और बन्दियों तथा मिलने के लिए आये व्यक्तियों से मुलाकात करना, किन्तु यह कारागार प्रबन्ध के युक्तियुक्त विनिमय के अध्यधीन होगा। इस बात का उल्लेख कर दिया जाना चाहिए कि धारा 30 बंदीकरण के दण्डादेश के लिए कोई प्रस्थापन नहीं है और उसमें मात्र वह रीति विहित की गई है जिसके अनुसार दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 366 द्वारा प्राधिकृत सुरक्षित जेल अभिरक्षा की व्यवस्था की जाती है। (पैरा 197)

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि बंदी सोच-विचार तथा पश्चात्ताप के लिए प्रार्थना करने के लिए और सर्वशक्तिमान के सम्मुख नतमस्क होने के लिए हुई है अथवा कुटुम्ब या मित्रों के साथ मेल-मिलाप के लिए अवसरों की वांछा करता है तो ऐसी सुविधाएं उदारपूर्वक अनुदत्त की जाएंगी। किन्तु ऐसा करने में उसकी आत्मा जिस प्रपीड़क यन्त्रणा में से मौत के घाट उतारे जाने के कारण गुज़र रही है उस समय को ध्यान में रखते हुए इसके प्रति समाज उसके लिए करुणामय रूप से उत्तरदायी है जिसका जीवन वह ले रहा है। (पैरा 197)

धारा 30 (2) के अधीन तात्विक अभिनिर्धारण यह है कि कोई व्यक्ति ऐसी दशा में भी मृत्यु के दण्डादेश के अधीन नहीं होता जब कि सेशन न्यायालय ने उसे उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए जाने के अध्यधीन रहते हुए दण्डादेश दिया हो। उच्च न्यायालय पुष्टिकरण द्वारा अथवा नए सिरे से अपील अधिरोपण मृत्यु शास्ति से दण्डादिष्ट नहीं होता जब तक कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील सम्भाव्य है या समावेदित की गई है अथवा लम्बित है। यदि इस न्यायालय द्वारा दण्डादेश दे दिया गया है तो धारा 30 उसे समाविष्ट नहीं करती जब तक कि राज्यपाल और[1] या राष्ट्रपति के समक्ष

उसका पिटीशन संविधान द्वारा संहिता तथा कारागार नियमों द्वारा निपटा न दिया गया हो। निस्सन्देह, राज्यपाल तथा राष्ट्रपति द्वारा एक बार रद्द कर दिए जाने पर और अतिरिक्त आवेदन किए जाने पर कार्यकारियों द्वारा फांसी के फंदे पर लटकाए जाने से रोका नहीं जा सकता, तो वह दण्डादेश के अध्यधीन है भले ही वह अतिरिक्त रहम के लिए पिटीशन करता रहे। ऐसे अंतराल में वह अभिरक्षात्मक विलगता का भाग होता है जो कि धारा 30 (2) में विनिर्दिष्ट की गई है और जो उक्त उपबंधों के समनुदिष्ट सुधारात्मक अर्थ के अधीन है। मृत्यु दण्डादेश के अधीन से अन्तिम रूप से निष्पाद्य मृत्यु दण्डादेश के अधीन होना अभिप्रेत है। (पैरा 197)

यदि स्पष्ट तथा वर्तमान हिंसा का खतरा अथवा अभिरक्षा के उल्लंघन का किया जाना संभावित हो और ऐसा नैसर्गिक न्याय में व्यवस्था में स्वयं औचित्य के नियम को ध्यान में रखते हुए माना जाए तो मैं ऐसे मृत्यु दण्डादेश बन्दी पर अतिरिक्त निर्बन्धन लगाने के विचार को अनुचित नहीं समझता हूँ। (1) धारा 56 को विधि के नियम द्वारा सिधाया जाना चाहिए तथा उसमें कांटछांट की जानी चाहिए और कारागार शासकीय दृष्टि से 'एन इम्पीरियम इन इम्पीरियों' नहीं समझा जाएगा। अधीक्षक की शक्ति में कांट-छांट की जाएगी और उसके विवेकाधिकार को उपदर्शित रीति में नियन्त्रित किया जाएगा। (2) विचारणाधीन व्यक्तियों के बारे में यह समझा जाएगा कि वह अभिरक्षा में हैं, किन्तु वे दण्डात्मक नहीं मानते रहे हैं। यहां तक कि उनके साथ सिद्धदोष व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक शिथिल रूप से व्यवहार किया जाएगा। (3) श्रृंखलाएं विशेष रूप से बेड़ियां, मानव गरिमा के उल्लंघन के रूप में, चाहे ये कारागारों के अन्तर्गत हो या उनसे बाहर हो, पास नहीं फटकने दी जाएंगी। जब अभियुक्त व्यक्ति को न्यायालय से बाहर ले जाया जाता है या न्यायालय में वापस लाया जाता है तो अंधाधुन्ध रूप से हथकड़ियां नहीं पहनाई जाएंगी और कारागार के निवासियों को जबरन श्रृंखलाएं अवैध हैं और उन्हें तुरन्त समाप्त कर दिया जाएगा, सिवाए थोड़े से मामलों के जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है अव्यावहारिक रूप से हथकड़ियां पहनाना और जनता के बीच श्रृंखलाबद्ध करना सूक्ष्म संवेदनशीलताओं के लिए शर्मनाक है और हमारी संस्कृति पर एक लांछन है।

जहां किसी विचारणाधीन व्यक्ति की हिंसात्मक तथा भाग निकलने की प्रवृत्ति हो, वहाँ मानविक रूप से क्रमिक तौर पर सलाखों का निबन्धन अनुज्ञेय है, यदि और केवल यदि अन्य अनुशासनिक अनुकल्प निष्क्रिय सिद्ध होते हैं।

सबूत की आधारशिला अभिरक्षक पर है और यदि वह असफल रहता है तो विधि की दृष्टि से यह दायित्वाधीन होगा। (पैरा 197)

किसी भी दशा में शृंखलाबंधन दण्डात्मक शृंखलाबंधन के लिए निर्धारित अन्तरालों, अवस्थाओं और अधिकतम सीमाओं से अधिक नहीं होंगे। वे संक्षिप्त कालावधि के लिए होंगे, नम्र स्वरूप के होंगे और यदि घाव विद्यमान हो तो कदापि काम में नहीं लाए जाएंगे। (पैरा 197)

बन्धनों को अधिरोपित करने का विवेकाधिकार न्यायिकवत् उपेक्षा के अध्यधीन है, भले ही वह अभिरक्षा के कारणों के लिए तात्पर्यित रूप से अधिरोपित किया गया हो। (पैरा 197)

कोई पूर्व सुनवाई, चाहे वह कितनी भी न्यून क्यों न हो, दोषियों को प्रदान की जाएगी। आपवादिक मामलों में सुनवाई तुरन्त पश्चात् की जा सकती है। **गिल वाले मामले** में तथा **मेनका गांधी वाले मामले में** जो नियम इंगित किया गया है वह मार्गदर्शक के रूप में काम करता है। (पैरा 197)

दोषी को शृंखलाबद्ध किए जाने के आधारों से अवगत कराया जाएगा। और जब शृंखलाबद्ध करने का विनिश्चय किया जाता है तो पत्रिका जर्नल में तथा बन्दी की वृत्तान्तपर्णी में राज्य की भाषा में कारण अभिलिखित किए जाएंगे। यदि वह इस भाषा से अनभिज्ञ हो तो यथासम्भव उसकी भाषा में ही उसे संसूचित किया जाएगा। यह कारागार के दण्ड सम्बन्धी मामलों को उसी प्रकार लागू होगा जैसे कि सुरक्षा सम्बन्धी जंजीरों को।

अनुशासन अथवा अभिरक्षा के लिए निवारक और दण्डात्मक कार्यवाही के स्वतन्त्र पुनर्विलोकन के लिए उपबंध के अभाव में ऐसी कार्यवाही मनमानी और अनुचित तथा अयुक्तियुक्त रूप में अविधिमान्य होगी। तत्पश्चात् कारागार अधिकारी बन्दी की देह को सिविल तथा दाण्डिक उपहति पहुंचाने के दायित्वाधीन होंगे। राज्य अत्यावश्यक रूप से लाजमी प्रतिरक्षात्मक पद्धति तथा प्रक्रिया को इस निमित्त स्थापित करेगा अथवा उसे सुदृढ़ रूप देगा जैसे कि पहले से अधिनियम के अन्तरंग भाग में विद्यमान है। (पैरा 197)

बन्दियों को विधिक सहायता प्रदान की जाएगी ताकि वे कारागार प्राधिकारों से न्याय की मांग कर सकें और यदि आवश्यक हो तो न्यायालय में उस पर आक्षेप कर सकें जो कि ऐसे मामलों में होगा जहां वे इतने निर्धन हों कि वे अपने आप अपनी अभिरक्षा न कर सकते हों। यदि वकील की सेवाएं प्रदान नहीं की जाती हैं, विनिश्चयात्मक प्रक्रिया अनुचित तथा अयुक्तियुक्त हो जाती

है, विशेष रूप से क्योंकि विधि का नियम किसी निर्योग्य बन्दी के लिए विनष्ट हो जाता है यदि वह काउन्सेल न रख सके तथा उसकी फीस अदा न कर सके। मोटे तौर पर, बन्दी निर्धन व्यक्ति होते हैं जिनमें विधिक ज्ञान का अभाव होता है और वे जेलर के कम्पायमान कर देने वाले नियन्त्रण के अधीन, मानो कि उसकी दया पर रहते हैं तथा विधिक कार्यवाही करने के लिए अपने नातेदारों या मित्रों से मिलने में असमर्थ होते हैं जहां कोई उपचार मृतप्राय हो वहां अधिकार केवल मुद्रित शब्दों मात्र में विद्यमान होता है। अनुच्छेद 39-क इस संदर्भ में सुसंगत है। अनुच्छेद 19 का ऐसी दशा में उल्लंघन हो जाएगा जिसमें कि प्रक्रिया अयुक्तियुक्त होगी। अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण किया जाएगा क्योंकि प्रक्रिया अनुचित और मनमानी है। मेनका गांधी वाले मामले में इस नियम को त्रुटिहीन रूप में कथित किया गया है। (पैरा 197)

दिन बीत जाने के पश्चात् बेड़ियां नहीं पहनाई जाएंगी क्योंकि सलाखों के अन्तर्गत बन्द किए गए बन्दियों पर रात्रि में पहनाई गई जंजीरें साधारणतया अनपेक्षित हैं, यदि सुरक्षा की दृष्टि से देखा जाए। (पैरा 197).

सलाखों का दीर्घकालीन रूप से जारी रखा जाना, दण्डात्मक अथवा अवरोधक कदम के रूप में किसी बाह्य निरीक्षक, जैसे मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अथवा सेशन न्यायाधीश के पूर्व अनुमोदन के अधीन होगा जोकि संक्षेप में दोषी की सुनवाई करेगा और कारणों का कथन करेगा। वे अधिकतम केन्द्रीय कारागारों के पदेन निरीक्षक अधिकारी होते हैं। (पैरा 197)

कारागारों का महानिरीक्षक शीघ्रातिशीघ्र श्रृंखलाबद्ध कैदियों द्वारा प्रस्तुत किए गए पुनरीक्षण पिटीशनों पर विचार करेगा और यह निदेश देगा कि क्या श्रृंखलाबद्ध किया जाना चाहिए या नहीं किया जाना चाहिए। ऐसे तुरन्त विनिश्चय के अभाव में, यह समझा जाएगा कि श्रृंखलाओं से बद्ध किए जाने के विरुद्ध आदेश दे दिया गया है और श्रृंखलाओं को हटा दिया जाएगा। दण्डात्मक 'निहित हित' कभी भी निवारात्मक पर्दे में ढका रहता है जब कि उसे चुनौती दी जाती है, और उसमें अविश्वसनीय विश्वास की रेत में अपने सिरों को दबा कर अविवेकशील अन्याय को दूर नहीं कर सकते हैं। न्यायालय उतना विचक्षण होना चाहिए कि वह सुधारात्मक निर्वचन द्वारा बंदियों के विरुद्ध इन अपराधों को समाप्त कर सके। (पैरा 199)

जागरूकता का परिवर्तन जकड़ता सामाजिक उत्सादन को दूर करने का एक निश्चित अभिरक्षात्मक उपाय है। यह मानव के विकास के लिए एक कुंजी है

जो कि कारागार के अन्तर्गत और बाहर मनुष्य के अधिकारों तथा उत्तर-दायित्वों का केन्द्र है। (पैरा 200)

हमारे बन्दीगृहों में परिवर्तन की वायु का संचार किया जाना चाहिए और आत्माभिव्यक्ति तथा आत्मसम्मान एवं आत्मानुभूति अमानवीकृत उपचारों के स्थान पर सृजनात्मक रूप से प्रतिस्थापित कर दी जानी चाहिए और कारागार के स्थलों में आज भी जो वहशी जीवन की तकनीकें विद्यमान हैं उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया जाना चाहिए। कुछ कारावास निवासी गुण्डे जो आज भी विद्यमान हैं अनेक मानविक व्यक्तियों को शहीद नहीं बनाएंगे और इन गिने-चुने व्यक्तियों में से भी विश्वास धीरे-धीरे आस्था का रूप धारण कर लेगा। सर्वोदय और अन्त्योदय के आकार दाण्डिक स्वरूप के होते हैं जिन्हें कि हमारी सामाजिक न्याय की जागरूकता को समझना चाहिए और वास्तविक रूप देना चाहिए। इस सम्प्रेक्षण को एक उदात्त किन्तु अधूरे अनुभव (अथवा अननुध्यात महाकाव्य) के प्रति निर्देश से न्यायोचित ठहराया जाएगा जिसके द्वारा श्री जयप्रकाश नारायण ने पश्चाताप करने वाले मृत्यु के घाट उतारने वाले चम्बल घाटी के खतरनाक डकैतों के जीवन में, जो कि जेल के अन्तर्गत थे, अथवा बाहर, महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाया था। उनका पुनर्वास करने के लिए जो पश्चात्वर्ती कार्यवाही की गई वह सम्भवतः विफल रही। (पैरा 203)

जागरूकता के स्तर को उभारने की तकनीक, दबाकर नहीं बल्कि घृणा उत्पादित करने से कारावास के वातावरण को सुरक्षित करने की रीति एवं सामाजिक प्रतिरक्षा को सुरक्षित बनाने की रीति दर्शित करती है। दण्ड वाद तथा जागरूकता सामाजिक संरक्षण में एक दूसरे के साथी हैं। (पैरा 204)

हालांकि धारा 30 शक्तिमर्न्तगत है, पिटीशनर को कालकोठरी में निरन्तर अभिरक्षक के अधीन अकेले नहीं रखा जाएगा जब तक कि वह स्वयं अनन्य तथा एकाकी जीवन की मांग न करे। यदि वह निरन्तर उच्चतम न्यायालय तक एवं सर्वोच्च कार्यपालक पर्यन्त पराजित होता जाता है और, केवल तभी, उसे अन्य बन्दियों से अलग तथा सशस्त्र अभिरक्षक की निरन्तर देख-रेख में रखा जाएगा। निस्सन्देह, यदि वे आधार जो साबित किए जा चुके हैं अनुशासनिक विलगता की अपेक्षा करते हैं, तो उचित सुनवाई एवं पुनर्विलोकन किए जाने के पश्चात् यह अनुज्ञेय है। (पैरा 205)

जब तक कि सांविधानिक गारण्टियां विनिमय साध्य न हों (नॉन-

नेगोशिएबल) तब तक राष्ट्रीय मांग-पत्र में निहित मानव अधिकारों को प्राधिकारी द्वारा दास नहीं बनाया जाएगा। आपत्काल, आकस्मिकता, संकटापन्नता, अनुशासन, सुरक्षा तथा स्वायत्तता सैद्धान्तिक रूप से ऐसी अभिव्यक्तियां हैं जो देखने में अच्छी लगती हैं अथवा ऐसे भाण्डागार हैं जिसमें कि मानव रूपी पण्य क्रूरतापूर्वक रखे जाते हैं और उसमें निवास करने वालों का विचित्र वर्ण दोलायमान काष्ठा रूपी युवकों से लेकर प्रबल विसम्मति करने वालों पर्यन्त विद्यमान है, वहां न्यायालय और अन्य सांविधानिक अभिकरणों को ऐसी सम्मति प्रदान नहीं करनी चाहिए जिससे कि जेलों को न्यायाधीश-रुद्ध बनाकर अश्रुयुक्त अन्याय में परिवर्तित कर दिया जाए। जब तक कि वर्तमान कारागार-निदान का उपचार नहीं हो जाता और कारागार न्याय बहाल नहीं कर दिया जाता तब तक पत्थर की कठोर दीवारें और लोहे की सलाखें आज के समाज के सम्मुख दाण्डिक कठिनाई को हल नहीं कर सकेंगी। (पैरा 208)

धारा 56 का मात्र परिशीलन यह दर्शाएगा कि अधीक्षक किसी बन्दी को (i) जब कि वह आवश्यक समझे ; (ii) या तो कारागार की दशा में या बन्दी के चाल चलन के प्रति निर्देश से; और (iii) बन्दी की सुरक्षा के लिए बेड़ियां पहना सकेगा। चूंकि यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि पिटीशनर को तिहाड़ केन्द्रीय कारागार की वास्तविक दशा को ध्यान में रखते हुए सलाखों और बेड़ियों में रखा गया था। परन्तु अधीक्षक को बेड़ियों और सलाखों में बन्दी को रखने की आवश्यकता के बारे में पहले अपना समाधान करना है और निश्चित रूप से (आवश्यकता) मात्र औचित्य के विरुद्ध है। बन्दी की सलाखों और बेड़ियों में रखने की आवश्यकता की बन्दी के चाल-चलन और बन्दी की सुरक्षा के संदर्भ में परीक्षा की जानी चाहिए। बन्दी की सुरक्षा में, जिसे सलाखों और बेड़ियों में रखा जा रहा है और कारागार में उसके साथी दोनों आ जाते हैं यह ध्यान रखना चाहिए कि अधीक्षक से इस बात की अपेक्षा है कि वह अपनी पत्रिका (जर्नल) में और बन्दी की वृत्तान्त पर्णी (हिस्ट्री टिकट) में पूर्ण रूप से बन्दी को सलाखें और बेड़ियां पहनाने के कारण अभिलिखित करेगा। जबकि यह कहा गया कि धारा 56 द्वारा प्रदत्त शक्ति असरणीबद्ध और अनियन्त्रित है, इस बात को ध्यान में रखना होता है कि इस चुनौती का विधान की विषय-वस्तु अर्थात् कारागारों के संदर्भ में परीक्षा करनी होती है और स्वयं विषय-वस्तु कुछ मामलों में मार्गदर्शक सिद्धान्त बता देती है। धारा 56 के अधीन शक्ति का केवल उन्हीं कारणों और विचारों से प्रयोग किया जा सकता है जो कानून के उद्देश्य अर्थात्

बन्दी के रक्षोपाय से सम्बन्धित हो जो बन्दी के चाल-चलन और उसकी प्रवृत्ति के सम्बन्ध में विचार्य है। इन और सभी प्रकार के अन्य विचारों का सीधा सम्बन्ध बन्दियों के रक्षोपाय से है चूंकि उनका उद्देश्य मुख्य रूप से उनके भाग निकलने से सम्बन्धित है। सलाखों और बेड़ियों में किसी बन्दी को रखने की आवश्यकता का अवधारण प्रत्येक बन्दी के विशेष और विशिष्ट चाल-चलन को ध्यान में रखते हुए करना होता है। बन्दी द्वारा किए गए अपराध, दण्डादेश का स्वरूप और उसकी लम्बाई या उसका विस्तार उस प्रश्न का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं है। (पैरा 245)

धारा 56 के अधीन शक्ति अनर्गल नहीं है चूंकि पैरा 399 के संदर्भ में उप पैरा 3 द्वारा यथा-अपेक्षित विशेष सतर्कता इस तथ्य के होते हुए भी कि क्या उनका विचारण किया जाना है या उन्हें दोषसिद्ध कर दिया गया है, खतरनाक बन्दियों को निरापद सुरक्षा के लिए बरतनी होगी। संक्षिप्त रूप से इस बात की परिभाषा करना बड़ा कठिन है कि बन्दी के कौन से गुण उसके 'खतरनाक' के रूप में वर्गीकरण को न्यायोचित ठहराते हैं। परन्तु ये कुछ व्यावहारिक समस्याएं हैं जिन्हें व्यावहारिक और हस्तक्षेपी विचार पर निपटाना होगा जो जेल प्रशासकों के कार्य का निर्वहन करने वाले व्यक्ति ही कर सकते हैं। (पैरा 246)

हम रक्षोपाय की सरणीबद्धता पर विचार करेंगे जो स्वयं धारा 56 में और पैरा 399 में प्रतिबिम्बित है जो यद्यपि कानूनी नहीं है, अपितु अधीक्षक पर आबद्धकर है। सलाखों और बेड़ियों में बंदी को रखने की आवश्यकता का अवधारण बन्दी के चाल-चलन से संगत होना चाहिए और बन्दी की निरापद सुरक्षा के अनुरूप होना चाहिए। ऐसा सब कुछ प्रत्येक बन्दी के विशेष और विशिष्ट गुणों पर विचार करने के पश्चात् ही किया जा सकता है। साधारण या सामान्य कारण इसके लिए पर्याप्त नहीं हो सकते। इन कारणों को अधीक्षक की पत्रिका और बन्दी के हिस्ट्री टिकट में पूर्ण रूप से अभिलिखित करना होगा। इन कारणों को देने का कर्त्तव्य जो कम से कम न्यायसंगत हो, अधीक्षक को प्रदत्त मनमानी शक्ति को कम कर देगा। यह बात स्पष्ट की जा सकती है कि जहां तक सम्भव हो इन कारणों को बन्दी द्वारा सुगम और समझने योग्य भाषा में बन्दी के हिस्ट्री टिकट में अभिलिखित किया जाना चाहिए जिससे कि अगले रक्षोपाय को अर्थात् कारागार के महा-निदेशक को पैरा 69 के अधीन पुनरीक्षण पिटीशन को प्रभावी बनाया जा सके। अधीक्षक पर एक और बाध्यता यह है कि सुरक्षा के लिए अधिरोपित बेड़ियां अधीक्षक द्वारा उस समय तुरन्त हटा ली जाएंगी जब कि उस की यह राय बन जाती है कि उसे

पैरा 435 द्वारा यथाअपेक्षित सुरक्षित रूप से किया जा सकता है। पैरा 435 की अपेक्षाओं को पूर्ण रूप से प्रभावित करने के लिए अधीक्षक को इस बात को अभिनिश्चित करने के लिए नियमित और सामान्य अन्तरालों में बन्दी के मामले का स्वयं पुनर्विलोकन करना होगा कि क्या बेड़ियां सुरक्षा की अपेक्षा को ध्यान में रखते हुए हटाई जा सकती हैं। इस प्रकार से यह बात स्पष्ट हो जाती हैं कि धारा 56 में काफी मार्गदर्शन है जिसमें अधीक्षक द्वारा सलाखों और बेड़ियों के दुष्प्रयोग के विरुद्ध काफी रक्षोपाय हैं। कारण देने के कर्त्तव्य के साथ ऐसा परिगत परिसरीय मनमानापन जो उच्च प्राधिकारियों द्वारा पुनरीक्षणीय है, उसे मनमाना नहीं कहा जा सकता जिससे कि ये अनुच्छेद 14 का अतिक्रामी हो। (पैरा 247)

न्यायालय इस बात से अचेत नहीं है कि मानस के साथ ऐसा व्यवहार जो मानव गरिमा का निरादर करता है, परिहार्य यातना अधिरोपित करता है और मानव को पशु के स्तर तक गिरा देता है, निश्चित रूप से मनमाना होगा और उसे अनुच्छेद 14 के अधीन प्रश्नगत किया जा सकता है। फिर, बन्दी की सुरक्षा का सम्यक् ध्यान और कारागार की सुरक्षा का ध्यान किए बिना काफी लम्बी कालावधि तक असाधारण रूप से सलाखें और बेड़ियां पहनाना निश्चित रूप से धारा 56 के अधीन न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। फिर भी इस मामले में यह पता चला कि चिकित्सय राय के अनुसार सलाखों और बेड़ियों को हटाने का सुझाव दिया गया था और यह अभिकथन किया गया कि उन्हें उसके पश्चात् भी बनाए रखा गया है। कोई भी व्यक्ति काफी जोरदार शब्दों में की गई इस बहस का समर्थन नहीं कर सकता कि जेल से भागने को सलाखों और बेड़ियों में निरन्तर रूप से बन्दी को रखने के सिवाय नहीं रोका जा सकता। कारागार प्रशासन और शासकों के बारे में यह दुःखद् टिप्पणी होगी। इसलिए धारा 56 असाधारण रूप से लम्बी कालावधि के लिए रात दिन सलाखों और बेड़ियों के प्रयोग को अनुज्ञात नहीं करती और वह जब कि बन्दी किसी सुरक्षित कोठरी में परिरुद्ध हो जहाँ से भागना कुछ दुर्गम्य हो। अब जब कि पिटीश्नर की सलाखें और बेड़ियां फरवरी, 1978 में हटा दी गई हैं तो उन्हें फिर से अधिरोपित करने, का प्रश्न तब तक नहीं उठता जब तक कि उसमें वर्णित अपेक्षा और इसमें उपबन्धित रक्षोपायों का पालन न किया जाए। (पैरा 250)

धारा 56 अनुच्छेद 14 और 21 की अतिक्रामी नहीं है। इसलिए चुनौती असफल होती है। (पैरा 251)

जेल नियमावली (मैन्युल) विस्तृत रूप से समयातीत है और उसमें कोड़े मारने और गाँधी टोपी के प्रयोग का वर्जन जैसी कालदोष-विषयक बातें अभी भी हैं। उसके पुनर्वास और सामाजिक जीवन की मुख्य धारा से उसे बनाए रखने और उसमें उसकी स्वीकृति के दृष्टिकोण से बन्दी के साथ बर्बर व्यवहार अन्त में प्रति उत्पादक बन जाता है। (पैरा 252)

पैरा

[1978] 1978 (1) एस० सी० सी० 248=[1979] 1 उम० नि० प० 243 :
मेनका गांधी बनाम भारत संघ और एक अन्य
(Maneka Gandhi *Vs.* The Union of India and another); 53

[1977] (1977) 3 एस० सी० आर० 383 :
अब्दुल अजीज बनाम कर्नाटक राज्य
(Abdul Azeez *Vs.* The State of Karnataka) ; 114

[1977] 1977 (3) एस० सी० सी० 287=[1978] 3 उम० नि० प० 712 :
मुहम्मद गियासुद्दीन बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य
(Mohammad Giasuddin *Vs.* The State of A.P.); 33

[1976] (1976) 2 एस० सी० आर० 289=[1976] 3 उम० नि० प० 883 :
डी० के० शर्मा बनाम मध्य प्रदेश राज्य
(D.K. Sharma *Vs.* State of Madhya Pradesh) ; 114

[1975] (1975) 3 एस० सी० आर० 574=[1975] 2 उम० नि० प० 1527 :
महाराष्ट्र राज्य बनाम सिंधी
(The State of Maharashtra *Vs.* Sindhi); 223

[1975] 1975 (3) एस० सी० सी० 185 :
राज्य बनाम पांडुरंग
(The State *Vs.* Pandurang) ; 57

[1974] (1974) 40 लाइयर्स एडीशन सेकेंड 224:
प्रोक्यूनियर बनाम मार्टनेग
(Procunier *Vs.* Martineg) ; 212

[1974] (1974) 417 यू० एस० 817 :
ईव पेल बनाम प्रोकनयूनर
(Eve Pell *Vs.* Procunier); 9

[1974] (1974) 41 लाइयर्स एडीशन सेकेन्ड 935 :
चार्ल्स वुल्फ बनाम मैकडोनल
(Charles Wolf *Vs.* Mac Donnell); 9

[1973] (1973) 2 एस० सी० आर० 541 :
जगमोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
(Jagmohan Singh *Vs.* The State of U.P); 241

[1971] [1971) 1 एस० सी० आर० 512=[1974] 3 उम० नि० प० 1045 :
आर० सी० कूपर बनाम भारत संघ
(R. C. Cooper *Vs.* The Union of India); 53

[1970] 312 एफ० सप्ली० 863 (1970):
सास्ट्रे बनाम राकफेल्लर
(Sostre *Vs.* Rockfeller); 126

[1967] 384 फेडरल रिपोर्टर सेकेन्ड सीरीज़ खण्ड 384, एफ० द्वि 367 :
कैनेथग्राहम बनाम जे० टी० विलिंधम
(Kenneth Grahm *Vs.* J. T. Willingham); 77

[1966] (1966) 1 एस० सी० आर० 702 :
राज्य बनाम पांडुरंग
(The State *Vs.* Pandurang); 57

[1966] 383 यू० एस० 252 (1966) :
हिक्स वाला मामला
(Hiks' case); 140

[1964] ए० आई० आर० 1964 एस० सी० 1230 :
आर० एल० अरोरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य
(R. L. Arora *Vs.* The State of Uttar Pradesh and others); 40

[1964] (1964) 1 एस० सी० आर० 332 :
खड़क सिंह वाला मामला
(Kharak Singh's case); 56

[1961] (1961) 365 यू० एस० 167 :
मुनरो बनाम पेप
(Monre *Vs* Pape) ; 8

[1950] (1950) एस० सी० आर० 88 :
ए. के. गोपालन वाला मामला
(A. K. Gopalan's case); 55

[1950] 364 यू० एस० 476 (1950) :
शैलटन बनाम टकर
(Shelton *Vs.* Tucker) ; 27

[1909] 54 लीइयर्स एडीशन 793 :
वीम्स बनाम यूनाइटेड स्टेट्स
(Weems *Vs.* United States) ; 38, 39

[1877] (1877) 94 यू० एस० 113 :
मन बनाम इलिनायस
Munn *Vs.* Illinois) ; 56

[1871] 62 वी० एस० (21 प्रैट) 790 (1871) :
रफीन बनाम कामनवैल्थ
(Ruffin *Vs.* Commonwealth); 5

[1967] फेडरल रिपोर्टर सैकेंड सीरीज, खण्ड 386, 684 :
डोनेस डगलर बनाम मौरिस एच० सिगलर
(Donnel Douglas *Vs.* Maurice H. Siglar) ; 4

[1968-69] फेडरल रिर्पोटर, सैकेंड सीरीज़ खण्ड 404 :
विलियम्स किंग जैक्सन बनाम डी० ई० बिशन
(William King Jackson *Vs.* D. E. Bishon). 198

आरम्भिक अधिकारिता : 1977 की रिट पिटीशन संख्या 2202 और 565.
(संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशन)

पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 2202/77 में) श्री वाई० एस० चितले न्यायमित्र, सर्वश्री रणधीर जैन, एम० मुदगल और जी० के० बी० चौधरी (न्यायमित्र)

पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 565/77 में) डा० एन० एम० घटाटे, श्री एस० बी० देशपांडे, श्रीमती सुमित्रा बनर्जी और एम० के० डी० नम्बूदिरी

प्रत्यर्थियों की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 2202/77 में)	सर्वश्री सोली जे० सोराबजी, अपर महा सालिसटर, के० एन० भट्ट, आर० एन० सचदे और गिरीश चन्द्र
प्रत्यर्थियों की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 565/77 में)	सर्वश्री सोली जे० सोराबजी, अपर महा सालिसिटर, ई० सी० अग्रवाल और गिरीश चन्द्र
मध्यक्षेपी की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 565/77 में)	सर्वश्री वी० एम० तारकुंडे और पी० एच० पारेख

न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर—

कारागृह की पृष्ठभूमि में सांविधानिक प्रतिरक्षा के रूप में कारागृह सम्बन्धी न्याय के क्षेत्र, सलाखों के पीछे स्वतंत्रता का सम्बोध वाद तथा न्यायिक शक्ति की भूमिका यन्त्रणा भरे इस संसार में जो पुलिस राज्य में देखने में आती है, अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है, विशेष रूप से भारत में जहां कि विधिशास्त्र का यह नवीन क्षेत्र दुःखद रूप से सुसंगत होता जा रहा है। इसलिए, परिणामस्वरूप विस्तृत निर्णय देना पड़ा है और यही कारण है कि हालांकि मैं अधिकारिता तथा विधिशास्त्र के आधारों से अपने विद्वान बन्धुओं से पूर्णतया आदरपूर्वक सहमति प्रकट करता हूं, जो कि उन्होंने उपदर्शित किए हैं, मैंने यह उचित समझा है कि मैं अलग से अपना विचार प्रकट करूं।

2. इन दो रिट पिटीशनों के आधार में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत होता है। क्या किसी कारागृह की पृष्ठभूमि अपने आप में विधि के नियम को विधि के क्षेत्र में बहिष्कृत करती है, कारागृह के किवाड़ों से न्यायिक प्रक्रिया को बांध लेती है तथा कैद में सिद्धदोष व्यक्तियों के मानविक अधिकारों के लिए खुली छूट घोषित करती है और (यदि इस रूपक को परिवर्तित करके प्रस्तुत किया जाए, तो यह कहा जाएगा कि) यदि कोई पूर्ण आच्छादन नहीं है तो क्या स्पष्ट क्षेत्र न्यायिक रूप से विधिसंगत होने के लिए स्वतंत्र है? यहां तीन परस्पर-सम्बन्धी समस्याएं प्रस्तुत होती हैं: (i) 'कारागृह' से विलग किए जाने तथा कारागृह प्रशासन से ग्रहण किए जाने के बीच अधिकारिता सम्बन्धी समस्या, (ii) निरोधात्मक अभिरक्षा तथा कारागृहों में निवास करने वाले व्यक्तियों की स्वतन्त्रताओं के बीच सांविधानिक मुठभेड़, और (iii) बर्बर कारागृह सम्बन्धी अवस्थाओं को रोकने में प्रक्रियागत तथा सारवान युक्तियुक्तता। ऐसी आधारभूत स्थिति में व्यावहारिक संवेदनशीलता, जो संविधान की उद्देशिका द्वारा प्रकाशवान है तथा कारागृह में निरुद्ध व्यक्तियों

को ऐसी हानि पहुंचने का संतुलन, जो राज्य द्वारा मारपीट से पहुंचायी जाती है तथा आन्तरिक अव्यवस्था या निकल भागने की आशंका ऐसे विषय हैं जिन पर न्यायालय को विचारण करना होगा।

3. अब मैं व्यापक तथ्यों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करूंगा, विधिक दलीलों की आलोचनात्मक जांच करूंगा तथा महत्त्वपूर्ण संविवाद का हल निकालूंगा जिसका कि प्रभाव हमारी मूल्य पद्धति पर गम्भीर रूप से पड़ता है। स्वतंत्रता की परिभाषा उसके क्रियात्मक रूप के आधार पर अन्त्योदय पर्यन्त करनी चाहिए।

4. पिटीशनर बत्रा और सोबराज—जिनमें से एक भारतीय है और दूसरा फ्रांसीसी—एक को मृत्यु दण्ड की सज़ा दी गई है और दूसरे को गम्भीर आरोपों का सामना करना है, दोनों भिन्न-भिन्न आकृतियों के भागी हैं और उन्हें दुर्भाग्यवश कारावास के कमान में जकड़ा गया है किन्तु उन्होंने आघातपूर्वक कारागृह सम्बन्धी अन्याय को स्वीकार कर लेने के बजाय भिन्न-भिन्न रिट पिटीशनों द्वारा ऐसे कटु व्यवहार को अवैध बताते हुए उस पर आक्षेप किया है। इन दोनों मुकदमों का सार आध्यात्मिक रूप में यह प्रश्न है कि क्या कारागृह पद्धति का कोई सांविधानिक निबन्धनों के अन्तर्गत अन्तःकरण विद्यमान है, क्या कोई कैदी अपने आप में अपने व्यक्तित्व को समपहृत कर लेता है जिससे कि वह राज्य का आधार-रहित दास बन सके और सांस्कृतिक शब्दों में क्या कारागृह समाज का मनुष्य-निर्माता प्रबन्ध अपनी कलाओं को पाशिवक रीतियों द्वारा प्रवर्तित कर सकता है। दिल्ली सेशन न्यायालय द्वारा मृत्यु दण्डादेश प्राप्त बत्रा की व्यथा वास्तविक अकेलेपन में बन्दीगृह है जबकि उसकी अपील लम्बित है हालांकि उसे विधिक रूप से मंजूरी प्राप्त नहीं हुई है। और सोबराज की शिकायत प्रपीड़क निर्योग्यता के विरुद्ध है जो कि बन्दीगृह के नियन्त्रणों द्वारा ऐसे व्यक्ति के परिणामस्वरूप उसे पहुंची है जब कि वह सलाखों के पीछे बन्द है और यह कठिनाई विशेष रूप से उसे विचारणाधीन व्यक्तियों के कारण हुई है और वह भी निस्सीम कालावधि के लिए क्योंकि उसे कारागृह की सलाखों में निराधार रूप से रखा गया है। पिटीशनरों की यह मांग है कि वे विधि का प्रयोग करके तिहाड़ जेल के लोहे के दरवाज़ों में से निकाल दिए जाएं जहां कि वे अब रह रहे हैं और कारागृह प्रशासन न्यायिक कार्यवाही को प्रिज़नर्स ऐक्ट, 1894 की धारा 30 और 56 का अवलम्ब लेते हुए प्रतिषिद्ध आधार के रूप में मानता है। पिटीशनरों ने संविधान के अनुच्छेद 14, 21, (बत्रा वाले मामले में अनुच्छेद 19) का आश्रय लिया है।

सर्वोपरि विधि : कारावास सम्बन्धी अनुशासन तथा न्यायिक देख-रेख :

सांविधानिक नियंत्रण में कारावास की सनक तथा क्रूरता निर्बोध्य है, किन्तु प्रशासनिक विवेकाधिकार में अनुचित रूप से हस्तक्षेप करना विधि की दृष्टि से अभिशाप है जब कि सांविधानिक अधिकारों अथवा विहित प्रक्रियाओं के किन्ही भंगों का अभाव हो बन्दियों को ऐसी स्वाधीनताएं लागू होती हैं जो कि मूल्य की दृष्टि से न्यूनतर हो सकती है किन्तु उनका विमुद्रीकरण नहीं किया जाता और हमारी आधारभूत स्कीम के अन्तर्गत कारागार शक्ति निश्चित रूप से न्यायाधीश की शक्ति के समक्ष झुक जाती है। यदि मूलभूत स्वतन्त्रताएं संकटापन्न हों। यह सिद्धान्त स्थिर हो चुका है जैसा कि कुछ अमेरिकी विनिश्चयों में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है—

> "[1]कारागृहों के आन्तरिक प्रबन्ध अथवा सुधारात्मक संस्थाओं के विषय को ऐसी संस्थाओं के हाथों सौंपा जाता है जो कि कानूनी प्राधिकार के अधीन प्रवर्तनशील होती हैं और कारावास अनुशासन का प्रशासन एवं संस्थान का सर्वोपरि परिवर्तन न्यायालय के पर्यवेक्षण अथवा नियंत्रण के अद्यतन नहीं होते जबकि अधिकतम अप्रायिक परिस्थितियों का अभाव हो अथवा किसी सांविधानिक अधिकार के उल्लंघन का अभाव हो किन्तु कारविन ने यह टिप्पण प्रस्तुत किया है[2]—
>
> "फैडरल न्यायालयों ने राज्य की दाण्डिक सुविधाओं की देख-रेख पर बलपूर्वक ध्यान दिया है और उस हद तक आत्यंतिक समय परिलक्षित किया है जिस तक कि ऐसी त्रुटियां तथा रोग जिन सुधारात्मक संस्थाओं में विद्यमान हैं—जैसे कि अत्यन्त भीड़-भाड़, न्यून कर्मचारिवृन्द, स्वेच्छा रहित सुविधाएं, बरबरता, हिंसा का निरन्तर भय, चिकित्सीय तथा मानसिक स्वास्थ्य की देख-रेख का अभाव, घटिया खाना और सर्विस, हस्तक्षेप करने वाले तत्स्थानी निर्बन्धन, अमानविक विलग रखने वाला एकांतवास, अपर्याप्त अथवा अस्तित्वहीन पुनर्वासात्मक[1] या शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम, खेलकूद के अवसरों की त्रुटि—'क्रूर तथा अप्रायिक दण्डों' पर अष्टम संशोधन के वर्जन का उल्लंघन करते हैं।"

5. 'हैण्ड्स आफ' (अहस्तक्षेप) का सिद्धान्त रफिफन बनाम राष्ट्रमण्डल[1] में 1971 में कथित भ्रामक आधान पर बनाया गया था—

---

[1] डानल डगलस बनाम मॉरिस एच० सिगलर 386, फैडलर (सैकेंड) 684.

[2] एडवर्ड एस० कारविन द्वारा लिखित दि "कान्स्टीट्यूशन" का सप्लीमेन्ट पृष्ठ 245.

"अपने अपराध के परिणाम के रूप में न केवल अपनी स्वाधीनता को अभिहृत कर दिया है, बल्कि साथ ही साथ सभी वैयक्तिक अधिकारों को भी खो दिया है, सिवाय उनके जिन्हें विधि मानव समाज में उसे प्रदत्त करती है। इस समय वह राज्य का दास है।"[1]

तत्पश्चात् जो शताब्दी आई उसके दौरान अमेरिकी न्यायालयों ने इस सिद्धान्त को जीर्ण-शीर्ण कर दिया और पहले तो **जार्डन वाले मामले**[2] में यह घोषित किया कि जब उत्तरदायी कारागार प्राधिकारों द्वारा आघात पहुंचाने वाली तथा विकृत करने वाली प्रकृति को अभिभावी बनाने के लिए शर्तों को अनुज्ञात करके गरिमा के तात्विक सिद्धान्तों का परित्याग कर दिया है तो न्यायालयों के लिए यह आवश्यक है कि वे तुरन्त अमेरिकी संविधान के अनुसार सभ्य समुदाय के प्राथमिक नियमों को बहाल करें।

6. **कॉफिन** बनाम **रिचर्ड** वाले मामले में न्यायालय से यह प्रेरणा की गई थी कि वह उस समय हस्तक्षेप करें जब कि विधिपूर्वक अभिरक्षा में रहते हुए किसी कैदी को किसी अधिकार से वंचित किया जाता है और जिसकी हानि के कारण उसका बंदीग्रहण विधि द्वारा अनुज्ञात अवस्था से अधिक बोझिल बन जाता है।

"जब किसी व्यक्ति को कोई सारवान अधिकार प्राप्त होता हो तो वह इस बात की पूरी कोशिश करेगा कि वह उसकी संरक्षा करने के लिए कोई रास्ता निकाले। यह तथ्य कि कोई व्यक्ति वैध रूप से कारागृह में बंदी प्रत्यक्षीकरण (हैबियस कारपस) के प्रयोग को निवारित नहीं करता है जिससे कि उसके अन्तर्निहित अधिकारों को संरक्षित किया जाए।"

7. **जान** बनाम **डाइस** वाले मामले में न्यायालय ने पुनःअभिनिर्धारित किया "कि यह बेहतर है कि खतरनाक व्यक्ति को रिहा कर दिया जाए बजाय इसके कि व्यक्ति के मूल सांविधानिक अधिकारों को लेशमात्र को कम करने का अधिकार अनुज्ञात किया जाए।" इस प्रकार बन्दीग्रहण की सांविधानिकता उसकी कालावधि तथा स्थितियों की परख बन्दी प्रत्यक्षीकरण के माध्यम से विधिमान्य रूप से की जा सकती है।

---

1 62 बी० एस० (21 ग्रेट) 790, 796 (1871)

2 जार्डन बनाम फिट्जहैरिस, 257 फैडरल सप्लीमेंट 674.

8. 'अहस्तक्षेप' सिद्धान्त को सब से कठोर आघात मुनरो बनाम पेप[1] वाले मामले द्वारा निम्नलिखित रूप में पहुंचाया गया था—

> "जहां न्यायालय मानविक शालीनता के सभ्य स्तरों पर जोर देता है और मनुष्य से न्यूनतर अवस्था का खण्डन करता है जो कि केवल कैदी की भावना को पूर्णतया विनष्ट कर सकता है और उसकी मानसिक अवस्था में ह्रास पैदा कर सकता है।"

9. 1975 तक यूनाइटेड स्टेटस सुप्रीम कोर्ट ने निस्संदिग्ध प्रस्थापना को कायम रखा कि सांविधानिक अधिकार सिद्धदोष को धोखा नहीं देते, किन्तु उनका प्रविषय संकुचित हो जाता है। ईव पैल[2] के मतों में से कुछ तीखे सारांश तथा चार्ल्स वुल्फ[3] के प्रभावशील सम्प्रेक्षण इस दलील पर जोर देते हैं कि कैदी 'व्यक्ति' की कोटि में नहीं आता है।

10. न्यायाधिपति स्टीवर्ड, जिन्होंने कि ईव पैल[2] वाले मामले में न्यायालय की राय व्यक्त की थी यह सम्प्रेक्षण किया था कि निस्सन्देह न्यायालय मूल स्वाधीनताओं को कार्यान्वित करने और उनकी संरक्षा करने के कर्त्तव्य का परित्याग नहीं कर सकते हैं। किन्तु जब विवाद्यक के अन्तर्गत ऐसा विनियम अन्तर्वलित हो जो किसी एक कैदी द्वारा विभिन्न संचार माध्यमों में से किसी एक माध्यम को सीमित करता हो तो उसे विनियम द्वारा अग्रसर किए गए संस्थागत उद्देश्य और न्यायिक सम्मान के अध्युपाय सुधार करने वाले अधिकारी इन हितों की पूर्ति करने के प्रयत्न में विनियम की विधिमान्यता को आंकने के लिए सुसंगत हैं।

11. न्यायाधिपति डगलस ने अपने विसम्मत दृष्टिकोण में यह कहा था कि कैदी तथापि ऐसे व्यक्ति हैं जो सभी सांविधानिक अधिकारों के हकदार हैं, जब तक कि उनकी स्वाधीनता ऐसी प्रक्रिया द्वारा सांविधानिक रूप से घटा न दी गई हो जो कि सम्यक् प्रक्रिया की सभी अपेक्षाओं को पूरा करते हैं।

(अधोरेखांकन हमने किया है)

12. चार्ल्स वुल्फ के पश्चात्वर्ती मामले में न्यायालय ने जोरदार रूप से कथन किए थे और वहां भी इसी प्रश्न को भलीभांति समझाया गया था। उदाहरणार्थ न्यायाधिपति ह्वाइट, जिन्होंने न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाया, ने यह संप्रेक्षण किया "विधिपूर्वक बन्दीगृह आवश्यक रूप से अनेक अधिकारों

1 365 यू० एस० 167 ए: 5 लाइयर्स एडीशन सेकेन्ड, 492 (1961).
2 यू० 417 एस० 817: 41 लाइयर्स एडीशन सैकेन्ड 495.
3 41 लाइयर्स एडीसन सैकेन्ड 935.

तथा विशेषाधिकारों को अनुपलभ्य बना देता है जो कि साधारण नागरिक को प्राप्त होते हैं और यह एक ऐसा निर्बंधन है जो हमारी दाण्डिक पद्धति में अन्तर्निहित विचारों द्वारा न्यायोचित ठहराया जा सकता है। किन्तु यद्यपि वातावरण द्वारा उसके अधिकारों की कटौती हो जाए तथापि कैदी पूर्व रूप से सांविधानिक संरक्षाओं से विछिन्न नहीं हो जाता जब उसे अपराध के लिए कैद किया जाता है। इस देश के संविधान और कारागृहों के बीच कोई लोहे की सलाखों का पर्दा नहीं डाला गया है। सारांश यह है कि संस्थागत आवश्यकताओं तथा संविधान के उद्देश्यों एवं उपबंधों के बीच पारस्परिक सामंजस्य होना चाहिए जो कि सामान्य रूप से लागू होते हैं"।

13. न्यायाधिपति मार्शल ने स्पष्ट रूप से अपना विचार व्यक्त किया: "मैंने पहले ही अपना यह दृष्टिकोण कथित कर दिया है कि कोई कैदी कारागृह के दरवाजे में घुसते ही अपने मूल सांविधानिक अधिकारों का त्याग नहीं कर देता है और मैं न्यायालय के इस अभिनिर्धारण से पूर्णतः समर्थन करता हूं कि स्वतंत्रता में कारागृह के अन्तर्गत निवास करने वाले व्यक्तियों का हित गंभीर अनुशासन के अधिरोपित किए जाने से एक ऐसी स्वाधीनता है जो कि सम्यक् प्रक्रिया सम्बन्धी संरक्षण की हकदार है।

14. न्यायाधिपति डग्लस ने पुनःविसम्मत प्रकथन करते हुए यह कहा था "निस्संदेह प्रत्येक कैदी की स्वाधीनता उसके निरोध के तथ्य में अन्तर्विष्ट है किन्तु उसे जो सीमित स्वतंत्रता सम्बन्धी हित दिया जाता है वह अधिक सारवान् होता है। किसी अपराध से सिद्धदोष हो जाने से कोई व्यक्ति अव्यक्ति नहीं बन जाता है जिसके अधिकार कारागृह प्रशासन की मनमरजी के अधीन हो जाते हैं और इसलिए कारागृह पद्धति के अन्तर्गत किसी पर दण्ड का अधिरोपण प्रक्रियागत रक्षोपायों की अपेक्षा करता है। निस्संदेह इससे पूर्व कि किसी कैदी को किसी साधारण दायित्वाधीन रखा जाए, सुनवाई की जाना आवश्यक नहीं है जैसे कि यदि उसे विशेषाधिकार से सायंकाल में वंचित कर लिया जाता है तो सुनवाई आवश्यक नहीं होगी। तथापि निरुद्ध व्यक्ति ऐसी 'कैद' में नहीं आता है।

15. अब मैं इस विधिक विचार-विमर्श को स्पष्ट करूंगा। अंगछेदन द्वारा प्रशासन और कारागृह के कर्मचारियों के हाथों में अनुशासनिक स्वायत्तता ऐसे मानविक अधिकारों को धारण कर सकता है और ऊंचे-ऊंचे तत्वों के पीछे से जो जुड़ने की आवाज आती है, वह आसानी से बात रुद्ध दृष्टि रुद्ध बाधाओं को तोड़ नहीं सकती जिनके द्वारा न्यायाधीशों के समक्ष रिट अधिकारिता का

अवलम्ब लिया जा सके। इसलिए परिणाम यह होगा कि प्रक्रियाशील विधिक स्वतंत्रता कैदियों के मूल अधिकारों की दरारों को न्यायालयों के प्रति ले जाने के लिए पाइपलाइन के रूप में सहायता एक महत्वपूर्ण मानविक वचनदान है जो कि कारागार की विधि के नियम से संबंधित है और हमारे सांविधानिक आदेश में यह स्पष्ट है कि कर्मचारी सम्बन्धी विधियां वैध रूप से पकड़े हुए लोगों के मूल अधिकारों को हड़प नहीं लेतीं और वे वहां कोई उस आधार पर संतरियों का काम नहीं करतीं। न्यायालय सलाखों के पीछे स्वतंत्रता की रक्षा करने जहां कि अनुशासन वातावरण संबंधी वास्तविकता विद्यमान हो किन्तु कार्यपालिक कठोरता असह्य हो। विधि की नीति तथा संविधान की सर्वोच्चता ऐसे प्राधिकारियों द्वारा खरीदी नहीं जा सकेंगी जो वादगत जटिल रूप से कारागारों में निवास करने वाले व्यक्तियों के 'खतरनाक' होने और शान्तिभंग करने वाला होने का आश्रय लेते हैं।

16. यदि न्यायिक वास्तविकता को लागू नहीं किया जाना है तो निश्चित रूप से न्यायिक क्रियाशीलता कारागृह की स्वायत्त के जवाबदेय न होने के कारण सेसर प्रतीत होती है।

17. पुलिस तथा कारागार की कठोरता का अन्दाज़ा करने के लिए खतरनाक का प्रश्न उद्भूत करना अप्रायिक नहीं है जैसाकि तमिलनाडु की कारागार की हाल ही की न्यायिक जांच में न्यायाधिपति इस्माइल ने उपदर्शित किया था—

> "कलकत्ता की काल कोठरी (ब्लैक होल) कोई पुरातन बात नहीं है बल्कि वह एक वर्तमान समय की वास्तविकता है। रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकाला गया था कि बन्दी बनाए जाने वालों को जानबूझकर नवम् ब्लाक में डाला गया था जिसमें इससे पूर्व ऐसे कैदी रहते थे जो कोढ़ से पीड़ित थे।"
>
> "2 फरवरी की रात को नवम् ब्लाक में कैदियों को निर्मम रूप से तथा बर्बर तौर पर पीटा गया। इससे पूर्व पूर्वाह्न में मुख्य हैड वार्डन के ब्लाक में गया और उसने बंदियों के नाम लिखे और उन कोठरियों का भी उल्लेख किया जिनमें कि वह बन्द थे। तत्पश्चात् कार्यवाही की गई। न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष दिया है कि 2 फरवरी, 1976 को रात्रि में कैदियों की जो पिटाई हुई थी वह पहले से सोच समझकर पूर्व आयोजित और विमर्शित रूप से थी, न कि अचानक इस कारण कर दी गई थी कि जैसा कि कारागार के अधिकारियों ने दलील दी है कैदियों ने कोठरियों में घुसने के सम्बन्ध में उद्घोषणा दर्शित की थी।" (अन्य राज्यों से भी सनसनीखेज न्यायिक रिपोर्टें आई हैं)।

18. चाहे जो भी हो हालांकि शक्तियां अधीक्षक में निहित रहती है उसका वास्तविक प्रयोग तो अभिरक्षक (गार्ड) द्वारा ही किया जाता है। इसी किसी रूकावट के हम मानविक स्वतंत्रता का संरक्षण कारागार के रक्षकों द्वारा इस वेश में नहीं कर सकते कि मुठभेड़ हो जाती है और निकल भागने के लिए बन्द किए जाते हैं।

19. न्यायाधिपति डग्लस ने वुल्फ बनाम **मोडोनेल**[1] वाले मामले में इस पहलू पर जोर दिया था "तब से लेकर हमने पर्याप्त प्रगति कर ली है। किन्तु अभी भी प्राचीन परम्परा चली आ रही है। इस लिए हम एक राज्य की बन्दीगृह पद्धति के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह मानविक है। इससे यह सबक मिलता है कि न्यायालय सहर्ष कर्मचारी कारागार अधिकारियों के प्रस्थापित विशेषज्ञों की अवहेलना नहीं कर सकता जबकि सांविधानिक अधिकारों का प्रश्न पैदा होता है।" प्रायः कैदियों के विशेषाधिकारों को प्रत्याहृत कर लिया जाता है। उन्हें न्यायोचित करने के अधिकार का प्रत्याख्यान कर दिया जाता है। वह अकेलेपन में अथवा अधिकतम अभिरक्षा के अधीन या अनिष्ठकारी समय किसी गार्ड की एक ही पुनर्विलोकित मात्र के आधार पर है। जब न्यायालय प्रशासनिक विवेकाधिकार की उपेक्षा करते हैं तो वे इस गार्ड को युक्तियुक्त कारागार पद्धति के बारे में अंतिम निर्णय प्रदान कर देते हैं। कारागार में यह एक महत्वपूर्ण स्थिति है कम प्रशिक्षित कर्मचारिवृन्द को अपुनर्विलोकित विवेकाधिकार दे दिया जाता है जो कि प्रत्यक्ष रूप से कैदियों के साथ व्यवहार करते हैं।

20. यदि युद्धों को जनरलों के अधीन छोड़ देना महत्वपूर्ण है तो निश्चित रूप से कैदियों के अधिकार उतने कीमती हैं कि उन्हें जनरलों के हाथ में दिया जाना चाहिए। यहां हम एक चेतावनी देना चाहेंगे। जहां कारागार में विश्वसनीय आरोप को और मानव जाति को आघात पहुंचता हो वहां संदेह के लाभ को न्यायोचित ठहराना व्यक्ति की शारीरिक मानसिक उन्मुक्तियां न कि अति संवेदनशीलता से संबंधित होगी जहां तक कि सुरक्षित अभिरक्षा का सम्बन्ध है।

कुछ शोभनीय लक्षण समाज पर आधारित मुकदमेबाजी और सहदायी न्यास गणतंत्रात्मक विधिमान्यता का समर्थन करता है—

21. हमारे समक्ष जो कार्यवाहियां हैं उनके कुछ विशेष विधि संबंधी लक्षण हैं। उनके साथ उनके कुछ प्राथमिक महत्व है और मैं उनके प्रति निर्देश आरम्भ में ही ऐसे उपयोगी तत्वों के रूप में करूंगा जो विधि सम्बन्धी प्रक्रिया के क्रमिक विकास में सहायक हैं।

[1] 41 लाइयर्स एडीशन सैकेन्ड 935 (976).

22. मुकदमेबाजी के इस वर्ग का सार व्यक्तिगत कैदियों की विशिष्ट व्यथाओं का न्यायनिर्णयन नहीं है, बल्कि यहां सामाजिक न्याय को व्यापक रूप से परिदत्त करना होता है। यह मात्र नैतिक भारसाधन अथवा प्रत्येक मामले के सुधार की कोटि में नहीं आता है बल्कि कठोर विधिक परम्परा के विधि सम्बन्धी मानवीकरण का उच्च रूप है जो कि बहुत समय से न्यायिक पुनर्विलोकन से आच्छादित रहा है। इस न्यायालय का यह आवश्यक कार्य है कि जब उसे समुचित रूप से आमन्त्रित किया जाये तो वह वेदना और अन्याय के नवीन क्षेत्रों में भी प्रवेश करे तथा मानविक सांविधानिक नीति को कानूनी अवशेषों को अन्तःस्थापित करे विशेष रूप से तब जब कि (कारागार) कार्यपालिका, स्वतन्त्रता से 30 वर्ष बीत जाने के पश्चात् अधिकथित दोष को प्रतिरक्षित करते हुए सुधारती है और विधानमण्डल जिसके सदस्य पिछले दशकों में सर्वथा कारागारों के हानिकारक लक्षणों के प्रति अनभिज्ञ नहीं हैं, वे संभवतः अधिक लोकप्रिय काम काज में लगे हुए हैं बजाए इसके कि वे अवरुद्ध अपराधियों के अल्पसंख्यक वर्ग पर ध्यान देते रहे जो पृथक्-पृथक् निवास करते हैं, कुछ कहने में असमर्थ हैं और शोर नहीं मचा सकते।

23. हालांकि इन रिट पिटीशनों में से कोई भी रिट पिटीशन यथार्थ रूप से वर्ग सम्बन्धी कार्यवाही नहीं है, प्रत्येक अन्य अनेक समरूप मामलों का प्रतिनिधित्व करता है। मेरे विचार में यह शहीदी मुकदमे व्यक्तिगत मुकदनेबाज से पर्यन्त फायदाग्राही शक्ति धारण करते हैं और व्यापकतर प्रतिनिधित्व आधार पर उनके विचार विधि के नियम को सशक्त बनाते हैं। सामूहिक कार्यवाहियां सामुदायिक मुकदमे, प्रतिनिधित्व पूर्ण वाद, विशिष्ट मामले और सार्वजनिक हित की कार्यवाहियां हमारे न्यायालय की पारम्परिक प्रक्रियाओं से आगे निकल चुके हैं और हमारी न्याय पद्धति में तीव्र गति वाले लोगों का प्रतिनिहित रूप से अन्तर्निहित किया जाना सुनवाई के अधिकार की व्यापक अवधारणा में संयोजन गणतंत्र में इतना आवश्यक है जहां की जनता कई प्रकार से कमजोर होती है।

24. यहां आशापूर्वक प्रक्रियागत लक्षण का उल्लेख करना होगा। गणतन्त्र के लिए नागरिक (सिटिज़न्स फॉर डेमोक्रेसी) जो मानविक अधिकारों के क्षेत्र में संघटनात्मक प्रवर्तन है उसे सोबराज वाले मामले में हस्तक्षेप करने की इजाज़त दी गई है और उसकी ओर से श्री तारकुंडे ने कारागार सम्बन्धी सुधारों के लिए जोरदार रूप से प्रेरित होकर विधि सम्बन्धी दलीलें पेश की हैं। व्यापक विवक्षाओं से भरपूर मुकदमे सम्बन्धी प्रक्रियाओं में सामाजिक

कल्याणकारी संघटनों का हस्तक्षेप जनता और विधि के नियम के बीच एक अच्छा मेलजोल का माध्यम है। बुद्धिमत्तापूर्वक अनुज्ञात किए जाने पर सम्मिलित न्याय जो कि जनता के आधार के माध्यम से संघटनों द्वारा तथा सार्वजनिक निकायों द्वारा प्रोन्नत होते हैं और जहां हस्तक्षेप करने के लिए विशेष सम्बन्ध रहता है साधारण मनुष्य और विधि के लिए गणतंत्रात्मक साधन विद्यमान है। हम ने विस्तारपूर्वक उद्भूत किए गए विवाद्यकों का हल निकालने की कोशिश की है और पक्षकारों की सुनवाई विस्तारपूर्वक की है क्योंकि विवाद्यक गंभीर तथा नवीन हैं ..... हालांकि संक्षिप्त विचार-विमर्श से ही काम चल सकता था। जहां जनता का न्याय जोखिम में हो वहां संक्षिप्त मार्ग अपनाना अनुचित होगा।

25. **कारागार न्याय के उत्प्रेरक के रूप में न्यायालय की भूमिका**— यह एक खेदजनक परिलक्षण है जिसमें आशावाद और यथार्थवाद भरा हुआ है कि सरकारें तो आती-जाती रही हैं किन्तु कारागार मुख्य रूप से भयानक परम्परा को आरक्षित रखने में कामयाब रहे हैं और उन्होंने महात्मा गांधी जी का संदेश उपेक्षित कर दिया है। और यह बात ऐसी दशा में भी होती रही है जब कि सर्वत्र सुधार दशकों तक चलता रहा है और राज्य में सत्तारूढ़ राजनीतिज्ञों को इसका वृत्तिक अनुभव रहा है। विद्वान् महा अटर्नी ने इन मामलों में से एक में अत्यन्त प्रारम्भिक प्रक्रम पर तथा विद्वान् अपर महासालिसिटर ने और श्री तारकुंडे ने भी अपनी दलीलों के अनुक्रम में यह कथन किया था कि यहां जो चुनौती दी गई है उसकी सुधारात्मक न्यायालय की प्रतिक्रिया कारागार सम्बन्धी विधियों और परिपाटियों में उन मानविक परिवर्तनों को उत्प्रेरित करने में अत्यन्त कार्यशील है जो कि पहले ही सरकार के राष्ट्रीय कार्यसूची पर अत्युच्च स्थान रखते हैं। विह्वलकारी आयोग की रिपोर्टें और सार्वजनिक कार्यवाहियां कारागार सम्बन्धी न्याय के लिए एक शर्मनाक बात है और उन से न्यायिक प्रक्रिया की दृढ़ तथा तीव्र कृत्यशीलता में जनता की आस्था डगमगा गई है इसलिए मैंने इस मामले में अत्यन्त विस्तार किया है और जहां तक काउन्सेल का प्रश्न है उन्होंने भी न्यायालय की सहायता विस्तारपूर्वक की है।

26. **कारागार सम्बन्धी शालीनता और न्यायिक उत्तरदायित्व**— कौन-से पश्चात्वर्ती सम्बन्धी सुधार वर्तमान कारागार प्रणालियों और सांविधानिक सिद्धान्तों में सामंजस्य को प्रोन्नति देंगे आधारभूत कारागृह सम्बन्धी शालीनता दाण्डिक न्याय का एक पहलू है और न्यायपालिका का

अपना संविधान है जिसके कि कैदी न्यायालय के दण्डादेश द्वारा आदिष्ट किये जाने पर जड़ भाग हैं।

27. इस विनिहित उत्तरदायित्व से प्रेरित होकर यूनाइटेड स्टेट्स की सुप्रीम कोर्ट ने यह सम्प्रेक्षण किया है—

> "इस न्यायालय के विनिश्चयों की शृंखला में यह अभिनिधारित किया गया है कि हालांकि सरकार के प्रयोजन विधिसम्मत तथा सारवान् हों तथापि उस प्रयोजन का अनुसरण ऐसे माध्यमों द्वारा नहीं किया जा सकता जो कि व्यापक रूप से मूलभूत दैहिक स्वाधीनताओं को ऐसी दशा में समाप्त कर देते हैं जबकि उस उद्देश्य की पूर्ति अधिक संकुचित रूप से की जा सकती हो। विधायी न्यूनीकरण के विस्तार पर न्यूनतर कठोर माध्यमों के प्रकाश में उसी आधारभूत प्रयोजन को प्राप्त करने के लिए विचारण किया जाना चाहिए।"[1]
>
> [शैल्टन **बनाम** टकर, 364 यू० एस० 476 (1950) (पृष्ठ 468 पर)]

28. करुणा कारागार न्याय का उपांग है।

29. कारागार में क्रूरता अव्यवस्था के निवारण के रूप में भूतलक्षी प्रभाव से न्यायोचित है और भाग निकलने का आरोप प्रायः संदिग्ध होता है एक अन्य तत्व जिसे प्रायः हम भूल जाते हैं जब हम कैदियों पर कठोर व्यवहार को न्यायोचित ठहराते हैं यह है कि पुनर्वास का पुट उसमें विद्यमान रहता है। इसका आधार यह है कि अभिरक्षक कर्मचारीगण कारागार संबंधी विधि के शासन को प्रवर्तित करके और कैदियों की रिहाई के पश्चात् उनके जीवन में विधि का अनुकरण करने की प्रवृत्ति के लिए उन्हें तैयार करके महत्वपूर्ण रूप से योगदान कर सकता है क्योंकि रिहाई के पश्चात् धारावाह रूप देने का नाम कभी-कभी इसे दिया जाता है।

30. **पाल वाले मामले**[2] में न्यायाधिपति स्टावर्ट ने बन्दी बनाने के दोनों उद्देश्यों के प्रति निर्देश किया था। 'सुधारात्मक पद्धति का एक महत्वपूर्ण कृत्य यह है कि पुनः अपराध करने से निवारित किया जाए। इसका आधार यह है कि दाण्डिक अपराधियों को ऐसी सुविधा में सीमित करके जहां कि उन्हें शेष समाज से विलग रखा जाता है, जो कि एक ऐसी शर्त है जिसे अधिकतर लोग अवांछित मानकर चलते हैं, उन्हें और अन्य व्यक्तियों को पुनः दाण्डिक अपराध करने से निवारित किया जाएगा। निस्सन्देह, इस प्रकार से विलग रखा जाना भी दाण्डिक अपराधियों को एक निश्चित कालावधि के

---

1 देखिए—चैरिफ बिसियोनी कृत सब्सटेंटिव क्रिमिनल लॉ पृ० 115.

2 417 यू० एस० 817: 41 संस्करण दूसरा 493.

लिए उन्हें अलग रखकर एक संरक्षात्मक कृत्य करता है, जब कि यह आशा की जाती है कि पुनर्वासात्मक क्रियाएं जो कि सुधारात्मक पद्धति से सम्बद्ध हैं, अपराधी की प्रदर्शित दाण्डिक प्रवृत्ति में सुधार लाने हेतु कार्य करती है। इस प्रकार चूंकि अधिकतर अपराधी अन्ततः समाज में वापस आ जाते हैं सुधारात्मक पद्धति का एक अन्य सर्वोपरि उद्देश्य यह है कि उनकी अभिरक्षा में जिन व्यक्तियों को रखा जाता है उनका पुनर्वास हो सके। अन्त में, अन्य सभी सुधारात्मक उद्देश्यों का मुख्य लक्ष्य स्वयं सुधारात्मक सुविधाओं के अन्तर्गत आंतरिक सुरक्षा का संस्थागत विचार्य विषय है। इन विधिसम्मत दाण्डिक उद्देश्यों के प्रकाश में ही न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह कैदियों के उन विनियमों के प्रति चुनौतियों का मूल्यांकन करे जोकि उनके ऐसे सांविधानिक अधिकारों पर आधारित हैं जिनका प्रकथन किया जाता है।"

31. आने-जाने और विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता के वंचित किये जाने के पीछे करुणामय प्रयोजन यह है कि अपराधी को सदाचार प्रदान करके उसका पुनर्वास किया जा सके और यह सुनिश्चित बनाया जा सके कि रिहा किये जाने पर जब वह समाज में लौटेगा तो पूरी तरह से सामाजिक प्रतिरक्षा कायम रहेगी। यह आधार यंत्रणा दायक व्यवहार, विरोध तथा कटुता द्वारा विपर्यस्त हो जाता है जिससे कि सुधारात्मक प्रक्रिया बिगड़ जाती है। उचित व्यवहार.....से मनमाने आचरण के विरुद्ध प्रक्रियाओं द्वारा पुनर्वास के अवसरों में वृद्धि होगी। (33 लाइयर्स एडीशन सैकेन्ड, 484)

32. कारावास के आवश्यक अंग के रूप में पुनर्वास का प्रयत्न भारतीय दण्ड न्याय पद्धति का एवं यूनाइटेड स्टेट्स की दाण्डिक न्याय पद्धति का भाग है। उदाहरणार्थ यह सुधारात्मक प्रवृत्ति क्रिमिनल जस्टिस स्टैण्डर्ड एण्ड गोल्स पर आधारित **नेशनल एडवाइजरी कमीशन**[1] द्वारा मानक के रूप में निविष्ट की गई है—

> "..... जब तक कि दण्डादेश देने वाले न्यायालय द्वारा अन्यथा आदेश न दिया गया हो, प्रत्येक अपराधी के आदेश में पुनर्वास का प्रयोजन विवक्षित है अथवा होना चाहिए।"

33. **मुहम्मद गियासुद्दीन** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने जोरदार रूप से चिकित्सालय के व्यवस्थापन तथा कारावास के आरोग्य निदान ध्येय का समर्थन किया था—

---

1 61, पृष्ठ 43 : जे० डी० राजर जी० लैन्फियर कृत फ्रीडम फ्राम फ्राइम, नेलन पब्लिशिंग कम्पनी में उद्धृत.

2 (1977) 3 एस० सी० सी० 287.

"संसार भर के प्रगतिशील दण्ड विधिशास्त्र विशेषज्ञ इस बात से सहमत होंगे कि रोगियों के रूप में अपराधियों का गांधी जी का निदान और अस्पतालों के रूप में कारागारों की धारणा जिसमें मानसिक और नैतिक रोगी रहते हैं अपराध का रोग निदान है और दण्ड देने की चिकित्सीय भूमिका है। सम्पूर्ण प्राणी एक स्वस्थ मनुष्य होता है और प्रत्येक मनुष्य जन्म लेते समय सदाचारी होता है। अपराध करना एक ऐसा विचलन है जिसका उपचार किया जा सकता है।.....हमारे बन्दीगृह सुधारात्मक गृह होने चाहिएं, न कि निर्मम लोहे की सलाखें जिससे आत्मा को कष्ट पहुंचता हो.....यह राष्ट्र—और यदि इसे अपने उन नेताओं तथा स्वतन्त्रता सेनानियों का स्मरण हो जो कि कारागार में रहे हैं उन्हें भूल नहीं सकता—उस कठोर लघु संसार के अन्तर्गत विद्यमान अवस्थाओं में क्रान्ति अवश्य लायेगा। हम जोरदार रूप से यह सम्प्रेक्षण केवल स्वतन्त्रता के आवश्यक तत्व को समझाने के लिए कर रहे हैं जो यह है कि यदि उसे राज्य द्वारा वंचित किया जाए तो उसे केवल यह ऐसी योजना द्वारा उस जन्मजात अधिकार के अनुकूल दण्डादिष्ट व्यक्ति को विधिमान्य बनाया जा सकता है। हमारे संविधान के प्रथम पृष्ठ का एक आध्यात्मिक आकार है जो कि दण्ड शासन के अन्तर्गत प्रक्षिप्त होता है।"

इस सबसे यह महत्वपूर्ण प्रस्थापना देखने में आती है कि कारावास भुगतने वाले किसी व्यक्ति को अधिक यंत्रणा देना दण्डनीय अपराध है क्योंकि उपचार से रोग और भी बढ़ जाता है और इस प्रकार दैहिक स्वाधीनता के अधिहरण को युक्तियुक्त रूप से न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता और यह मनमाना है क्योंकि यह अंधाधुंध रूप से की गई ऐसी कार्यवाही है जो कि सामाजिक प्रतिरक्षा के ध्येय को अग्रसर करती है जो कि कारावास का प्राथमिक उद्देश्य है। इससे प्रक्रिया विपर्यस्त हो जाती है क्योंकि बदतर पशुओं का निर्माण हो जाता है जब कि उन्हें समाज के मुख्य प्रवाह में छोड़ दिया जाता है। हाल ही के अपने एक अध्ययन में **राजर जी० लैन्फियर**[1] ने एक कैदी के एक महत्वपूर्ण पत्र को उद्धृत किया है जिसमें यह मर्मस्पर्शी प्रश्न विरचित किया गया है—

---

[1] राजर जी० लैन्फियर : फ्रीडम फ्राम क्राइम, पृष्ठ 46-47.

"प्रिय श्रीमती स्टैण्डर,

आप बर्बरता से और अनादरपूर्वक रूप से किसी मनुष्य का पुनर्वास नहीं कर सकते। किसी व्यक्ति द्वारा किया गया अपराध चाहे कैसा भी हो, तथापि वह एक मनुष्य ही है और उसकी भी भावनाएं होती हैं। और इस बात का मुख्य कारण कि अधिकतर लोग कारागारों में आजकल उनकी देख-रेख करने वालों का अनादर करते हैं, यह है कि उन्हें (उस में रहने वाले) स्वयं अनादर मिलता है और उनके साथ मनुष्यों जैसा व्यवहार नहीं किया जाता है। मैंने स्वयं कारावास में निवास करने वाले व्यक्तियों पर किये गए बर्बरता पूर्वक आक्रमणों को देखा है और कुछ बार तो मैं इसकी शिकार हुई हूं जिनकी कि कोई आवश्यकता नहीं थी। यह बात तो मेरी समझ में आती है कि यदि कोई कारागार में रहने वाला व्यक्ति हिंसात्मक हो जाता है तो उसे अवरुद्ध करने के लिए किसी रक्षक अथवा रक्षकों की जरूरत होती है। किन्तु कई बार इस अवरोध के परिणामस्वरूप बर्बरता पूर्वक मारपीट की गई है। क्या इस प्रकार के व्यवहार से आदर और पुनर्वास हो सकता है? नहीं। इससे तो केवल विरोध का संचार होता है और कारागार के अधिकारियों के प्रति उसमें रहने वाले उसके शिकार कैदी या कैदियों द्वारा विरोध उत्पन्न होता है।

यदि आप किसी व्यक्ति से पशु जैसा व्यवहार करेंगे तो यह आवश्यक है कि उससे भी इसी प्रकार की प्रत्याशा की जा सकती है। प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। यह मात्र मानविक प्रकृति है और यदि आप यह चाहते हैं कि कारावास में रहने वाला कोई व्यक्ति मनुष्य के रूप में व्यवहार करे तो आपको उस पर उसी प्रकार विश्वास करना चाहिए। पशु के रूप में उससे व्यवहार करने से तो केवल विरोधी परिणाम निकलेंगे। आप उसके चेहरे पर थूक कर उससे यह प्रत्याशा नहीं कर सकते कि वह इस पर मुस्कराएगा और आपका धन्यवाद करेगा। मैंने ऐसा होता भी देखा है। कारावास में निवास करने वाले व्यक्ति के बीच और कारागार के अधिकारियों के बीच एक विशाल अंतराल है। और यह अंतराल तब तक बढ़ता ही जाएगा जब तक कि कारागार के अधिकारी यह समझ नहीं लेते कि उस में रहने वाला व्यक्ति उन से कोई भिन्न व्यक्ति नहीं है, सिवाय इसके कि उसने किसी विधि का भंग किया है। अभी भी उसकी भावनाएं विद्यमान हैं और वह अभी भी मनुष्य ही बना हुआ है। और जब तक

सुधारात्मक कार्यवाहियां नहीं की जातीं और कारागार में निवास करने वाले व्यक्ति पुनर्वास धारण नहीं कर लेते तथा प्राणी विज्ञान (जुआलोजी) पर आचरण करना समाप्त नहीं कर देते तब तक वे निरन्तर कारागार और निवासियों के बीच अराजकता और कठिनाइयों की प्रत्याशा कर सकते हैं।

—लेविस मूर"

हमें ब्रिटिश रॉयल कमीशन[1] की समुचित राय पर ध्यान देना चाहिए—

"यदि यह सुझाव दिया गया होता कि चूंकि अनेक अपराध किये गये हैं इसलिए यह चाहिये कि हत्यारों को विशेष रूप से कठोर व्यवहार का सामना करना पड़े तो यह बात आधुनिक कारागार सम्बन्धी प्रशासन के स्वीकृत सिद्धान्त के विरुद्ध होगी जो यह है कि कैद स्वयं एक शास्ति है और यह कि कारागार प्राधिकारियों का यह कृत्य नहीं है कि वे दिन प्रतिदिन अनुशासन, श्रम, भोजन तथा सामान्य व्यवहार की दाण्डिक अवस्थाओं द्वारा और भी अधिक शास्तियां अधिरोपित करें।".

34. इस विचारधारा की सुसंगति की कैद से बढ़ कर क्षति दाण्डिक पद्धति के दोष रूपी उद्देश्य को दूर करने के विरुद्ध हो सकती है। ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट हो जाएगा जब हम अनुच्छेद 19 की कसौटी पर और कार्यवाही की युक्तियुक्तता पर ऐसे आरोपों को परखेंगे। इन दोनों मामलों में तथ्य सम्बन्धी स्थितियों को भली-भांति देखने के पश्चात् इन प्राथमिक पहलुओं के गहराई से लागू किये जाने पर विचार किया जा सकता है। यहां इतना कहना काफी होगा कि जब तक न्यायाधीश सांविधानिकता के प्रति जागरूक रहते हैं और उसे लागू करते हैं और वैधता की संपरीक्षा का निष्पादन करते हैं तथा सिद्धदोष व्यक्ति उस छोटी-सी काल कोठरी में जिसे कारगाार कहा जाता है न्यायालय के समादेश द्वारा दण्डादिष्ट कालावधि भुगतते हैं तब तक परिपाटी के अन्तर्गत एक निरन्तर संस्थागत उत्तरदायित्व निहित रहता है जिसके द्वारा कारावास की प्रक्रिया को प्रवर्तित किया जाता है और सुरक्षा के 'अतिरेकों' को निवारित किया जाता है। जेलर कारागार विधि के नियम द्वारा आबद्ध हैं और वे अनुपूरक दण्डादेशों का अधिरोपण छद्मवेश के अधीन नहीं कर सकते और न ही वे कारावास के प्राथमिक

1. रॉयल कमीशन ऑन कैपिटल पनिशमेन्ट 1949-53 (रिपोर्ट) पृष्ठ 211-217.

प्रयोजन को निष्फल बना सकते हैं। बाध्यकारी कोठरी के एकांत अथवा लोहे की सलाखों द्वारा चलने-फिरने की मनाही की अतिरिक्त यंत्रणा—यही परिवाद यहां किया गया है—ऐसा परिवाद है कि उसे अयुक्तियुक्त, मनमाना और असांविधानिकता के अत्यंत निकट कहकर संकटापन्न बनाया जा सकता है।

35. **न्यायालय का निर्वचनात्मक कृत्य कब अविधिमान्यकारी अनुकल्प का सामना करता है**—बत्रा ने कारागार अधिनियम, 1894 (जिसे संक्षेप में अधिनियम कहा गया है) की धारा 30(2) की सांविधानिकता को विवादास्पद कहकर विवाद किया है जब कि सोबराज ने धारा 56 की विधिमत्ता पर आक्षेप किया है। किन्तु न्यायालय उपबंधों को अभिखण्डित करने का तुरन्त प्रयत्न नहीं करता है जहां कि न्यायिक प्रयत्न, लाभकारी रूप से निर्वचनात्मक होते हुए सांविधानिकता तथा करुणामय पुनरुद्धार दोनों को प्राप्त कर सकता है। विधि की विधिमान्यता को कायम रखने और उसे लागू करने को विनम्र बनाने की लाभदायक प्रणाली को राज्य की ओर से हाजिर होने वाले श्री सोली सोराबजी द्वारा सुचारु रुप से अपनाया गया है। हमारे दृष्टिकोण में दिनांकित विधान के जीवित स्वरूप को अद्यतन बनाने की अर्थबोध संबंधी तकनीक पूर्णतः विधिसम्मत है विशेष रूप से तब जब कि हमारे जैसे विकासशील देश में विधि निकाय (कारपस ज्यूरस) कुछ हद तक बीते राज का शेष अंश है।

36. प्रकोष्टक के रूप में हम इस अचंभे को व्यक्त करते हैं कि पंजाब जेल मैन्युअल, 1975 के अनुसार 1818 का राजनीतिक कुप्रसिद्ध विनियम 3 और गांधीजी द्वारा दिए गए आह्वान का वर्जन है जो कि स्वतन्त्र भारत के 'विधि निकाय' में अभी भी शेष है, चाहे हम विचारण के बिना निरोध के विरुद्ध कितना भी शोरगुल करें और गांधीजी के प्रति श्रद्धांजलि दें।

37. आज के भारत की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्वतन्त्रता के आज्ञापक तत्व यह वांछा करते हैं कि न्यायालयों की निर्वचन करने तथा विधान को लागू करने की सृजनात्मक भूमिका होनी चाहिए, विशेष रूप से तब जब कि शासकीय मुद्रा के समय से चले आ रहे अधिनियम हमें शासित करते हैं। शब्दों का पुंज संसार की वृद्धि के साथ बढ़ता रहता है। यह अर्थबोध का प्रगतिवादी सिद्धान्त है।

रीड डिकरन ने सुझाव दिया है—

.....न्यायालय कम से कम मौलिक विधान के नियंत्रण से

स्वतन्त्र हैं। जैसे कि कर्टिस ने ही यह दलील दी है कि कानून के अभिनिश्चित अर्थ के अनुकूल, न्यायालय को चाहिए कि वह पुरातन काल की धूल को झाड़ दें और वर्तमान स्थिति में अपने कदमों को दृढ़ता से स्थापित कर दें।

.....जिस विधानमण्डल ने कानून को पारित किया है वह स्थगित हो चुका है, और उसके सदस्य अपने संघटकों में निवास कर रहे हैं अथवा वे समस्त विधि के निर्माण से दीर्घ कालीन अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। बेहतर यह होगा कि आदमी आने वाले समय का अनुमान पहले से ही लगाले बजाय इसके कि वह पुरातन का सर्वेक्षण करें। बेहतर यह कि भावी विधान के प्रति सौष्ठवमय आदर प्रस्तुत करें बजाय इसके कि हम उसके प्रति भर्त्सनावह होकर भावनाओं को प्रदर्शित करें जिसने कि अपने कागजपत्रों को समेट लिया हो और दूरस्थ क्लब में अथवा शमशानघाट से जाकर अपने मित्रों में जा मिला हो.....

.....न्यायालयों को चाहिए कि वे इस बात पर विचार-विमर्श करें कि वर्तमान अथवा भावी विधान ऐसी अवस्था में क्या करेगा जब उसने न्यायालय की राय का परिशीलन कर लिया हो, जब स्थिति का स्पष्टीकरण किया जा चुका हो, जब कि विधि के समस्त ताने-बाने को इस रूप में प्रदर्शित किया जा चुका हो जिसमें कि विधान-मंडल का यह विशिष्ट अंश समंजित किया जाना था।"[1]

38. विधानमण्डल के प्रति सांविधानिक श्रद्धा तथा यह गणतंत्रात्मक उपधारणा कि जनता के प्रतिनिधि समाज की बुद्धिमत्ता को अभिव्यक्त करते हैं न्यायालयों को कानूनों का निर्वचन करने के लिए प्रेरित करते हैं जो कि उपबंध की विधिमान्यता को परिरक्षित तथा कायम रखता है, अर्थात् न्यायालय को चाहिए कि वे बुद्धिमत्तापूर्ण सूझबूझ के साथ संविधान के मूल्यों के प्रति अपने आप को अवगत करें और कृत्यशील लचीलेपन के साथ आंतरिक अर्थबोध की खोज करें जिससे कि ऐसा अर्थान्वयन अपनाया जा सके जो कि मानवता के साथ प्रश्नगत कानून को संविधान का रूप देता है। यदि इसी बात को सादे तौर पर कहा जाए तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम कारागार अधिनियम की धारा 30 और 56 और प्रिज़न मैनयुअल के पैराओं का निर्वचन इस प्रकार करें कि जब कि शब्द प्राचीन काल के हों उनका

[1] दि इण्टरप्रिटेशन एण्ड एप्लीकेशन ऑफ स्टेट्यूट्स, पृ० 282.

अर्थबोध नवीन विचारधारा पर प्रकाश डालता हो। **वीम्स** बनाम **यूनाइटेड स्टेट्स**[1] वाले मामले में विकासशील मार्गदर्शन हमारे दृष्टिकोण को ऊर्ध्वस्थ स्थान देता है

> "यह सही है कि कानूनी एवं सांविधानिक विधान दोनों द्वारा अधिनियमित किया जाता है किन्तु इसलिए इसकी सामान्य भाषा निश्चित रूप से उस स्वरूप तक सीमित नहीं रहनी चाहिए जो कि पूर्वोक्त दोष में निहित थी। समयानुसार किए गए कार्य का परिवर्तन नई अवस्थाओं और प्रयोजनों को अस्तित्व में लाता है इसलिए इस हेतु कि कोई सिद्धान्त मार्मिक हो वह निश्चित रूप से व्यापक रूप से लागू होने वाला होना चाहिए बजाय उस रिष्टि के जिससे कि वह उत्पन्न हुआ था। संविधानों की दशा में यह विशिष्ट रूप से सही है। न्यायाधिपति मार्शल के शब्दों का प्रयोग करते हुए हम यह कहेंगे कि वह वहां तक जहां तक कि मानविक संस्थाएं पहुंच रख सकती हैं मर्त्यशील दृष्टिकोण के लिए अभिकल्पित है।" भविष्य उनकी देख-रेख में है एवं अच्छी तथा बुरी घटनाओं के लिए उपबंध ऐसी प्रवृत्तियां रखते थे जिनका कि कोई पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता। इसलिए संविधान के लागू किए जाने में हमारे अनुध्यान के बारे में केवल यह नहीं सोचा जा सकता कि क्या हुआ है बल्कि यह भी सोचना चाहिए कि क्या होगा ? किसी अन्य नियम के अधीन संविधान निस्सन्देह इतनी सुगमता से लागू होगा जहां तक कि वह दक्षता तथा शक्ति में कम है। इसके सामान्य सिद्धान्त किंचित् मूल्य भी नहीं रखेंगे और उसने पूर्वोदाहरण द्वारा उसे संपरिवर्तित करके सशक्त तथा सजीव सूत्रों का रूप दे दिया था। हो सकता है कि ऐसे अधिकार जिनकी घोषणा शब्दों में की गई हो, वास्तविकता में खो जाएं और इसे मान्य ठहराया गया है। संविधान की सार्थकता तथा शक्ति संकुचित एवं निर्बन्धित अर्थान्वयन के विरुद्ध विकसित हुई है।"

39. हार्वर्ड लॉ रिव्यू में **वीम्स** बनाम **यूनाइटेड स्टेट्स**[1] वाले मामले पर जोर देते हुए एक टिप्पण किया गया है जो ऐसे प्रगतिशील अर्थान्वयन पर आग्रह करता है—

---

1 54 लॉइयर्स एडीशन 801.

"'क्रूर तथा अप्रायिक' दण्ड के अधिरोपित किए जाने के भय को 1680 के बिल ऑफ राइट्स में देखा गया है जब कि ब्लडी ऐसीज़ के न्यायाधिपति जैफरीज़ तथा उसके सहयोगियों की प्रसिद्धि सामान्य जनता के मन में स्टुअर्ट के अधीन छाई हुई थी। यूनाइटेड स्टेट्स के संविधान के अष्टम संशोधन में यही प्रतिषेध पाया गया है.....(न्यायालयों ने) यह अभिनिर्धारित किया है कि अब जिस बात को क्रूर तथा अप्रायिक समझा जाता है वह वास्तव में उसके द्वारा प्रतिषिद्ध की गई है। इन विभिन्न दृष्टिकोणों में निर्वचन के सम्बन्ध में एक और भिन्न प्रतिक्रिया देखने में आती है और उसके द्वारा ऐसे न्यायालयों को विलग रखा गया है जो कि शब्दों को दण्ड की पद्धति या रीति से इस प्रकार सीमित रखते हैं जो कि अर्थ के अन्तर्गत उसकी कोटि तथा कठोरता को अन्तर्विष्ट करते हैं। हाल ही के एक मामले में जिसका सम्बन्ध बिल ऑफ राइट्स ऑफ दि फिलिपाइन आइलैण्ड्स के ऐसे उपबन्ध से था जिसका कि वैसा ही अर्थ है जैसा कि अष्टम संशोधन का, यूनाइटेड स्टेट्स की सुप्रीम कोर्ट ने अति उदारपूर्वक निर्वचन के प्रति वचनदान दिया था और केवल यही अभिनिर्धारित नहीं किया था कि खण्ड का सम्बन्ध दण्ड की कोटि का है बल्कि सार्वजनिक राय को प्रकाशित करने में वृद्धि करने के साथ साथ उसकी परिधि में विस्तार का अनुमोदन किया था (वीम्स बनाम यूनाइटेड स्टेट्स, 217 यू० एस० 349)। वास्तव में इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि बीसवीं शताब्दी में पारित की गई कोई विधि अनन्य रूप से ऐसे दुष्प्रयोगों के प्रति उद्दिष्ट है जो कि लगभग 200 वर्ष पूर्व लुप्त हो गए थे, हालांकि यह पुरातन विधेयक का रूपान्तर है। और अत्यधिक दण्ड के बारे में यह हो सकता है कि वह प्रकृति की दृष्टि से इतनी क्रूर हो जैसे कि दण्ड होता है। विसम्मति प्रकट करने वाले न्यायाधिपति में से एक ने न्यायाधीशों द्वारा हस्तक्षेप की चर्चा की हालांकि वह अनपेक्षित मात्र प्रतीत होती है। कारण यह है कि अननुपातिक दण्ड को निवारित करने का प्रयोग करना केवल तभी उचित होता है जबकि सार्वजनिक भावना को आघात पहुंचाता हो। सूक्ष्म परिसीमा सहित इस मामले द्वारा अधिकथित इस खंड का क्रमिक अर्थान्वयन वांछनीय प्रतीत होता है।"[1] (अधोरेखांकन हमने किया है)

[1] (1970-71) 24 हार्वर्ड लॉ रिव्यू 54-55.

40. कानूनी अर्थान्वयन का विधिशास्त्र विशेष रूप से तब जब कि उद्देश्य अर्वाचीन स्थिति से पूर्ण भंग हो तथा महत्त्वपूर्ण सांविधानिक मूल्यों में उचित समझौता अवपठन करने की कला तथा व्यापक रूप से पठन का प्रयोग निर्वचनात्मक निर्माण के भागस्वरूप है। सामाजिक तनावों के बीच न्यायाधीश स्थापित मध्यस्थों के रूप में कार्य करते हैं। इस न्यायालय ने आर० एल० अरोड़ा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य[1] वाले मामले में तथा अनेक अन्य मामलों में इस प्रस्थापना के लिए पूर्वोदाहरण के रूप में समर्थन दिया है जहां कि वह प्रक्रिया किसी कानून को सार्वजनिक बनाती है। विद्वान् अपर महासालिसिटर ने हम से यह आग्रह किया है कि कारागार अधिनियम (धारा 30 और 56) प्रकाशमान मूल्यों की ओर ले जा सकता है यदि हम कठोर दिखाई देने वाले शब्दों में नई भावनाएं अन्तर्विष्ट करें। "यह सुस्थिर है कि यदि एक रीति से अर्थान्वयिक विधि के कतिपय उपबंध संविधान से सुसंगत हों और कोई दूसरा निर्वचन उन्हें असांविधानिक बनाता हो तो न्यायालय पूर्ववर्ती अर्थान्वयन के पक्ष में निर्णय देगा।"

41. इस नियम को सन्देहातीत रूप से स्थापित करने के लिए, निर्वचन के द्वारा अन्तरालस्थ विधान विधि की एक जीवन प्रक्रिया है और न्यायाधीश इसका भाग गठित करते हैं। प्रस्तुत मामले में हमें, इस अर्थ सम्बन्धी पुनः सामंजस्य को अपनाना पड़ा है जिससे कि तर्क सम्बन्धी परिणाम से बचा जा सके। विधिमान्यकरण सम्बन्धी दृष्टिकोण कानूनी अर्थान्वयन का सिद्धान्त बन जाता है जैसा कि हम इसे लागू करके स्पष्ट करेंगे।

दोनों समस्याएं तथा हमारा मूलभूत दृष्टिकोण

42. हमारे समक्ष उल्लिखित प्रश्न ये हैं कि क्या बेंत्रा पर एकांतवत् कोठरी में जिस प्रकार की अभिरक्षा अधिरोपित की गई है क्या वह उसके मृत्यु दण्डादेश में विवक्षित है और अन्यथा विद्यमान है तथा सोबराज पर, जो कि अभी विचारणाधीन व्यक्ति है, जो भारी लोहे की सलाखें थोपी गई हैं क्या वे हमारी सांविधानिक गारण्टियों के अनुकूल हैं जिनमें कि कारागार के वातावरण द्वारा स्वतन्त्रता को विशेषित तथा कम किया गया है। आवश्यक रूप से हमारा पर्यवेक्षण मानविक एवं विधिशास्त्रीय होना चाहिए जो कि हमारे संविधान की करुणा का रूप धारण कर सके और मानविक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय चेतना के अनुकूल हो।

43. यहां जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है उसे स्पष्ट करने के लिए तीन उद्धरण दिए जा रहे हैं।। विल ड्यूरां के शब्दों में, "सभी भद्र पुरुषों के

[1] हार्वर्ड लॉ रिव्यू, खण्ड 24 (1970-71) पृष्ठ 54-55.

लिए यही समय है कि वे अपने समाज की सहायता में जुट जाएं जिसका नाम सभ्यता है।[1] और इसके अलावा मुख्य न्यायाधिपति ई० सर्जर का सम्प्रेक्षण और भी विशिष्ट है जो इस बारे में है कि जब किसी अपराधी को सिद्धदोष कर दिया जाता है तो उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए, अर्थात् यह एक ऐसी समस्या है कि जिसका कि हल मनुष्य मात्र नहीं ढूंढ पाया और जिसकी व्यापक रूप से उपेक्षा की जा रही है।" और विन्स्टन चर्चिल का विशिष्ट विचार एवं सुसंस्कृत शैली भी इसी बात को दोहराती है—

> "अपराध तथा अपराधियों से व्यवहार के सम्बन्ध में जनता की विचारधारा तथा दृष्टिकोण किसी भी देश की सभ्यता की कसौटियों में से सर्वोत्तम रूप से अडिग कसौटी है।"

और एक ऐसा टिप्पण, जो कि इस विचार को निष्कर्ष प्रदान करता है इस प्रकार है। नवम्बर, 1969 में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रकाशित "पीपल इन प्रिज़िन" नामक परिपत्र व्हाइट पेपर में एक गंभीर विचार अन्तिम पैरा में दिया गया है जो कि भारत में, यूनाइटेड किंग्डम की अपेक्षा अधिक सही है—

> "कोई ऐसा समाज जो कि व्यक्तियों के महत्व में विश्वास रखता है ऐसा हो सकता है कि उसके विश्वास की गुणिता पर कम से कम भागत:, उसके आग्रह तथा खोज सम्बन्धी सेवाओं एवं उन्हें उपलभ्य किए गए स्रोतों की गुणिता के आधार पर निर्णय लिया जाए।"

बत्रा वाले मामले के तथ्य

44. अब मैं प्रथम रिट पिटीशन के जटिल तथ्यों से प्रारम्भ करूंगा। सुनील बत्रा ने—जिसे मृत्यु दण्डादेश दिया गया है, किन्तु जो जीवित रहने का प्रयास कर रहा है, सहानुभूतिपूर्वक यह आवेदन किया है कि हालांकि उसकी अपील मृत्यु दण्डादेश के विरुद्ध अभी भी लम्बित है वह एकांत परिरोध में रखा जा रहा है जोकि दण्ड संहिता, दण्ड प्रक्रिया संहिता, कारागार अधिनियम तथा संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 के विरुद्ध है। दिल्ली के सेशन न्यायालय ने जघन्य हत्या तथा लूटमार का दोषी अभिनिर्धारित किया था और जनवरी सन् 1977 में ही उसे मृत्यु दण्डादेश दिया था। उस समय

[1] विल ड्यूरां द्वारा लिखित लेख "ह्वाट लाइफ हैज टॉट मी" जो भवन्स जर्नल खण्ड 24, सं० 18, 9 अप्रैल, 1978 पृ० 71 में प्रकाशित किया गया। देखिए इसी का पृ० 72.

बत्रा 'बी' श्रेणी का कैदी था जिसे ऐसी सुविधायें प्राप्त थीं जिनसे कि वह अपने परिरोध को सहन कर सकता था और उसका परिरोध दया की दृष्टि से उचित था। किन्तु जब एक बार मृत्यु दण्डादेश सुना दिया गया तो कारागार के अधीक्षक ने तुरन्त साथी मनुष्यों से उसे विलग कर लिया, 'बी' श्रेणी की सुविधाओं को छीन लिया और उसे एकल कोठरी में बंद कर दिया जिसके साथ एक छोटा-सा दीवार वाला आंगन संलग्न था और वह अन्य व्यक्तियों को न तो देख सकता था और न ही उनकी आवाज़ सुन सकता था, सिवाय कारागार के परिरक्षकों के तथा औपचारिक रूप से आने वाले आगन्तुकों के जो कि अपने शासकीय कार्यों का निर्वहन करने के लिए आया करते थे और सिवाय कुछ अन्य आने जाने वाले व्यक्तियों के जो कि कभी कभार वहां आते थे। कैदी ने अपनी दोषसिद्धि तथा दण्डादेश के खिलाफ उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की जिसने कि दण्ड प्रक्रिया संहिता, जिसे संक्षेप में 'संहिता' कहा गया है, की धारा 395 के अधीन मृत्यु दण्डादेश की पुष्टि के लिए निर्देष की भी सुनवाई की थी। इसी बीच—और यह निस्संदेह एक अतिदीर्घ कालावधि थी—उसे मानों एक एकांत कोठरी में जो कि गोदाम के समान थी रखा गया तथा सारवान रूप से ऐसी स्थिति में बनाए रखा गया कि वह किसी से किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं कर सकता था।

45. उच्च न्यायालय में अर्ध एकांत परिरोध पर संभवतः अस्पष्ट रूप से (कारागार अधिनियम की धारा 30 तथा पंजाब जेल रूल्स की सांविधानिक त्रुटियों का विशिष्ट रूप से वर्णन न करते हुए) उच्च न्यायालय ने उस मामले को संक्षिप्त रूप से निपटा दिया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने दलील देते हुए यह कथन किया : "विचारार्थ एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या पिटीशनर को मृत्यु दण्डादेश के पुष्टिकृत किये जाने तक उसके द्वारा यथा अपेक्षित सुविधा प्रदान की जा सकती है। इन सभी नियमों का परिशीलन करने पर मेरा यह स्पष्ट दृष्टिकोण है कि उसे ऐसी सुविधाएं नहीं दी जा सकतीं क्योंकि इसके परिणाम भयंकर हो सकते हैं। राज्य का यह भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उस कैदी का जिसे मृत्यु दण्डादेश दिया गया हो निजी सुरक्षा की ओर भी ध्यान दे। पिटीशन में कोई बल नहीं है और उसे एतद्द्वारा खारिज किया जाता है।" खण्ड न्यायपीठ के समक्ष की गई अपील वापस ले ली गई थी और अनुच्छेद 32 के अधीन वर्तमान रिट पिटीशन फाइल किया गया था जिसमें साधारण कैदी ने अपनी विपत्तियों की गाथा का तथा कुछ सांविधानिक सामान्य बातों का वर्णन किया था जिनमें बाद में श्री वाई० एस० चितले ने न्याय-मित्र के नाते किन्चित् अनुपूर्ति की थी। उसके

दर्दनाक वृत्तांत का वर्णन काउन्सेल द्वारा चित्रित किया गया था । दिन रात भयानक दीवारें सभी ओर से उसे आक्रान्त करती हैं, खाद्य पदार्थ उसके प्रकोष्ठ में घुसेड़ दिया जाता है और उसी स्थल पर मलमूत्र सम्बन्धी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति उसे करनी होती है। चिंतनशील अपने शीर्ष को विश्राम प्रदान करने के लिए कोई तकिया नहीं है, भीतर कोई प्रकाश नहीं है, सिवाय उस बल्ब के जो कि आवश्यकता हो या न हो रात भर बाहर जलता रहता है । अभिरक्षक द्वारा निरन्तर अनिवार्य रूप से कैदी के एकांतवास में आ धमकने के सिवाय तथा अधिकारियों के नियमानुसार वहां आ कर घूमने-फिरने के सिवाय तथा अनुज्ञात सम्बन्धियों अथवा मित्रों के कुछ नियमित आगमन को छोड़कर वह किसी मानव का न तो चेहरा ही देख सकता है और न ही उसकी आवाज़ सुन सकता है । किन्तु, लोहे की सलाखें उसके इर्द गिर्द रहती हैं और बीच-बीच में अभिरक्षक की उपस्थिति झांकती रहती है उदार-पूर्वक आधे घंटे का जो समय प्रातः और सायं दिया गया है उसे छोड़कर वह किसी प्रकार का व्यायाम नहीं कर सकता और उसे केवल दीवार के अन्तर्गत छोटे से स्थान पर रहना पड़ता है जहां कि यदि वह योगी हो तो आसन कर सकता है, यदि सन्यासी हो तो समाधिस्थ रह सकता है और प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित कर सकता है यदि वह वर्ड्सवर्थ या विटमैन हो अथवा यदि वह साधारण मिट्टी का पुतला है तो दर्दनाक रुलाई के सिवाय कुछ नहीं कर सकता है । हां, कुछ किताबें तो वहां हैं, किन्तु समाचार पत्रों का नाम नहीं । जहां तक दूसरों से बात करने का प्रश्न है, ऐसा तो सम्भव नहीं, सिवाय अपने आप से वार्तालाप करने के । दूसरे मनुष्यों को देख पाना सिवाय मनोवेदनापूर्वक भ्रान्ति में कठोर करुणा के कुछ भी नहीं । अनुज्ञात आगन्तुकों की विहित कोटि को छोड़कर और सेन्सर किये गए पत्रों को छोड़कर जिनकी अनुज्ञा उसे मिली हुई है, श्री चितले का यह कहना है कि यह विलगता मूलभूत सामूहिक जीवन का उल्लंघन है जो कि तब से लेकर जब से मनुष्य मात्र ने जन्म लिया है उसका सामाजिक वातावरण रहा है और इस प्रकार वह मानसिक उद्वेग में रह रहा है जब कि ऐसी स्थिति वर्षों से बनी हुई है और यह इतनी कठोर है कि इसके बारे में आंसू भी सूख जाते हैं और ऐसी जगह जिसे मूक तपस्वियों एवं एकाकी गुहावासियों की प्राचीन भूमि का नाम दिया गया है । जहां तक कुछ महान गिने चुने व्यक्तियों का प्रश्न है उनके बारे में कभी-कभी एकांतवास सर्वोत्तम सान्निध्य है किन्तु यदि वह दीर्घ समयों तक चलता रहे तो मनुष्य पागल हो जाता है आधुनिक मनुष्य के उत्तेजित जीवन के लिए, विशेष रूप से तब जब कि दण्डादेश का दबाव उस पर सवार हो

एकान्तवास एक गम्भीर स्थिति है और काल-कोठरी का खोखला स्थान डरावना है। थोड़ी देर के लिए आप मर्त्यशील प्राणियों के बारे में सोचिए न कि ध्यान मग्न साधुओं के बारे में। उनको अकेले पिंजरे में बंद कर दीजिए और उनके मस्तिष्क तथा विचारधारा को संवेदनशील विचारों के अधीन अपने वश में कर लीजिए। तब आप को पता चलेगा कि छोटे-छोटे क्षण भी मंद मंथर द्वेष में अन्तर्ग्रस्त हो जाएंगे, ऊब और असन्तोष की भावना के साथ घंटों का समय उसे आच्छादित कर लेगा और दिन उसे मौत की तरह दिखाई देंगे एवं सप्ताहों भर एकांतवास उसके लिए एक दुर्भावनापूर्ण निःस्तब्धता का रूप धारण कर लेगा। निश्चित रूप से धीरे-धीरे गुज़रने वाले मास अथवा तनहाई, नीरस रातें जो कि गुंजायमान तथा काटने वाले मच्छरों के झुंडों द्वारा और भी दुःखद बना दी गई हो एवं बहुत सी कालकोठरियों में जिनमें कि रक्त के पिपासु खटमलों के समूह रात में न जाने कहां से अदृश्य स्थान से आविर्भूत हो जाते हैं और छिपकर काटते रहते हैं मनुष्य को यदि पागल नहीं बना देगा तो और क्या होगा। कैदी के लिए समय तो मानों रुक गया है और उससे परेशान व्यक्ति को इस बात का अचम्भा होता है कि क्या मृत्यु इससे बेहतर नहीं है ? काउन्सेल द्वारा चित्रित रूप में एकांत काल-कोठरी की यंत्रणा तथा तनाव ऐसा है।

46. यहां दृष्य तिहाड़ जेल का है और उसको देखने मात्र से वह अच्छी प्रतीत होती है। विधि आकाश में सर्वव्यापी विचारशील भावना नहीं है बल्कि वह धरती पर आचार सम्बन्धी सर्वशक्तिमत्ता है और सिद्धान्तगत व्यावहारिक वाद की गणना के बारे में क्या किया जाना चाहिए और क्या नहीं किया जाना चाहिए इस बारे में संकेत करती है। इसलिए कारागार विधि सम्बन्धी समस्याओं की बाबत किसी भी विचार-विमर्श से पूर्व कालकोठरी तथा उसके परिसर को देख कर उन पर विचार करना आवश्यक है। इस कारणवश अब हम मुख्य न्यायाधिपति बेग ने निरीक्षण करके जो टिप्पण किये थे और उन्होंने ऐसा अपनी खण्ड न्यायपीठ के दो बन्धुओं के साथ कालकोठरी का दौरा करने के पश्चात् कहा था, वर्णन करेंगे—

> "हमने उस कोठरी का निरीक्षण किया जिसमें कि कैदी को परिरुद्ध रखा गया था। हमें यह जानकर सांत्वना मिली कि वहां जो देखने में आया वह उस चित्र के तत्समान नहीं है जो कि कैदी के काउन्सेल ने हमारे समक्ष जोरदार दलील देकर हमारे मस्तिष्क में बिठाने की कोशिश की थी। हमको यह विश्वास करने के लिए कहा गया था कि कैदी को एक प्रकार की कालकोठरी में रखा गया था जो कि एक

छोटी सी खोली के समान थी जिसमें प्रकाश केवल तब प्रवेश कर सकता था जब कि पर्याप्त सूर्य की रोशनी हो। यह सही है कि कैदी एक ऐसे कमरे में रहा था जिसका फर्श सीमेंट का बना हुआ था, उस पर कोई चारपाई फर्नीचर नहीं थे और न ही कोई उसमें खिड़कियां थीं प्रकाश उन झरोखे में से आता था जो कि दीवार पर लोहे की सलाखों से युक्त था और कमरे के पिछले भाग में लगा हुआ था और सामने लोहे की सलाखों का एक बड़ा दरवाजा था। किन्तु वहां रोशनी पर्याप्त थी। यह भी सही है कि पिटीशनर के लिए ऐसा काई अलग से कमरा नहीं था। जिसमें कि वह स्नान कर सके अथवा शौचालय जा सके, किन्तु इसी कमरे में, जिसका मानचित्र कारागार प्राधिकारियों द्वारा प्रस्तुत किए गए डायाग्राम में दिया गया है, पानी और सेनेटरी (स्वच्छता सम्बन्धी) फिटिंग कमरे के कोने में लगी हुई थी। कमरे के सम्मुख एक छोटा-सा बरामदा था जिसकी दीवारें पक्की थीं और उसमें लोहे का दरवाज़ा लगा हुआ था जो कि समीपस्थ कोठरी के सामने उसी प्रकार के बरागदे से उसे लोहे की सलाखें लगाकार अलग रखा गया था। इस बरामदे में प्रवेश भी इसी प्रकार के लोहे के दरवाजे में से था। अन्दर वाला कमरा जिसमें कि कैदी को परिरुद्ध किया गया था उसमें भी लोहे की सलाखों का एक दरवाजा था। सभी दरवाज़े फ्रेमों से युक्त थे जिन पर लोहे की सलाखें लगी हुई थीं ताकि सलाखों के बीच में से जो खाली स्थान था वहां से कोई भी व्यक्ति बाहर देख सकता था। इन सभी दरवाज़ों पर ताले लगे हुए थे। हमें यह पता चला कि पिटीशनर को दिन के कुछ निश्चित समयों पर बरामदे में आने की अनुज्ञा थी। ऐसे समय पर वह केवल अन्य ऐसे कैदियों से बातचीत कर सकता था जो समान दशा में परिरुद्ध थे, उनसे वह मिल सकता था और बातचीत कर सकता था किन्तु यह सब लोहे की सलाखों के बीच में से। दूसरे शब्दों में, सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए यह एकांत परिरोध सरीखा था।

हमने देखा कि ऐसे कैदियों, जिन्हें मृत्यु दण्डादेश दिया गया था, के लिए बनाई गई कोठरियों की कतार में प्रत्येक कैदी के लिए अलग से कोई अभिरक्षक (गार्ड) नहीं था। निश्चित रूप से इन सभी कैदियों को विलग रखा गया था और अलग स्थान दिया गया था विधि के पद के रूप में 'एकांत परिरोध' के अर्थ बोध पर विधि के पद

के रूप में विचार किये बिना इस बात का अवधारण करना कठिन है कि क्या जिन अवस्थाओं में पिटीशनर को रखा गया था वे 'एकान्त परिरोध' की कोटि में आती थीं। संभाव्यतया, यदि एक कोठरी और दूसरी कोठरी के बीच लोहे की सलाखों वाली छोटी-छोटी खिड़कियां उपलभ्य कर दी जाती हैं तो कैदी एक दूसरे से बातचीत भी कर सकते हैं जिससे कि परिरोध 'एकांत परिरोध' नहीं माना जाएगा, बावजूद इस बात के कि उन्हें समीपस्थ कोठरियों में अलग-अलग रखा गया है।

पिटीशनर ने ऐसी किसी कठिनाई की शिकायत नहीं की है, सिवाय इसके कि उसे एकांत परिरोध में रखा गया था और फर्श पर सोना पड़ता था उसने हम से कारागार के एक अन्य भाग को देखने की भी मांग की जिसमें विचारणाधीन कैदी रखे गये थे। जब हमने उस भाग का दौरा किया तो हमने यह देखा कि विचारणाधीन कैदियों के लिए वहां डारमिटरियों की व्यवस्था की गई है जहां कि चारपाइयां भी हैं और वहां वे स्वयं अपने कपड़े और बिस्तर रख सकते हैं। कारावास के उस भाग में उनके पास रेडियो सैट भी जिनमें से कुछ कैदियों के स्वयं अपने थे और शेष जेल के थे। विचाराधीन कैदियों को यह इजाज़त थी कि वे एक दूसरे से मिल जुल सकें, खेलकूद कर सकें अथवा अहाते के अन्दर जो भी चाहे कर सकें।" (अधोरेखांकन हमने किया है)

47. अपने कारावास में कैदी की अवस्था पर निर्भर करने वाले मूलभूत तथ्यों से इनकार नहीं किया गया है हालांकि प्रतिशपथ पत्र में कुछ ऐसी बातों का प्रकथन किया गया है कि पिटीशनर की दृष्टि से इस पद्धति को जिन मानसिक त्रास का लांछन लगाया गया है वह बेतुका और अविधिमान्य है।

48. दण्डादेश के पश्चात् बत्रा के वृत्तांत को अद्यतन बनाने के लिए यह आवश्यक है कि यह कह दिया जाए कि अब उच्च न्यायालय ने उस पर अधिरोपित मृत्यु सम्बन्धी शास्ति को कायम रखा है; और उसे अब भी यह अवसर प्राप्त है कि वह अनुच्छेद 136 के अधीन अपील करने के लिए इजाज़त प्राप्त करने का अवसर मांग सके और यदि वह इस विधि सम्बन्धी मामले में अन्तिम रूप से निष्फल रहता है तो वह अन्ततः अनुच्छेद 72 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा मृत्यु दण्डादेश को न्यूनतर दण्ड में परिवर्तित कर सके। जब उच्चतम न्यायालय और राष्ट्रपति उसके जीवन के अधिकार के प्रति मनाही

कर देते हैं तो तब से लेकर सामूहिक कालावधि पर्याप्त कालावधि हो जाती है जैसा कि इस मामले में है। यदि सभी प्रक्रमों पर उसे अनुकूल व्यवहार नहीं मिलता है और उसे फांसी के फंदे पर लटकाए जाने के लिए दण्डादिष्ट कर दिया जाता है तो जब वह ऐसे अदृश्य देश में पहुंच जाता है जहां से कोई यात्री लौट कर नहीं आता तो बात भिन्न अध्याय का रूप धारण कर लेती है। वेदना की इन कालावधियों को अलग रखते हुए अब हम अर्द्ध एकांत परिरोध के विवाद्यक तथा उसकी विधिमान्यता के गंभीर दृष्टिकोण पर विचार करेंगे।

49. इससे पूर्व कि किसी व्यक्ति से चलने फिरने की स्वतन्त्रता छीन ली जाए, अनुच्छेद 21 विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया पर बल देता है। ऐसी दशा में किसी व्यक्ति को कंकाल स्वरूप नितांत एकपंत उसकी स्वाधीनता को समाप्त करने के लिए किस विधि का अवलम्ब लिया गया है? कारागार अधिनियम की धारा 30 का ऐसी दशा में आश्रय लिया गया है। प्रत्यर्थी ने प्रतिशथपत्र में कालकोठरी के एकांतवास तथा सहचरों के प्रवंचन को अतिष्ठित करने के लिए निम्नलिखित तथ्यों का सहारा लिया है—

> "वास्तव में मैं यह निवेदन करता हूं कि कारागार अधिनियम की धारा 30 के उपबंधों में दण्डादिष्ट सभी कैदियों की संरक्षा के लिए सभी आवश्यक रक्षोपायों को अन्तर्विष्ट किया गया है क्योंकि ऐसे कैदियों की मनःस्थिति को ध्यान में रखते हुए जिनमें कि ऐसे कैदी स्वयं अपने आप को हानि पहुंचा सकते हैं अथवा स्वेच्छया विवेकाधिकार के अन्तर्गत किसी अन्य दाण्डिक कार्य को कर सकते हैं अथवा अनुकल्पतः स्वेच्छया विवेकाधिकार में कोई अन्य दाण्डिक कार्य कर सकते हैं और अनुकल्पतः किसी अन्य कैदी द्वारा उन्हें हानि पहुंचाए जाने की संभाव्यता हो सकती है।
>
> मृत्यु दण्डादेश के अधीन कोई कैदी ऐसे कैदियों के साथ-साथ सांठगांठ करके कोई हथियार प्राप्त कर सकता है जिससे कि वह आत्महत्या कर सकता है अथवा जिसके जरिये वह कारागार से भाग निकल सकता है। इसके अलावा मृत्यु दण्डादेश से आदिष्ट कैदी का असर अन्य कैदियों पर अत्यन्त हानिकारक होता है।
>
> कारागार में कैदियों के प्रशासन में, मृत्यु दण्डादेश से आदिष्ट कैदियों की बाबत अधिकतम रक्षोपाय अपनाने पड़ते हैं। चूंकि उनकी मनःस्थिति ऐसी होती है कि वे अत्यंत हताश हो गए होते हैं इसलिए वे सदैव इस ताक में रहते हैं कि उन्हें इस बात का अवसर प्राप्त हो सके

कि वे देखरेख करने वाले अभिरक्षकों को वशीभूत कर लें और भाग निकलने का प्रयत्न करें। यहां यह भी कहना सुसंगत होगा कि जेल मैन्युअल के वर्तमान उपबंधों के अधीन कैदियों की रक्षा हेतु सशस्त्र अभिरक्षक तैनात नहीं किया जा सकता। वार्डर (अभिरक्षक) को अपनी रक्षा बिना किसी हथियार के करनी होती है। ऐसी दशा में जिसमें कि मृत्यु दण्डादिष्ट कैदियों को कोठरियों से बाहर निकलने की इजाज़त दी जाये, अभिरक्षक के लिए निहत्थे उन पर नियंत्रण रखना असंभव प्रायः हो जाता है।

नई दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन मृत्यु दण्डादेश आपवादित रूप में कुछ ही कैदियों को दिया जाता है क्योंकि अब यह अपवाद स्वरूप है न कि नियम स्वरूप और विद्वान् न्यायालयों को आत्यंतिक दण्ड देने के लिए विशेष कारण अभिलिखित करने पड़ते हैं। इससे यह विवक्षित है कि मृत्यु दण्डादेश के अधीन कैदी असाधारण रूप से खतरनाक व्यक्ति होते हैं जिन्हें अधिकतम अभिरक्षा सम्बन्धी उपायों की अपेक्षा होती है जब कि वे कारागार में रह रहे होते हैं। कारागार में वर्तमान व्यवस्थाओं के अधीन ऐसे कैदियों के लिए परिरोध का कोई प्रतिस्थापन नहीं है सिवाय इसके कि उन्हें कोठरियों में बंद रखा जाए। मृत्यु दण्डादेश दिये जाने के पश्चात् मृत्यु के लिए दण्डादिष्ट कैदी प्राधिकारियों के विरुद्ध घृणा की भावनाएं रखते हैं। यदि ऐसे कैदियों को कोठरियों से बाहर रहने की इजाज़त दी जाए तो हमले इत्यादि की घटनाओं की प्रत्येक संभाव्यता ऐसे कैदियों के तथ्य के आधार पर बनी रहती है।

.....यदि मृत्यु दण्डादिष्ट कैदियों को अन्य कोटियों के कैदियों के साथ मिलने-जुलने दिया जाए तो कारागारों का अधीक्षण तथा प्रबन्ध अत्यंत खतरे में पड़ जाएगा।

.....मेरा यह निवेदन है कि कारागार अधिनियम की धारा 30 के उपबंध अत्यंत आवश्यक हैं, दण्डादिष्ट कैदियों की मनःस्थिति को देखते हुए इस संभाव्यता पर विचार करते हुए कि ऐसे कैदी अपने आप को हानि पहुंचा सकते हैं अथवा अन्य कारागार निवासियों द्वारा उन्हें हानि पहुंचाई जा सकती है। अथवा आधुनिक राज्यों में समाज से संबंधित अभिरक्षा के सुसंगत सामाजिक पहलुओं के दृष्टिकोण से कारागार से बाहर भाग निकल सकते हैं।"

50. इन तथ्य एवं विधि सम्बन्धी निवेदनों को परख करना उचित है। जब दलीलें विस्तारपूर्वक दी गईं तो विद्वान अपर सॉलिसिटर ने राज्य के शपथपत्र में अपनाये गए कुछ आत्यंतिक दृष्टिकोणों का परित्याग कर दिया और अपने प्रकथनों को सौम्य रूप देते हुए उनकी कठोरता में कमी कर दी।

51. आवश्यक रूप से हमें इस बात का विनिश्चय करना है कि क्या तथ्य के रूप में बत्रा को एकांत परिरोध में रखा जा रहा है। इसके अलावा हमें इस बात की खोज करनी है कि क्या अधिनियम की धारा 30 के अन्तर्गत मृत्यु दण्डादिष्ट कैदियों के लिए किसी प्रकार के एकांत परिरोध को अनुध्यात् करती है और यदि ऐसा है तो इससे वर्तमान कारागार पद्धति विधिमान्य बन जाती है। इसके अलावा हमें इस बात का अन्वेषण करना है कि क्या ऐसा सम्पूर्ण परिरोध, सही अर्थान्वयन है यदि दण्ड संहिता और दण्ड प्रक्रिया संहिता के सुसंगत उपबंधों के संक्षिप्तांश पर ध्यान दिया जाए। अंत में, हमें धारा 30(2) की शक्तिमत्ता का प्राख्यान करना होगा यदि वह मृत्यु दण्डादेशों को अंधकारमय एकांतवास के रूप में लांछित करती है।

52. विद्वान अपर महासॉलिसिटर ने व्यापक रूप से यह दलील दी कि एकांत परिरोध पूर्ण रूप से सांविधानिक है और उन्होंने निम्न स्तरों पर अमेरिकी न्यायालयों में से उद्धरण पेश किए। उनकी दलील के ढांचे पर जो प्रभाव पड़ता है वह यह है कि यदि यूनाइटेड स्टेट्स जैसे देश में भी जहां कि अष्टम संशोधन क्रूर तथा अप्रायिक दण्ड का प्रत्याख्यान करता है, न्यायिक संवीक्षा किए जाने पर भी 'एकांत' (सॉलिटरी) शब्द बना रहा है। ऐसी दशा में भारत में तो यह और भी प्रबल मामला है जहां कि क्रूर तथा अप्रायिक दण्ड के विरुद्ध सांविधानिक प्रतिषेध नाम की कोई चीज़ नहीं है।

53. यह सही है कि हमारे संविधान में न तो कोई 'सम्यक् प्रक्रिया' (ड्यू प्रासेस) खण्ड विद्यमान है और न ही अष्टम संशोधन के समतुल्य कोई उपबंध, किन्तु विधि की इस शाखा पर **कूपर वाले**[1] तथा **मेनका गांधी**[2] वाले मामले के पश्चात् परिणाम समतुल्य है। कारण यह है कि जो कुछ भी दण्डात्मक रूप से दारुण सार्वजनिक अपमान की दृष्टि से अप्रायिक अथवा क्रूर और पुनर्वास की दृष्टि से अनुपयोगी है वह अकाट्य रूप से अयुक्तियुक्त तथा मनमाना है और अनुच्छेद 14 और 19 उसे अभिखंडित करता है और यदि प्रक्रियागत अनौचित्य का आरोप उस पर लगाया गया हो तो वह अनुच्छेद 21

[1] (1971) 1 एस० सी० आर० 512.

[2] (1978) 1 एस० सी० आर० 248.

के आघात के नीचे आ जाता है। जब कोई कैदी कारागार के दरवाजे से बाहर निकलता है तो संविधान का भाग 3 उसका साथ नहीं छोड़ देता और कैदी के संकुचित मूलभूत अधिकारों की संरक्षा न्यायिक रूप से नज़रअंदाज की जाती है यदि उसका उल्लंघन होता है, उसके बारे में अस्वीकृति प्रकट की जाती है अथवा कारागार प्राधिकारी द्वारा उसे अशक्त बना दिया जाता है क्या किसी ऐसे व्यक्ति को जिस पर मृत्यु दण्डादेश लगाया गया हो या जो विचारणाधीन कैदी हो इकतरफा रूप से खतरनाक करार दिए जाने पर ऐसी अतिरिक्त यंत्रणा सहन करनी होगी कि उसे देखकर रुलाई भी नहीं आती ? निश्चित रूप से ऐसा नहीं है जब तक कि सामाजिक न्याय, व्यक्ति की गरिमा, विधि के समक्ष समानता, विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया और स्वातन्त्र्य के सप्तदीप (अनुच्छेद 19) निराधार सांविधानिक प्रदर्शनात्मक रूप धारण कर लेते हैं। बन्दी गृह की पृष्ठभूमि में भी न्यायाधीश वास्तव में हालांकि निर्बन्धित रूप से प्राधिकारी (आम्ब्यूड्समेन) से सशक्त होते हैं कि वे निकाय (कार्पस) के अन्तर्गत जीवन यापन को न्याय से वंचित कर सकें और उसके बारे में विनिधान बना सकें, तथा उसे मानव रूप दे सकें एवं सभ्यता प्रदान कर सकें। हो सकता है कि किसी कैदी के बारे में अनुच्छेद 14, 19 और 21 के प्रवर्तक द्वारा उसके अधिकारों में कटौती की जा सके, किन्तु उन्हें सर्वथा समाप्त नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ कैदियों द्वारा सार्वजनिक सम्बोधनों पर रोक लगाई जा सकती है किन्तु साथी कैदियों के साथ बातचीत करने पर नहीं। इसी प्रकार न तो उन पर निःस्तब्धता थोपी जा सकती है और न ही कविता लिखने अथवा कार्टून बनाने पर लांछन लगाया जा सकता है क्योंकि यह सभी अनुच्छेद 19 का उल्लंघन करते हैं। इसी प्रकार हो सकता है कि कारावास की आवश्यकताओं द्वारा घूमने फिरने को सीमित किया जा सकता है किन्तु किसी कालावधि के लिए प्रत्येक आदमी और औरत के हाथ-पांव लोहे की जंजीरों द्वारा नहीं बांधे जा सकते। इस प्रकार बत्रा ने यह अभिवचन प्रस्तुत किया है कि जब तक कि उसका शिरश्छेदन नहीं कर दिया जाता वह एक मनुष्य है और इसलिए निष्ठुर कालकोठरी में उसे बन्द रखना भी अनुचित है और न ही मूल सहचारिता से उसे वंचित किया जा सकता है जिससे कि उसकी भावना तब तक जागरूक रहेगी जब तक कि फांसी के फंदे पर लटक कर उसका स्वर्गवास नहीं हो जाता।

54. क्या जीवित मानव पर भयानक अकेलापन अधिरोपित करना तर्कसंगत है ? कारागार प्रशासन के समक्ष इससे छोटा सवाल यह पूछा जा सकता है कि एकांत परिरोध द्वारा मृत्यु दण्डादेश मनुष्य को घाव पहुंचाने के

सिवाय और मात्र अभिरक्षा के अलावा उसका क्या प्राधिकार है वास्तव में अपर महासॉलिसिटर ने आरम्भ में ही परिसमापन के इस दृष्टिकोण का परित्याग करते हुए राज्य के प्रतिशपथपत्र में संदिग्ध रूप से ऐसा रुख अपनाते हुए कर दिया था और उनके लिए केवल वास्तविक सीमा की बहस की थी क्योंकि कारावास का संदर्भ विधिक रूप से अस्वतन्त्र की स्वाधीनताओं के रंग-रूप, अन्तर्वस्तु तथा दृष्टिकोण पर प्रभाव पड़ता है। इसका आवश्यक परिणाम यह है कि मृत्यु दण्डादिष्ट व्यक्ति को भी मानव अधिकार प्राप्त होते हैं जो अन्यसंक्रमणीय होते हैं तथा खतरनाक कैदी भी विचारणाधीन रहते हुए कुछ मूलभूत स्वाधीनताओं को रखता है जिनका परित्याग नहीं किया जा सकता।

55. **कूपर वाले मामले[1] तथा मेनका वाले मामले[2] का कारावासों के सम्बन्ध में प्रभाव : ए० के० गोपालन वाले मामले[3]** में जिसमें कि न्यायालय ने बहुमत से निर्बन्धनात्मक अर्थान्वयन अपनाया था और विधिमान्य निरोध के अधीन रहने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए मूलभूत अधिकारों के संचार का बहिष्कार कर दिया था जो विनिश्चयाधार दिया गया था उसे **आर० सी० कूपर वाले मामले[1]** में उलट दिया गया था। **मेनका गांधी वाले मामले[2]** में इस न्यायालय ने इस सिद्धान्त को स्वयं अनुच्छेद 21 के संदर्भ में प्रकाशमान बनाया है।

56. और अनुच्छेद 21 के अनुसार जीवन क्या है ? **खड़क सिंह वाले मामले[4]** में न्या० सुब्बाराव ने **मुन्न बनाम इलीन्वाय[5]** में न्यायाधिपति फील्ड को उद्धृत करते हुए अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत जीवन की विशेषताओं पर बल देते हुए कहा था :—

> "यह पाश्विक अस्तित्व से बढ़कर कुछ है। इसके पुनर्वचन के भय का विस्तार उन सभी अवयवों तथा मानसिक विशेषताओं के प्रति है जिनके द्वारा जीवन का उपभोग किया जाता है। इस उपबन्ध के द्वारा समान रूप से किसी भुजा या टांग के विच्छेदन अथवा आंख

---

1 (1971) 1 एस० सी० आर० 512.

2 (1978) 1 एस० सी० आर० 248.

3 (1975) 3 एस० सी० आर० 185.

4 (1964) 1 एस० सी० आर० 232.

5 (1877) 94 यू० एस० 113.

निकालने में या किसी अन्य अंग के विनाश पर प्रतिषेध लगाया गया है जिसके माध्यम से आत्मा बाह्य संसार के साथ संसूचित करती है।"

जीवन और स्वाधीनता का एक निश्चित रूप से प्रगतिशील अर्थ होना चाहिए।

57. इस न्यायालय ने कैदी के इस अधिकार को कायम रखा है कि वह अपने किसी ऐसे लेख/पुस्तक को प्रकाशित कर सकता है यदि वह कारागार के अनुशासन का उल्लंघन नहीं करता है। (देखिये—**राज्य बनाम पाण्डुरंग**[1]) **गोपालन** के निरसन और **कूपर** के पुनरुद्धार ने मेनका के मामले के लिए मार्ग की सृष्टि की थी जहां के भाग 3 सशक्त अधिकार के विधिमान्य रूप से कृत्यशील होने को समाप्त करके, निसंदिग्ध विस्तृति की पुष्टि की थी। इस प्रकार विधि यह है कि कैदी के लिए सभी मूल अधिकार लागू की जाने वाली वास्तविकता के रूप में हैं हालांकि उसके बन्दी होने के तथ्य के कारण वे निर्बंधित हैं। कारागार में डाले गए मनुष्यों के लिए आशायें प्रशस्त हैं क्योंकि वे सुचारु रूप से मेनका वाले मामले का आशय ले सकते हैं और इस प्रकार अनुच्छेद 14, 19 और 21 का भी सहारा ले सकते हैं जिससे कि किंचित धुंधले विधायी पाठ अथवा निर्विरोध परम्परा पर आधारित अन्तःकरण को उचित न लगने वाले कारागार के अधिरोपणों के निर्दयी प्रभाव को निरसित किया जा सके। जैसे कि दोनों मामलों के तथ्यों से स्पष्ट होता है वैसे ही इस व्यापकतर आधार पर हमें विधि की दलीलों को परखना होगा।

58. 'कारावास विधि के कठोर तत्वों द्वारा निर्मित किए जाते हैं' (सैंग विलियम ब्लैक) और इसलिए जब मनुष्यों को लोहे की सलाखों के पीछे डाल दिया जाता है तो सांविधानिक न्याय ऐसी विधि पर अधिक्षेप करता है। इन अर्थों में, न्यायालय जो कि नागरिकों को कारागृहों में समनुदिष्ट करते हैं उन पर यह सुनिश्चित करने के लिए एक कठिन कर्त्तव्य रहता है कि परिरोध के दौरान और संविधान के अध्यधीन निरुद्ध व्यक्ति को यन्त्रणा से स्वाधीनता प्राप्त होती रहे।

59. मैं अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर इन दोनों मामलों के विवाद्यकों को प्रस्तुत कर रहा हूं। क्या बत्रा या मृत्यु दण्डादिष्ट कोई सिद्धदोष व्यक्ति, विवक्षा द्वारा, कारावास के परिणाम का, एकान्त परिरोध के विनिर्दिष्ट दण्ड के बिना उस समय से लेकर जब सेशन न्यायाधीश ने मृत्यु दण्डादेश सुनाया

1 (1966) 1 एस० सी० आर० 702 और देखिए 1975 (3) एस० सी० सी० 185 (न्या० चन्द्रचूड़).

हो तब तक जब तक कि वह असाधारण किन्तु भयानक अन्तराल समाप्त नहीं होता है तब तक कि अन्तिम न्यायालय ने अन्ततः उसकी मृत्यु के दण्डादेश पर अपनी मोहर न लगा दी हो और उच्चतम कार्यपालक ने दया के उसके अभिवाक् पर न कह कर हस्ताक्षर न कर दिए हों, पीड़ा को सहन करना होगा ? क्या कारावास सम्बन्धी विधि, जो कि कारावास के न्याय के आधार पर मानव को तिरस्कृत करती है, अविधिपूर्वक है ? क्या बत्रा, यथार्थ शब्दों में, फांसी पर चढ़ाए जाने तक 'मृत्यु दण्डादेश के अधीन है और उसकी सांसारिक विदाई अन्तिम न्यायालय तथा उच्चतम कार्यपालक अधिकारी द्वारा दया की भीख देने से अन्तिम रूप से इनकार करने से अपरिहार्य हो जाती है ? तब तक लेकर क्या वह व्यक्तित्व की एकता का हकदार है अर्थात् वह अभिरक्षा में रहते हुए भी इस बात का हकदार है कि उसके शरीर को पंगु नहीं बनाया जाएगा, और न ही उसके मस्तिष्क तथा नैतिक तंतु को समाप्त किया जाएगा, अथवा क्या अधिनियम की धारा 30 के अधीन उसके बारे में यह समझा जाता है कि वह फांसी पर चढ़ने तक अकेला कारावास में पीड़ित रहेगा ?— जो कि एक दृष्टिकोण तथा प्रभाव के रूप में गुणों सम्बन्धी क्रमभंग है।

60. हमारे समक्ष बत्रा की ओर से जिन मुख्य प्रश्नों पर बहस की गई है उन्हें मैंने शृंखलाबद्ध किया है और यदि मैं पहले से ही अपने अंतिम उत्तर के बारे में पूर्वानुमान लगा लूं तो वह यह है कि भारतीय विधि जीवन के लिए विद्यमान हैं और मौत के घाट उतारे जाने वाले मनुष्य तथा मरणासन्न व्यक्ति का जीवन भी कारावास में उचित ढंग से रखा जाना चाहिए, किन्तु वहां एकान्त में मनुष्य जीव-जन्तु की तरह पड़े रहते हैं जिनके शरीर का चर्म विदारण ऐसी दशा में कर दिया जाता है जिसमें कि उनको फांसी पर लटकाया जाना बाद में की जाने वाली पुष्टि तक नहीं किया जा सकता।

61. अगले मामले में हमारे समक्ष सोबराज है जो कि एक विचारणाधीन कैदी है जिसे लोहे की सलाखों में अनिश्चित काल के लिए रखा गया है' क्योंकि उसका बाहर रहना सुरक्षा के लिए एक जोखिम है, और उसने इस प्रत्यक्ष वेदना की सांविधानिकता के विरुद्ध बहस की है जिसे राज्य द्वारा कैद विधि के अधीन सुरक्षा प्रक्रिया द्वारा न्यायोचित ठहराने की कोशिश की गई है। इन दोनों मामलों में रवैया कुछ हद तक मिलता जुलता है। स्वतंत्र भारत में राज्य के अधीन तथा दाण्डिक जागरूकता के अधीन कारागार के बीच न्याय शास्त्र की दृष्टि से जल प्रवाह विद्यमान है तथा स्वतंत्र भारत में दाण्डिक जागरूकता में 26 जनवरी, 1950 के राष्ट्रीय मांग पत्र (नेशनल चार्टर) अंकित है।

62. यदि इसी बात को मोटे तौर पर कहा जाए तो क्या कारागार की कोठरियों को सम्भालने वाले व्यक्ति प्रबन्धक कहे जा सकते हैं ? क्या मानव सजीव तरकारियों की तरह पनपते हैं जो कि वस्तुतः जीवन से वंचित होती हैं, जिसमें जीवन का गुण विद्यमान नहीं होता अथवा कम से कम ऐसी स्वाधीनता नहीं होती जो कि मूल करुणा के अन्तर्गत स्वतंत्रता, मूल विधि का सीमित कोण है जो कारागृह समाज को प्रदत्त किया जाता है ? क्या दाण्डिक तकनीकें जिनका प्रयोग शारीरिक वेदना द्वारा कारागार में होने वाली मार-पीट के रूप में, कारागार नियमों के उपबन्धों द्वारा किया जाता है। ऐसी दशा में जबकि उन्हें किसी विशिष्ट सीमा से अधिक लाया जाए तो वे सांविधानिक संवेदना का अपहरण नहीं बन जाता ? प्रत्येक संविधान एक सांस्कृतिक जागरण की परियोजना को सजीव बनाता है और न्यायालयों को चाहिए कि वे इस जानकारी को स्फुरित करें।

63. इसके अलावा इन प्रश्नों के कुछ और फेरफार बता दिए जाएं। क्या एकान्त परिरोध अथवा जोरदार दबाव जिसके द्वारा कैदी को नजरबन्द कर दिया जाता है और उसे बोलने तक नहीं दिया जाता और न ही किसी से मिलने दिया जाता है और उसकी मानसिक शक्तियों को भग्न कर दिया जाता है हालांकि उससे कोई निश्चित रोग रोधक चिकित्सा अथवा दाण्डिक लाभ जो कि अनुच्छेद 14 के अधीन विवेदात्मक होने के कारण विधिमान्य हैं, इतने शक्तिमत्ता पूर्ण हैं कि वे अनुच्छेद 19 के अधीन अयुक्तियुक्त हैं तथा अनुच्छेद 21 के अधीन मानविक विधि माने जाने के लिए अत्यन्त दर्दनाक हैं। यदि दाण्डिक विधि किसी दण्डादिष्ट व्यक्ति को सुरक्षित अभिरक्षा की इजाज़त देती है जिससे कि वह नियत दिन को सभी विधिक कार्यक्लाप के साथ फांसी पर चढ़ाए जाने के लिए तुरन्त उपलभ्य हो सके तो क्या कैद संबंधी विनियम के परिवेष के अधीन जो कि सन्यास की शीतल क्षतिकर गम्भीरता जो कि प्रथम निर्णय तथा मनुष्य की अन्तिम घड़ी दर्दनाक अन्तराल के रूप में है, कारागार की शक्ति से बाहर है ?

64. कठोर रूप से अभिव्यक्त किए जाने पर यह संक्षिप्त अंश समस्या की मानविक हृदय को स्पष्ट कर देती है और इसकी बहस विधि-पूर्वक विद्वत्तता और करुणा के साथ न्यायालय में की गई है।

65. ये जटिल समस्याएं हैं जिनसे उच्चतर मूल्यों के प्रति की गई अपील का प्रतीक समझा जा सकता है और इस उदात भावना से प्रेरित होकर काउन्सेल ने बहस की है। आरम्भ में ही मैं श्री वाई० एस० चितले न्याय मित्र (एमीकस क्यूरी) द्वारा किए गए परिश्रम और डाले गए प्रकाश

की सराहना सम्बन्धी अपनी आवश्यकता समझता हूं, क्योंकि उन्होंने इन मुद्दों को गम्भीरता से सुचारू पूर्वक और विधिक मतपूर्ण रूप से प्रस्तुत किया था। साथ ही साथ मैं श्री सोली सोहराब जी, अपर महा सॉलिसिटर के प्रति भी आभारी हूं जिन्होंने कि सराहनीय आभार तथा स्पष्टवादिता पूर्ण निष्पक्षता अपने ब्रीफ में प्रकट की है और मनुष्य के अधिकारों को अग्रसर करने के लिए, जिनके अन्तर्गत कैदी आ जाता है, लोहे की सलाखों के पीछे पुरातन मार पीट के खिलाफ शाब्दिक वैधता द्वारा पुनीत रूप से अत्यन्त सम्बन्ध प्रकट किया है। प्रिजन मैन्युअल कोई पवित्र पुस्तक (बाईबल) नहीं है। न्यायालय के अन्दर जो इस महत्वपूर्ण मानविकता द्वारा विवाद के दायरे को संकुचित कर दिया गया है और सांविधानिक तनाव को कम कर दिया गया है तथा इससे मेरी कार्यवाही आसान हो गई है।

66. अभी-अभी हम राज्य द्वारा फाइल किए गए प्रतिहस्ताक्षर-पत्र में जो त्रुटियां हैं उनमें से कुछ की परीक्षा करेंगे। इससे हमें तात्थिक (डी फैक्टो) एकान्त परिरोध के युक्तियुक्तता होने या न होने और प्रक्रिया के सम्बन्ध में उसके उचित होने या न होने पर विचार करने हेतु मदद मिलेगी, विशेष रूप से जहां कि न्यायालय द्वारा ऐसे दण्डादेश न दिए गए हों और धारा 30 (2) में कारागार अधीक्षक द्वारा इस प्रकार परिशीलन न किया गया हो।

67. प्रस्तावना के स्पष्टीकरण से राज्य द्वारा जो दृष्टिकोण अपनाया गया है उससे धुंधलेपन की धुंध विनष्ट हो जाएगी। अपराध करने से पूर्व तथा तत्पश्चात् अनेक हत्यारे भले-मानस होते हैं और वे पहली और अन्तिम बार उसे परिस्थितिजन्य संकटकाल के अधीन ऐसा करते हैं और दोबारा उसे नहीं दोहराते। कुछ हत्यारे तो उदात्त अन्तःकरण वाले व्यक्ति, क्रान्तिकारी देशभक्त होते हैं अथवा वे अधिक संख्या के लोगों हेतु आत्म निःस्वार्थी बलिदान देने वाले होते हैं, कभी-कभी मार्गहीन कारण-वश वे ऐसा करते हैं। यह कोई अप्रायिक बात नहीं है कि दण्ड दिए जाने वाले व्यक्तियों के दृश्य की पंक्ति में कुछ राजनैतिक अथवा सामाजिक, विसम्मति-कर्त्ता, संवेदनशील, क्रान्तिकारी, राष्ट्रीय महान व्यक्ति, काले लोग, सामाजिक-एवं-आर्थिक शूद्र अथवा घड़े गए साक्ष्य के शिकार होते हैं। ब्रुटस और भगत सिंह तथा कुछ निम्न श्रेणी के लोग, पागलपन के शिकार और बदमाश भी होते हैं और इस शक्तिशाली रूप से आजमाई हुई बात से अनेक देशों में मृत्यु-दण्ड को समाप्त कर दिया गया है और हमारे देश में भी जिससे कि न्यायिक दयालुता और कार्यपालक नम्रता से इस आत्यन्तिक अध्यारोपण के क्षेत्र

को संकुचित बनाया जा सके। उसके अलावा दाण्डिक मानविकता की इस सामयिक विचारधारा के खिलाफ इस न्यायालय पर अनुसंधान की पृष्ठभूमि द्वारा आश्वस्त किए बिना इसे अधिरोपित करना अति उग्र है कि यह निराधार प्रस्थापना लाई जाए कि मृत्यु दण्डादेश, जो कि प्रायः अपने अन्तिम अध्याय में विचारशील होते हैं तथा इस पुरातन विचारधारा द्वारा आक्रान्त रहते हैं। मानववध अथवा आत्महत्या करने वाले पशु हैं और इसलिए उन्हें एकान्त कारावास में रखा जाना चाहिए।

> ".....जिन देशों का हमने दौरा किया और जिन अन्य स्थानों से हमने जानकारी प्राप्त की उनसे जो हमें साक्ष्य मिला है वह समान रूप पर इस आशय का है कि अन्य व्यक्तियों की बजाए हत्यारे अधिकारियों अथवा साथी कैदियों के खिलाफ हिंसा करने पर उतारू होते हैं या फिर भाग निकलने का प्रयत्न करते हैं? इसके प्रतिकूल ऐसा प्रतीत होता है कि सभी देशों में हत्यारे बेहतर सदाचार रखते हैं बजाए उन लोगों के जो कि कैद में रखे जाते हैं.....।"[1]

हमारे समय में राजनीतिक सरकारों का पल्टा जाना हत्यारों को सत्तारूढ़ बना देता है जिन्हें की अन्यथा फांसी की सजा देनी चाहिए थी। किसी बात को सर्वमान्य समझ लेना अकुशल दिखाई देना है जबकि विधि-मान्यकरण का आधार आदतन अनुमान पर हो न कि अनुप्रमाणित अन्वेषण पर।

68. यदि हम एक बार बात को स्पष्ट रूप से समझ लें तो हमें राज्य के नग्न प्रकथनों में कोई रुकावट दिखाई नहीं देती और मृत्यु दण्डादिष्ट मानव के आसपास कोई खतरा नज़र नहीं आता। यह एक विचित्र बात है कि इस बात का सारांश यह है कि एकान्त कारावास एक करुणामय उपाय है जिसके द्वारा कैदी को संरक्षित रखा जा सकता है ताकि वे मौत के घाट उतार दिया जाए या आत्महत्या न कर ले या फिर 'हर कीरि' के लिए अन्य दण्डित कैदियों के साथ मिलकर पारस्परिक सहायता समिति न बना ले। मृत्यु दण्डादिष्ट व्यक्ति के लिए सामाजिक जीवन, कारागार अधीक्षक का सामाजिक मनोविज्ञान उसे यह कसम खाने के लिए आश्वस्त कर देता है कि वह एक ऐसा खतरा है जो स्वयं उसके लिए ही है। अतः एकान्तवास की प्रस्थापना को कार्य रूप दिया जाता है। प्रतिशपथ पत्र में जो विलक्षण अभिवाक् दिया है वह न केवल यह प्रकथन करने के समान है कि अंगूर खट्टे हैं बल्कि

[1] रायल कमीशन ऑन कैपिटल पनिशमेण्ट, 1949-1953 (रिपोर्ट) पृ० 216-217.

केवल कुमारी रस ही मीठा होता है। सामूहिक जीवन उसके लिए न केवल इस कारण बुरा है कि वह किसी की हत्या कर देगा बल्कि एकांत उसके लिए एक वरदान है क्योंकि अन्यथा स्वयं उसकी हत्या की जा सकती है। इस बात की शपथ लेना कि एकांत कोठरी एकमात्र ऐसी रुकावट है जिससे कि दण्डित व्यक्ति को मृत्यु से बचाया जा सकता है अथवा वह अन्य व्यक्तियों की हत्या कर सकता है विश्वसनीयता को इतना दूर ले जाना है कि वह विनष्ट हो सकती है। वह भला क्यों किसी की हत्या करेगा अथवा कोई अन्य क्यों उसकी हत्या करेगा? अधिकतर हत्यारे प्रथम बार ऐसा अपराध करते हैं और प्रायः वे अपने साथियों के समान होते हैं जब एक बार जोरदार दबाव और उत्प्रेरक तनाव छोड़ दिए जाते हैं। गैर चिकित्सीय कारागृह अधीक्षक की परिधि के बाहर मानसिक विपल्वों अथवा घातक पूर्वोदाहरणों के कारागार संबंधी अध्ययन विद्यमान हैं जिनसे यह अधिसंभाव्य होता हो कि मृत्यु दण्डादेशों के लिए मानववध अथवा आत्महत्या की प्रवृत्तियां विद्यमान हैं?

69. हम यहां ऐसे मनुष्यों के बारे में विचार कर रहे हैं जो कि मृत्यु दण्ड के अधीन हों और जिनके मामलों के बारे में अपील की गई हो अथवा राज्यपाल या राष्ट्रपति की अधिकारिता द्वारा नम्र रवैया अपनाए जाने की प्रार्थना की गई हो। ऐसे व्यक्ति, जब तक की वे पागल न हों कारागार के अन्तर्गत आत्महत्या करने या और अन्य हत्या करने के लिए कोई हेतुक नहीं रखते। यदि वे स्वयं अपना जीवन लेना चाहते हैं तो वे भला अपील क्यों करेंगे या नम्र रवैया अपनाये जाने के लिए आवेदन पत्र क्यों देंगे? मृत्यु दण्डादेश से बचने के लिए विधिक कोशिश जोरदार रूप से यह सुझाव देती है कि वे अपने प्रिय जीवन को बचाए रखना चाहते हैं। दास्तोवस्की[1] ने एक बार कहा था कि फांसी चढ़ाए जाने के अन्तिम क्षण में कोई आदमी चाहे वह कितना भी बहादुर क्यों न हो, यदि उसे यह अनुकल्प प्रदान किया जाए कि वह अपना आखरी दिन एक खुली पहाड़ी की चोटी पर गुजार सके जिस पर कि केवल बैठने मात्र की जगह हो तो वह ऐसा करना बड़ी सान्तवना से उचित समझेगा।

70. आत्म परिरक्षण की भावना जीवों में इतनी प्रबल है कि कारागार अधीक्षक की शपथ मात्र कि जिन कैदियों को सजा दी गई है यदि

[1] एल० एम० हीरानन्दानी, दि सेन्टेंस ऑफ डथ, दि इलस्ट्रेटिड वीकली ऑफ इण्डिया, अगस्त 29, सितम्बर 4, पृष्ठ 8. सम्बन्धित पत्रिका का वर्ष निर्णय में नहीं दिया गया है।

उन्हें यह सुविधा प्रदान कर दी जाए तो वे आत्महत्या कर लेंगे इतनी गम्भीर है कि उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

71. इसी प्रकार यह सुगम कथन कि मृत्यु दण्डादेश की कतार में खड़े व्यक्ति इतने उग्र होते हैं कि यदि प्रस्तुत की गई सुविधा में युक्तियुक्त प्रेरणा का अभाव हो, तो वे और भी अधिक हत्याएं करेंगे। यह एक निश्चित बात है कि मृत्यु दण्ड से पीड़ित व्यक्ति जिन पर यह निर्णय केवल एक ही हत्या के आधार पर सुनाया गया है और वह उन्मत्त विधि संबंधी कार्यवाहियों द्वारा फांसी के फंदे से अपने आप को बचाने की कोशिश करता है और करूणा संबंधी पिटीशन से यह अधिसंभाव्य नहीं है कि कारागार के अन्तर्गत कोई हत्या करके उसे फांसी के तख्ते पर लटकाने के लिए निश्चित बनाया जाएगा। इससे अधिक स्पष्ट प्रवृत्ति तो यह हो सकती है कि अधीक्षक इस बात की शपथ ले कि ब्रिटिश शासन के समय से लेकर जो कारावास की पद्धति चली आ रही है वह यह है और चूंकि कारागारवृन्द में कोई नवीन सुधार नहीं हुआ है और न ही जेल मैन्युअल को पुनः लिखा गया है इसलिए भूतकाल में प्रवृत्त रीति वर्तमान काल में बनी हुई है और वह विरासत में प्राप्त कारावास संबंधी इस सदाचार का एक निर्दोष अभिकर्त्ता है।

72. कारागार के अन्तर्गत आने जाने की सुविधा के अधिक न होने से, अस्पष्ट सामान्यताओं को छोड़कर, प्रायः गला घोंटने को विधिमान्य बनाने के लिए कोई भी प्रकथन नहीं किया गया है। अपराध का स्थल मामूली तौर पर एक विस्फोटक तनाव है जैसा कि जोर देने वाले (स्ट्रेसालोजिस्ट) व्यक्तियों ने साबित किया है और जीवन प्रदान करने के मुकाबले में मृत्यु दण्ड का आदेश देना अनेक सूक्ष्म बातों पर निर्भर करता है। वास्तव में कई बार या समरूप तथ्यों के आधार पर मृत्यु दण्डादेश के बारे में सहमत नहीं होते। यदि विचारण न्यायालय मृत्यु दण्डादेश देता है तो कारागृह अधीक्षक ऐसे व्यक्ति के बारे में यह समझता है कि वह इतना खतरनाक है कि उसे संकीर्ण स्थान में बन्द रखा जाए। यदि उच्च न्यायालय उसे बदल कर दोषी को आजीवन कारावास देता है तो कारागार के स्वामियों के कथनानुसार, उसके लिए यह आवश्यक है कि उसके हृदय में परिवर्तन आ जाए और वह एक सामाजिक प्राणी बने और यदि उच्चतम न्यायालय उस दण्डादेश को बढ़ाकर मृत्यु दण्डादेश दे देता है तो वह पाशिवक जीवन में प्रतिवर्तित हो जाता है। यह दलील इतनी बेहूदा है कि इसे साधार नहीं मानना चाहिए। आजीवन कारावास से दण्डादिष्ट तथा मृत्यु दण्ड से पीड़ित लोगों के बीच कारागार संबंधी व्यवहार में सारवान् रूप से परिवर्तन लाने से यह अनुमान लगाया जा सकता

है कि उसका आचरण हिंसात्मक है अथवा मात्र परिवर्तनशील दण्डादेशों के आधार पर वह आत्महत्या की प्रवृति रखता है, जिसके लिए कि कोई विशेषज्ञ अभिसाक्ष्य प्राप्त नहीं है। दूसरी ओर एकान्तवास से दण्डित व्यक्ति अधिक कठोर बन जाता है, वह और भी उग्र हो जाता है और चाहे जो भी जोखिम हो वह अपनी भावना को तोड़ देता है अथवा उससे वह अन्य लोगों से विलग कर देता है चाहे कितना भी जोखिम क्यों न हो। और संक्षेप में यह अनुपयोगी है।

73. एकान्तवास के नकारात्मक होने की बात को समझने के लिए हाल ही के एक कारागार संबंधी अमेरीकी अध्ययन में से कुछ उद्धरणों को देना उपयोगी होगा "खोली" अथवा एकान्त परिरोध को प्रायः "सामंजस्य-पूर्ण केन्द्र" (ए० सी०) कहा जाता है।[1]" कैलिफोर्निया में सैन क्वैन्टिन नामक कारागार के बारे में एक व्यक्ति ने अपने स्मरण के आधार पर यह कहा है—

> जब मैंने इसे पहली बार देखा तो मैं इसके बारे में विश्वास नहीं कर सका। यह एक बन्द कोठरी थी। इसमें सीमेंट और गन्दगी के सिवाए कुछ नहीं था। मैं इसके बारे में सोच भी नहीं सकता कि कौन लोग मुझसे पूर्व वहां रहे होंगे। सारा दिन मैं वहां बैठा रहा और टकटकी लगाकर घूरता रहा कि मेरा यह नया निवास स्थल कैसा है .....
>
> .....एक भद्दे झरने के स्थल पर सीधे सादे लोहे की प्लेट थी (जो कि सम्पूर्ण खोली में एक जैसी है) ; खिड़की को सीमेंट से बन्द कर दिया गया था, सिवाए उसके किंचित् ऊपरी भाग के, जो कि मानक आकार की एक चौथाई थी और जिस पर कोई शीशे नहीं लगे हुए थे और इस प्रकार उसमें रहने वाले को सभी ऋतुओं की कठोरता का सामना करना पड़ता था और उसमें से वर्षा वस्तुतः अन्दर खोली में आती थी ; किसी प्रकार के कोई खाने नहीं बनाए गए थे और न ही कोई खूंटी गाढ़ी गई थी जिस पर तौलिया या कोई अन्य वस्तु लटकाई जा सके (और कतार में कपड़े लटकाना विनियमों के विरुद्ध था) इसलिए जो भी कोई ऐसा करता वह अपने ही जोखिम पर सजा का पात्र होता। संक्षेपतः, कुछ भी नहीं था; केवल चार दीवारें थीं और एक छोटा सा कमरा था जिसमें पांच पग, न कि कदम कोठरी के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक रखे

[1] रॉजर जी० लैन्फियर : फ्रीडम फ्राम क्राइम पृ० 128-129.

जा सकते थे। सीमेन्ट की कठोरता को समाप्त करने के लिए भी कुछ नहीं था, सिवाए प्रायिक ग्रेफिटी के। खिड़की इतनी ऊंची थी कि उससे बाहर कुछ भी नज़र नहीं आता था, सिवाए अगले दरवाज़े के कक्ष की छत। वह वास्तव में एक कगार कोठरी थी ; या एक बम्ब था या फिर तहखाना। और यह प्रतिदिन चौबिस घंटे के लिए हर रोज 'घर' के रूप में था।

एक कैदी ने यह लिखा था[1]—

"मैं इस बात की शपथ लेता हूँ कि जब कभी मैं अपने पुराने कैदियों को देखता हूं तो मुझे रोना आ जाता है क्योंकि वे लम्बे अरसे से ऐसे कारागार में रह रहे हैं, जब तक कि वे ऐसे लोगों से बातचीत करते हैं और अपनी निराश आंखों से चार या पांच मिनट में एक बार ही झपकी लेते हैं।

इस मामले के इस प्रक्रम पर मैं तो केवल यह कह सकता हूँ कि मैं अपने पुराने पीड़ित बन्धुओं पर विचार करूं और मुझे यह समझ में नहीं आता कि क्या मेरे साथ ऐसा व्यवहार अब से लेकर 15 या 20 वर्ष के लिए होता रहेगा। क्या मैं बच पाऊंगा ? क्या कभी कोई ऐसा भी समय आएगा कि मैं भूतों से वार्तालाप करूंगा ?

...मैंने यह देखा है कि दो बार ऐसा हुआ है कि बिल्लियां यहां आकर दोहरे विरोधी भाव से, दुगुनी विचलित होकर, दुगुनी गैर सामाजिक बनकर यहां से वापस चली गई हैं, मुकाबले उस समय के जबकि इसमें प्रविष्ट हुई थीं। लगभग वे सकल न्याय से वंचित होकर उन्हें समाज में वापस फेंक दिया गया है जहां उनसे यह आशा की जाती है कि वे सामान्य मानवों के समान कार्य करेंगे। और फिर समाज की समझ में यह बात नहीं आती कि इस देश में एक ही व्यक्ति द्वारा बार-बार अपराध क्यों किया जाता है ; क्यों भला कोई व्यक्ति पांच या दस वर्ष कारागार में कारावास भुगतकर जब बाहर जाता है तो वही अपराध पुनः करता है।"

ऐसा प्रतीत होता है कि भावानात्मक और मानसिक रूप से उनमें सामंजस्य विद्यमान नहीं है—

यह कहना कि मैं स्नायु रोग से पीड़ित हूं और समविभ्रम दोष से ग्रस्त हूं वस्तुस्थिति को पूरी तरह से बताना नहीं होगा।

---

1 रॉजर जी० लैन्फियर : फ्रीडम फ्राम क्राइम, पृ० 131-132.

प्रत्येक बार जब मेरी मां मुझे देखने आई तो वह मेरे स्नायु रोग को देखकर रोने पीटने लगी जिससे कि मेरे हाथ कांपने लगे और मेरी दाईं आंख में शरप्रवर्ध (स्टाई) अंकुरित हो गया।

74. मानव क्रिया की आन्तरिक प्रगति में विचार करते समय हमें मानविक मनोविज्ञान के इस आधारभूत तत्व के बारे में पता होना चाहिए कि "प्रकृति सूनेपन से नफरत करती है; और मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है (स्पिनोज़ा) ऐसे क्षेत्र में हमें ब्राण्डी के सारांशों की प्रत्याशा होनी चाहिए जिनका समर्थन कारागार में होने वाले तनावों पर विशेषज्ञों के मतों से, अपराध के हेतु विज्ञान के विशेषज्ञों द्वारा तथा मनोरोग चिकित्सकों द्वारा किया गया हो जिन्होंने की ऐसी दशा में आचार पर ध्यान केन्द्रित किया है जबकि मृत्यु का भय उनके रोगियों पर आक्रान्त होता है। मृत्यु के आकस्मिक दण्डादेश के अधीन मनुष्यों का जो व्यवहार हो सकता है उसके बारे में मात्र प्रश्नगत अधिकारी का अभिसाक्ष्य हमें प्रभावित नहीं कर सकता जबकि कैदियों की अभिव्यक्ति तथा आने जाने की सीमित स्वाधीनताओं में अयुक्तियुक्त रूप से ह्रास लाया जाता है अथवा उसे काल कोठरी में जड़ के आक्रान्त वातावरण द्वारा समाप्त प्रायः कर दिया जाता है। कोई भी चिकित्सीय अथवा मनोवैज्ञानिक राय या कारागार की घटनाओं का अभिलेख संकेत के रूप में हमारे समक्ष प्रथमदृष्टया साबित करने तक भी पेश नहीं किया गया है कि कारागार के इस बर्बतापूर्वक जीवन में सारवान् अभाव युक्तियुक्त है। जहां कैदियों के आने जाने पर संकुचित स्वाधीनता को पूर्ण रूप से वंचित कर दिया जाए और उस पर आक्षेप किया जाए वहां विधिमान्य साबित करने का भार राज्य पर रहता है।

75. अगले शपथ पत्र में भ्रान्ति यह है कि यदि हत्या ऐसी क्रूर हत्या हो कि उसे मृत्यु दण्डादेश दिया जाना चाहिए तो हत्यारा एक निरंतर खूंखार व्यक्ति होता है जो लगातार खतरनाक अवस्था अभिव्यक्त करता है। क्या यह बात युक्ति के अन्तर्गत आती है? कोई ऐसी स्त्री जो रोते हुए अपने सभी बच्चों को विष देकर उनकी निर्मम हत्या करके अपने यार के साथ भाग जाती है, हो सकता है कि वह हत्या उन्मादयुक्त हो और सम्भवतः उसे मृत्यु दण्डादेश दिया जा सके। किन्तु क्या वह इस कारणवश एक खतरानाक हिंसात्मक पशु का रूप धारण कर लेती है? अन्य नृशंस हत्याएं जिनमें मृत्यु दण्डादेश की शास्ति दी जानी चाहिए किन्तु जिनमें हिंसा का कोई पुट नहीं होता, विशेष सामाजिक पृष्ठभूमि में आजीवन कारावास से

दण्डादिष्ट की जा सकती हैं हालांकि अपराधी एक दारुण हत्यारा हो। भला इस बात पर विचार कीजिए कि किस प्रकार प्रत्यर्थी की आचार संबंधी कसौटी धराशाही हो जाती है जहां कि मृत्यु दण्डादेश को उच्चतर न्यायालय द्वारा इस कारण कम कर दिया जाता है कि वह बात कई वर्षों से उसके दिमाग में थी या वह बहुत थोड़ी आयु का है या अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति है अथवा राष्ट्रपति ने गैर कानूनी किन्तु सुसंगत विचार्य विषयों के कारण उसे माफ कर दिया है जैसा कि क्रान्तिकारी आतंकवादी लोगों की दशा में होता है। दण्डादिष्ट करने वाली कसौटियां और खूंखार बन्दीगृह के आचरण के बीच विभ्रम तो समझ में आ सकता है किन्तु उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

76. प्रतिज्ञाशील व्यक्ति द्वारा की गई कुछ अमान्य प्रस्थापनाओं पर विचार करने के पश्चात् मैं एकांतवास में परिरोध के अन्तर्गत आने वाली यन्त्रणा पर विचार करूंगा। बत्रा के साथ जो व्यवहार हुआ है वह एकांत परिरोध से कदाचित् ही कम है। इस प्रवृत्ति से न्यायालय इस बारे में प्रेरित हुआ था कि उसने 5 मई, 1978 को अन्तरिम निदेश देते हुए कहा था —

> "हम यह निदेश देते हैं कि जब तक इस न्यायालय द्वारा और आदेश नहीं दिया जाता तब तक पिटीशनर सुनील बत्रा को प्रिज़न्स ऐक्ट, 1894 की धारा 30 (2) द्वारा यथा अनुध्यात परिरोध (कन्फाईनमेंट) में नहीं रखा जाएगा। इसके कारण एतत्पश्चात् दिए जाएंगे।"

तथापि व्यापक दृष्टिकोण से यह आवश्यक हो जाता है कि इस बात को स्पष्ट किया जाए कि भला कोई संवेदनशील परिवेक्षण इस प्रकार के एकान्त परिरोध को न्यायिक रूप से क्षमा क्यों प्रदान करता है। अनुभूति, विसम्मति तथा मानविकता के आधार पर एकान्त परिरोध को क्या समझा जाना चाहिए? इस विचार्य विषय के अन्त में, जहां तक आवश्यक हो एकान्त परिरोध की विधिक परिभाषा दी जा सकती है।

77. अमेरिकी अत्यन्त प्रतिरक्षा वाले कारागारों के साथ तुलना करने से लेशमात्र को ही मदद मिलती है जहां कि कठोर, आवेशपूर्ण तथा तनाव का वातावरण विद्यमान है तथापि अपर महा सॉलिसिटर ने यू० एस० अपील न्यायालयों के विनिश्चयों में किये गए सम्प्रेक्षणों के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित किया जहां कि एकान्त परिरोध की पुष्टि अत्यन्त अभिरक्षा वाले कारागार

में विद्यमान है आन्तरिक प्रशासन के मामलों में कारागार प्रशासन के लिए उनका पक्षकथन यह था कि स्वायत्तता होनी चाहिए विशेष रूप से वहां जहां कारागार में निवास करने वाले व्यक्ति—

> "स्वयं उनके लिए, अन्य व्यक्तियों के लिए खतरा हो अथवा संस्था की सुरक्षा तथा क्षेम के लिए खतरा हो। ऐसी रीति पूर्ण रूप से समुचित तथा विधिपूर्वक है और उसके प्रशासन से यह अपेक्षा की जाती है कि परिरुद्ध व्यक्ति के प्रति औचित्यपूर्वक रूप से कारागृह की सुरक्षा के सम्बन्ध में उच्च कोटि की विशेषज्ञता अपेक्षित होगी। न्यायालय के समक्ष जो मामला है उससे इस बात का पता चलता है कि एकान्त परिरोध में अपीलार्थी का रखा जाना कारागार प्राधिकारियों द्वारा विचारपूर्वक निर्णय के परिणामस्वरूप हैं और यह मनमानी कार्यवाही नहीं है।[1]"

जो विनिदष्ट मामले उद्धृत किये गए हैं उनके तथ्यों से यह प्रकट होता है कि एकांतवास के लिए किंचित न्यायोचित विद्यमान है—

> "वास्तव में अपीलार्थी दीर्घकालावधि तक एकांत में निरंतर 2 वर्ष से अधिक कालावधि के लिए प्रस्तुत सुनवाई से पूर्व रखा गया है। तथापि इन विभिन्न कालावधियों के दौरान उसका अभिलेख जब कभी उसे जन समूह के अन्तर्गत एकांत अनुज्ञात किया गया था तो उससे कठोर हिंसा के आचरण के रूप में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष तौर पर सम्मिलित होने का वृतांत परिलक्षित होता था। हालांकि तब से लेकर एकांतवास में उसका आचरण अत्यंत संतोषजनक रहा है, विचारण न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह सही अवधारण किया था कि अपीलार्थी को किसी सांविधानिक अधिकार से वंचित नहीं किया गया है और यह कि इस बात का अवधारण करना कि अब अपीलार्थी के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह अन्य व्यक्तियों के प्रति खतरा है अथवा वह सुधारघर की सुरक्षा अथवा क्षेम के प्रति आतंक है एक प्रशासनिक विनिश्चय का विषय है, न कि न्यायालयों द्वारा विचार किया जाने का।"

78. किन्तु हमारे मामलों में ऐसा कोई अभिलेख प्रकट नहीं किया गया है जिनके अन्तर्गत विचार्य विषयों अथवा विवश्यक एकांतवास या घातक

---

1 कैनेथ ग्राहम बनाम जे० टी० विल्लिंघम फैड्रल रिपोर्टर, सेकेंड सीरीज, खण्ड 384 एफ सेकेंड पृ० 367.

रूप से बंदीगृह के अन्तर्गत हिंसा में सामजस्य स्थापित किया जा सके सिवाय इसके कि उसके बारे में यह दर्शित किया गया है कि वह सारगर्भित रूप से मृत्यु दण्डादेश के अधीन है। किसी बात को विचारगत न करना निष्ठुरता है और यह कारागृह के अधिकारियों की प्रतिबिम्ब कार्यवाही है जब कि कैदियों को बिना विचार विमर्श किए एकांत कारागार में डाल दिया जाता है। एकांतवास में रखने के लिए अन्यत्र उपस्थिति एक सुगम सुरक्षा का भय है जो कि इस प्रकार होने वाली कठिनाई की तनिक भी सराहना नहीं करता है और जहां यह अवसर वर्तमान रहते हैं की हत्या कर दी जाएगी या हत्या हो जाएगी। इस संसार के अन्तर्गत कारागृह की चाहार-दीवारी में प्रकट नहीं होता और अंधाधुंध कार्यवाही की जाती है—

> "एकांत कारागार परिरोध पर टिप्पण करते हुए पं० नेहरू ने यह मत व्यक्त किया था कि कारागार विभाग न्यायालय के दण्डा-देश में वृद्धि करता है और अत्यंत गंभीर दण्ड अधिरोपित करता है जहां तक कि वयस्कों और ऐसे लड़कों का प्रश्न है जिन पर क्रांति-कारी कार्यकलाप का आरोप लगाया जाता है अत्यंत प्रचण्ड कारागार प्रशासन भूतकाल में सरकार के अनादर तथा अलोकप्रियता के प्रति कार्यवाही करते रहे हैं जिससे कि वे राजनीतिक अपराधियों अथवा निरुद्ध व्यक्यिों पर इसका अत्यंत प्रयोग करते रहे हैं।[1]"

चीफ जस्टिस वारेन ने **ट्राप** बनाम **डल्लैस**[2] में एकांतवास पर लांछन लगाने के प्रति निर्देश किया था और निम्नलिखित मत व्यक्त किया है—

> "एकांतवास का यह लांछन कई वर्षों से उन लोगों का अनुभव रहा है जो विशेष रूप से एतांकवास के कारण उन्मत्त हो गये थे।"

79. करुणामय उपन्यासकार चार्ल्स डिक्सन ने "अमेरिकन नोट्स एण्ड पिक्चर्स फ्राम इटली" नामक अपनी पुस्तक में पेनिसलिवेनिया पैनीपैंशरी (पृ० 99) में एकांत परिरोध दारुण क्रूरता का वर्णन किया है—

> "मुझे इस बारे में प्रेरणा मिली है कि जिन व्यक्तियों ने कारागार अनुशासन की पद्धति बनाई थी और जिन दयालु सज्जनों ने इसे निष्पादित किया है वे यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। मेरा यह विश्वास है कि बहुत थोड़े ऐसे व्यक्ति हैं जोकि यंत्रणा तथा पीड़ा

---

[1] बी० के० भट्टाचार्य, प्रिजन्स, पृ० 111.

[2] ल्यूनर्ड आयरलैण्ड जस्टिस, पनिशमेंट ट्रीटमेंट, पृष्ठ 297.

के उस आत्यन्तिक प्रभाव को समझने में समर्थ हैं जो कि इस भयानक दण्ड के परिणामस्वरूप होती है जो वर्षों तक चलता रहता है और स्वयं मेरा यह अनुमान है तथा उनके चेहरे पर जो अंकित है उससे जो युक्ति प्राप्त होती है तथा उस विशिष्ट ज्ञान का तो कहना ही क्या जिसे वह अन्दर ही अन्दर महसूस करते हैं मेरा इस बारे में विश्वास बढ़ता जा रहा है कि इसके अन्तर्गत अत्यन्त सहनशीलता है जिसे केवल पीड़ा सहन करने वाले व्यक्ति ही स्वयं माप सकते हैं और जिसे किसी भी अन्य व्यक्ति को अपने साक्षियों पर अधिरोपित करने का अधिकार प्राप्त नहीं है शरीर की किसी यंत्रणा के मुकाबले में मस्तिष्क के रहस्यों के साथ मंद मंथर गति से तथा दिन-प्रतिदिन विचारगत करना अत्यन्त निकृष्ट है—ऐसा मैं मानता हूं। और चूंकि इसके गंभीर प्रतीक तथा अनुमान देखने में इतने ठोस नहीं हैं और न शरीर के दागों को छूने की संवेदना उन में है क्योंकि उसके घाव केवल ऊपरी नहीं हैं और उसको छूने से शायद ही कोई चीख निकलती है जिसे मनुष्य के कान सुन सकते हैं, इसलिए मैं इसे और भी धिक्कारता हूं क्योंकि यह एक गोपनीय दण्ड है जिसे सुनकर जन साधारण हड़बड़ा कर नहीं उठ खड़ा होता। एक बार तो मेरे मस्तिष्क में इस बारे में विचारविमर्श उत्पन्न हुआ था कि क्या यदि मुझे 'हां' या 'न' कहने की शक्ति प्राप्त होती है तो मैं हिचकिचा जाता तो भी कुछ मामलों में इसका विचारण करने की जहां कि कारावास की अवधियां संक्षिप्त होती हैं किन्तु अब मैं निष्ठापूर्वक यह घोषणा करता हूँ कि मैं खुले आसमान के नीचे दिन भर किसी प्रसन्नचित व्यक्ति को प्रतिकार अथवा सम्मान दिये बिना उचित नहीं समझूंगा और न ही यह समझूंगा कि वह इस बारे में जागरूक रहते हुए रात भर शैय्या पर पड़ा रहे कि कोई मानव किसी भी कालावधि के लिए, चाहे उसकी एकाकी कोठरी में किसी भी प्रकार का दर्द अथवा अज्ञात दण्ड विद्यमान हो और मैं उसका कारण बनूं अथवा तनिक मात्रा में भी उसके बारे में सम्मति प्रदान करूं।"

80. मानव दृष्टिकोण इस कारागार में एकाकी रूप से निवास करने को देखते हुए उन महान साहित्य मेधावी आस्कर वाइड ने जो कि दाण्डिक विधि के चंगुल में आ गए थे कारागार में डाल दिये गये थे,

डी परोफंडीज़ नामक पुस्तक की रचना की थी जिसमें उन्होंने गद्य में पद्यात्मक भाषा का प्रयोग निराशावाद तथा वास्तविक वाद सहित किया था और लोहे की सलाखों में डाले जाने पर क्षीणता की एकमात्र तीव्रता का वर्णन किया था। वहीं से मैं उद्धृत कर रहा हूं—

> "आज मुझ में और उस दूरस्थ दिनांक के बीच जीवन की एक महान नदी का प्रवाह विद्यमान है। कदाचित् ही आपको इतने व्यापक विनाश पर दृष्टिपात् करने का अवसर मिलेगा..... पीड़ित रहना एक अत्यन्त दीर्घकालीन वेदना है। हम इस में ऋतुओं द्वारा विभाजन नहीं कर सकते। हम तो केवल इसकी मनोवृत्तियों को अभिलिखित कर सकते हैं तथा उसकी विवरणियों का वृत्तांत प्रस्तुत कर सकते हैं। जहां तक हमारा प्रश्न है स्वयं समय प्रगतिशील नहीं होता। यह तो चलता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि समय वेदना के एक केन्द्र के इर्दगिर्द चक्कर लगाता रहता है। किसी जीवन की गतिहीन स्थिरता में जिसमें कि प्रत्येक परिस्थिति कठोर सूत्र की निश्चल विधियों के अनुसार विनियमित होती है। यह गतिहीन स्थिति जो कि प्रत्येक भयानक दिन को प्रत्येक सूक्ष्मतम विस्तार के रूप में अपने भ्राता के समान उन बाह्य शक्तियों को यह संसूचित करती हुई दिखाई देती है कि उनका अस्तित्व स्वयं निश्चल परिवर्तन है।..... हमारे लिए तो केवल एक ही ऋतु है अर्थात् संताप की ऋतु। ऐसा प्रतीत होता है कि हम से सूर्य और चांद छीन लिए गए हैं बाहर भले ही नीला आकाश हो और स्वर्णिम समय हो, किन्तु जो प्रकाश छोटी सी लोहे की सलाखों वाली खिड़की पर लगे ढके हुए शीशे में से दिखाई देती है। उसके नीचे एक दृश्य भूरा है और दूसरा कालुष्यमय। कोठरी में सदैव धुंधलापन रहता है जैसे कि हृदय में सदैव अपूर्ण ज्ञान विद्यमान रहता है। और जहां तक विचारधारा के क्षेत्र का प्रश्न है समय के क्षेत्र में भी उतनी गति है जितनी कि अन्यत्र।"

और श्री जवाहर लाल नेहरू ने आत्मकथा में तृतीय दशाब्दी में यह कहा था—

> "प्रायः कुछ व्यक्तियों को क्रान्तिकारी आन्दोलनों के लिए आजीवन अथवा दीर्घ समय का कारावास दण्डादिष्ट किया जाता है और उन्हें दीर्घकालावधियों तक एकाकी परिरोध में रखा जाता है .....किन्तु इन व्यक्तियों की दशा में—जो कि प्रायः युवक होते हैं—उन्हें कारावास में डाले रखे जाता है हालांकि कारावास में उनका सदाचार अनुकरणीय होता है इस प्रकार न्यायालय के

दण्डादेश के साथ-साथ कारागार विभाग द्वारा एक अत्यन्त भयंकर दण्ड किसी भी कारण के बिना जोड़ दिया जाता है। यह अत्यन्त आसाधारण प्रतीत होता है और किसी भी विधि के नियम के अनुसार नहीं होता। एकाकी परिरोध भले ही वह संक्षिप्त कालावधि के लिए हो एक अत्यन्त दुःखद कार्यवाही है और इसे कई वर्षों तक रखा जाता है तो यह अत्यन्त भयानक बात है। इससे यह अभिप्रेत है कि मस्तिष्क में धीमे-धीमे और निरन्तर ह्रास होता जाता है यहां तक कि, यह पागलपन के छोर तक आ पहुंचता है, और देखने में व्यक्ति की छवि खोखली हो जाती है अथवा उसको अभिव्यक्ति का भयानक पाशिवक प्रकार दृश्यमान होता है। यह भावना की धीरे-धीरे हत्या करने के समान है और इससे आत्मा की मंद मंथर गति से चीर फाड़ हो जाती है। यदि कोई व्यक्ति जिन्दा भी रह जाता है तो भी वह असाधारण बन जाता है और संसार में आत्यंतिक रूप से अनुचित प्रतीत होता है।"

81. साक्षात्कारों तथा पत्रों द्वारा मानव वाद के बारे में जो तर्क दिए गए हैं उनके दौरान बहुत कुछ कहा जा चुका है। नेहरू ने नैनी कारागृह के बारे में जो लिखा था वह आज भी अनेक बन्दियों के लिए साधारण रूप से सुसंगत है—

"साक्षात्कार की इजाज़त 3 महीने में केवल एक बार दी जाती है और इस प्रकार पत्र लिखने की इजाज़त भी—और यह एक भयंकर रूप से दीर्घ कालावधि है तथापि अनेक बन्दी इसका लाभ नहीं उठा सकते। यदि वे अपढ़ हों और अधिकतर ऐसे ही होते हैं, उन्हें किसी कारागार के अधिकारी का आश्रय लेना पड़ता है कि वह उनकी ओर से पत्र लिख सके और चूंकि पश्चादुक्त अधिकार अपने अन्य कार्य में वृद्धि नहीं करना चाहता वह प्रायः ऐसा करने की उपेक्षा करता है अथवा यदि कोई पत्र लिख भी दिया जाता है तो भी उस पर पता सही-सही नहीं दिया जाता और वह पत्र उचित स्थान पर नहीं पहुंच पाता। जहां तक साक्षात्कारों का सवाल है वह तो और भी कठिन है। प्रायः अनिवार्य रूप से वे किसी अच्छे अधिकारी की दयालुता पर निर्भर करते हैं। प्रायः बन्दियों को भिन्न कारागार में स्थानांतरित कर दिया जाता है और उनके लोग उन्हें ढूंढ़ नहीं पाते। मैं अनेक बन्दियों से मिला हूं जिन्होंने अपने कुटुम्बों के साथ कई वर्षों से सम्पर्क नहीं किया था और वे यह भी नहीं जानते थे कि क्या हो

रहा है। जब साक्षात्कार तीन महीनों के पश्चात् या उससे भी अधिक समय के पश्चात् कराये जाते हैं तो वे अत्यन्त असाधारण प्रकृति के होते हैं। अनेक बन्दियों को और उनके साक्षात्कार करने वाले को सीमा रेखा (बैरियर) की एक ओर एक साथ एकत्रित कर दिया जाता है और वे सभी एक साथ बातचीत करना चाहते हैं। एक दूसरे को अत्यधिक जोर से चिल्लाना पड़ता है और साक्षात्कार से जो थोड़ा-सा भी मानविक सम्पर्क होना चाहिए उसका पूर्णतया अभाव रहता है।"

82. नेहरू के शब्दों में इस पद्धति का अभिशाप इस प्रकार है—

"ऐसा नहीं है कि कैदी को एक व्यक्ति और मानव के रूप में समझा जाता है तथा उसमें सुधार लाने या उसके मस्तिष्क की देख-रेख करने की कोशिश की जाती है। एकमात्र बात यह है कि उत्तर प्रदेश प्रशासन इस बात में अत्यधिक आगे है कि वह अपने बन्दियों को सही-सही बन्द रखता है। निकल भागने के तनिक ही कोई प्रयत्न हुए हैं और मुझे तो सन्देह है कि 10,000 व्यक्तियों में से कोई एकाध ही भाग निकला हो।"

83. कुछ भारतीय कारागार में राजनीतिज्ञ व्यक्तियों के कारावास में रखे जाने के बारे में एक दुःखद टिप्पण का आभास हाल ही की एक पुस्तक "माई ईयर्स इन इण्डियन प्रिजिन"—(मेरी टाइलर विक्टर गैलेंट्ज़ लिमिटेड, लण्डन, 1977) से मिलता है। इसकी ग्रन्थ लेखिका जो कि एक युवा ब्रिटिश मेरी टाइलर नामक व्यक्ति है एक महिला वार्ड में नक्सलाइट के आरोप के आधार पर कारागार में एकांतवास में रखी गई थी और उसे अन्त में देश निकाला दे दिया गया। उन्होंने लिखा है—

"इस प्रातः 10 बजे तक मैंने अपने आप को एक ऐसी कोठरी में पाया जो 15 फुट वर्ग की थी और पूर्णतया वहां बाहर से झांका जा सकता था, सिवाय इसके कि वहां एक छोटा-सा मिट्टी का घड़ा पड़ा हुआ था और 3 फटे हुए खुरदरे गहरे भूरे रंग के कम्बल विद्यमान थे जो कि ग्रीस लग जाने से कड़े हो गए थे और उनमें अनेक कैदियों की पीढ़ियों का पसीना लगा हुआ था और मैंने पत्थर के फर्श पर लपेट कर एक तकिए का रूप दे दिया था। मेरी कोठरी डारमीटरी भवन के एक कोने में थी और बाहर आहते की दूसरी छोर के अन्त में दरवाजे से एक गज़ दूरी पर थी दो बाहरी दीवारें खुली हवा में खुलती थीं, खिड़कियों की बजाए 3-4 फुट चौड़े झरोखे थे जो कि

8 फुट ऊँचाई तक थे। दरवाज़ा लोहे की एक लम्बी सांकल से बन्द था और उस पर ताला लगा हुआ था। दीवारों पर पुताई के घब्बे थे और वे ऊँचे नीचे अंकित थे जिन पर बहुत समय पहले से निकाले हुए कीलों के दाग थे। एक कोने में एक जीर्ण कमर तक ऊँचा शौचालय था जो कि एक लकड़ी के दरवाजे से प्रछन्न था। ऊँचे फर्श के साथ एक स्थान विद्यमान था जिसके केन्द्र में एक दीर्घ खाई थी जो कि प्रत्यक्ष रूप से टूटे-फूटे मिट्टी के टब पर विद्यमान थी। मेरा शौचालय एक ऐसे शौचालय के प्रति जाता था जहाँ कि एक डारमीटरी में कार्य होता था जिसमें कि शेष महिला कैदी सोती थीं। इन दोनों शौचालयों में खुली नालियां थीं जो कि दो बाहरी दीवारों से होकर मेरी कोठरी के पास से गुजरती थीं, जिससे कि गर्मी की रातों में दुर्गन्ध आती थी, जिससे मेरा रहना दुश्वार हो गया था। टूटे-फूटे कंक्रीट और नालियों की गिरी हुई ईंटों की चिनाई के बीच अंतराल अनेक मक्खियों और बड़े-बड़े मच्छरों के लिए प्रजनन स्थान थे जिन्होंने कि मानो की पारस्परिक पूर्व इन्तज़ाम करके आनुकल्पिक दिन और रात में मेरी कोठरी में समय-समय पर स्थान बना लिया था जिससे कि मेरी नींद और विश्राम में बाधा पड़ती थी।

एकांत कारागार में मेरे कुछ पहले दिन थे मानों कि एक सपने की तरह बीत गए और इस बीच में केवल ताले की देख-रेख करने के लिए मुख्य प्रधान वार्डन के प्रातःकालीन तथा सायंकालीन दौरे लगते थे, कारागार अध्यक्षा द्वारा भोजन और जल पहुँचाने के लिए केवल दर्शन होते थे अथवा अपने दांत साफ करने और स्नान करने के लिय मेरे ताले को अपनी चाबियों से खोलने के लिए महिला वार्डन आया करती थी।

दिन के समय के दौरान महिला वार्डन के मुख्य द्वार की चाबी एक ड्यूटी वार्डन की अभिरक्षा में रहती थी जो कि कारागृह में 150 वार्डरों में से एक था। उसकी जिम्मेवारी यह थी कि वह सिद्धदोष व्यक्तियों को प्रवेश प्रदान करे, खाना लाए, चिकित्सक अथवा अन्य व्यक्तियों को आवश्यक काम-काज के लिए प्रविष्ट करे। कारागार का प्रशासन सहायक जेलरों और क्लर्कों के कर्मचारिवृन्द के हाथ में था जो कि जेलर के अधीनस्थ थे जिन्हें कारागार को चलाने के लिए दिन-प्रतिदिन सर्वोपरि उत्तरदायित्व सौंपा गया था। कारागृह की

शृंखला में वह अधीक्षक के प्रति उत्तरदायी था जो कि सर्वोच्च अधिकारी होता है।

उसका अदृश्य स्वभाव तथा आचार व्यवहार उसके अधीनस्थों के लिए भी उतना ही दुःखदायी है जितना कि हमारे लिए। उसने अपने पूर्व अनुदेशों को उलट कर कई बार अपने प्राधिकार का प्रदर्शन किया कि अन्त में किसी भी व्यक्ति को इस बात का निश्चय नहीं हो पाया कि यह चाहता क्या है। कारागार के कर्मचारिवृन्द ने उसको यथा सम्भव नजर अन्दाज करके कार्यवाही की यदि वह अपना इरादा बदल लेता है तो वे पकड़े न जाएँ।"

84. समुद्र के पार न्यायिक राय इस दृष्टिकोण पर पहुंची है कि दीर्घकालीन एकान्त पृथ्वास में कैदियों को रखना लगभग उन्हें पागल बना देगा और ब्रिटिश पद्धति ने दण्ड के रूप में एकान्त परिरोध को समाप्त कर दिया है। मैं इन सामाजिक प्रगतिओं के प्रति निर्देश उनके आधार पर अभिनिर्धारित नहीं कर रहा बल्कि कारावास के अन्तर्गत इस कारावास के अनुभव के प्रति कर रहा हूँ। दृढ़ता के बिना कोई विनिश्चय करना निरर्थक हो सकता है।

85. यह कथन करना उचित होगा कि श्री सोली सोराब जी ने कारावास सम्बन्धी सुधार हेतु अपना मत अभिव्यक्त किया था और उसकी सहानुभूति ऐसे व्यक्तियों के साथ थी जिनकी सीमित स्वाधीनता को पंगु बना दिया गया था, हालांकि उसने जोरदार रूप से यह अभिवचन प्रस्तुत किया कि उपबन्ध को शून्य रूप दिए बिना उसका एक नया अर्थ लगाया जा सकता है। इसलिए उसने बत्रा पर अधिरोपित पृथ्वास की कठोरता को उसे कानूनी वियोग न कि एकान्त परिरोध का नाम देकर न्यूनतर बना दिया है। किन्तु जैसा कि बाद में पता चलेगा, पूर्वत्तर के अन्तर्गत कठोरता को शाब्दिक रूप से अन्तःग्रस्त किया गया है किन्तु वस्तुतः उससे पहुँचने वाली टीस को बनाए रखा गया है। प्रैसबिटर व्यापक अर्थों में पादरी है।

86. अनेक दण्ड विधि विशेषज्ञों ने निरन्तर दण्डात्मक एकान्त परिरोध के अधिरोपित किए जाने को विस्मय की दृष्टि से देखा है और प्रत्यक्ष रूप से निवारण पृथक्करण इससे भी बहतर आधार पर है क्योंकि इसमें अनुशासन का पर्दा भी नहीं है। मैं उदार (ग्रहणशील) संक्षेप सहित, श्री चितले द्वारा अपने इस अभिमत के समर्थन में जबरन मानव पृथक्करण,

चाहे उसे कोई भी नाम दिया जाए, बर्बरतापूर्वक क्रूरता है जो आधुनिक समय में अनुपयोगी है, में प्रस्तुत किए गए विधिशास्त्र के प्रचुर पांडित्य में से उद्धृत करना होगा और यह उपधारणा कि जिन कैदियों अथवा आजीवन कारावासियों को दण्डादिष्ट किया गया है वे खतरनाक, हिंसात्मक होते हैं, एक सहज कठोर कल्पना है।

[1]"तथापि निरन्तर तथा राहत के बिना कैदियों के पृथक्करण के प्रभावों के विवाद्यक पर कोंगरिगेट शाखा ने मुख्य प्रभाव डाला था। न्यूयार्क कैम्प में इस बात पर ज़ोर दिया था कि मनुष्यों को एकान्तवास में दिन-प्रति-दिन वर्ष-प्रतिवर्ष रखना अस्वाभाविक था; वास्तव में यह अस्वाभाविक ही नहीं था बल्कि इससे आदमी पागल हो जाता है।"

[2]"हारलो और हारलो ने मानवों से निकट रूप से सम्बन्धी प्राणियों पर तजुर्बे किए हैं। जहाँ विशिष्ट रूप से अन्तर्वलित ऐसे चंचल पदार्थ हैं जो कि मनुष्य में मनोरोग के संलक्षण का कारण बन जाते हैं। सामाजिक वातावरण तथा सामाजिक प्रगति के बीच सम्बन्ध का मापमान करते हुए हारले ने यह रिपोर्ट दी है कि सबसे अधिक निरन्तर तथा नाटकीय निष्कर्ष यह है कि सामाजिक पृथक-करण सर्वाधिक विनाशक, साधारण वातावरण को नियंत्रित करता है। जैसे कि यह है पृथक्वास आंशिक से बढ़कर पूर्ण रूप धारण कर लेता है ह्रास की कठोरता निवृत्त हो जाती है जो कि मनोरोग सदृश अंग विन्यास से भिन्न प्रकार के विन्यास धारण कर लेते हैं।"

[3]"सम्बन्ध, स्वीकार्यता तथा अनुमोदन की आवश्यकता का भावपूर्ण साक्ष्य वैज्ञानिकों, अधिकारियों और सूचीबद्ध कार्मिकों के छोटे से समूह द्वारा प्रस्तुत किया गया है जिन्होंने कि स्वेच्छया लगभग एक वर्ष के लिए दक्षिण ध्रुवीय रहन-सहन में पृथ्वास

---

1 डेविड जे० रोटमेन। हिस्टोरिकल परस्पैक्टिव-जसटिस। पनिशमैण्ट ट्रीटमैण्ट बाई लियोनार्ड ओरलैण्ड, 193 पृष्ठ 144.

2 पैनचिस्ट्री एण्ड दी अरबन सैंटिंग-कम्प्रिहैन्सिव टैक्स्ट बुक ऑफ साइकिएट्री 11, द्वितीय एडीशन खण्ड II (1976) ए० एम० फ्रीडमेन, हेरलोड 1 कैपलन, बैंजामिन जे० सेडाक पृष्ठ 2503 द्वारा कृत।

3 जेम्स सी० कोलमैन—एबनार्मल साइकोलोजी एण्ड मॉडर्न लाइफ पृष्ठ 105.

किया था (रोबरर, 1961)। इस कालावधि के दौरान उपद्रवी व्यक्तियों को समय-समय पर "निस्तब्ध रहने सम्बन्धी उपचार" दिया गया था जहाँ कि उस मनुष्य को समूल द्वारा इस प्रकार उपेक्षित कर दिया गया था मानों कि वह अस्तित्वशील नहीं है। इस पृथक्करण प्रक्रिया के परिणामस्वरूप एक ऐसा संलक्षण देखने में आया जिसे दीर्घाक्षी (लौंग आई) कहा गया है जिनके अन्तर्गत नींद न आने, अचानक रूलाई आ जाने, मति विभ्रम, निजी स्वच्छता की आदतों में कमी तथा मनुष्य के बिना किसी उद्देश्य के इधर-उधर घूमने की प्रवृत्ति अथवा शयनकक्ष में आकाश में टकटकी लगाए हुए पड़े रहना आता है। जब उसे पुनः समूल में स्वीकार कर लिया गया तथा इस बात की इज़ाजत दे दी गई कि वह दूसरे लोगों से बातचीत कर सकता है तो यह लक्षण लुप्त हो गया।"

[1]"अन्धकारमय अथवा पृथ्वास कोठरी का प्रयोग—जो कि मध्यकालीन कालकोठरी का दुष्परिणाम है— और जिसे कारावास की भाषा में 'क्लोण्डिके' कहा जाता है सम्भवतः सर्वाधिक सर्वत्र प्रयुक्त कारावास दण्ड है जो कि अमेरिकी दण्ड विधि के इतिहास में पाया जाता है·····।

कुछ कैदियों को इन अन्धकारमय स्थानों में महीने भर रखा जाता है। किसी उपद्रवी कैदी के साथ कैसा व्यवहार किया जाए यह सभी अभिरक्षकों के लिए चिन्ताजनक बात है किंतु दाण्डिक कोठरी में काफी समय के लिए रखा जाना इसका कोई उत्तर नहीं है। 'कलोंडिके' का अत्यधिक प्रयोग इस बात का गम्भीर उदाहरण है जिसे सुधार करने वाले विद्यार्थी दण्ड का अन्तिम छोर कहते हैं। दीर्घ समयों तक इसका आश्रय लेना सूझबूझ के पूर्ण अभाव का उदाहरण है तथा कारावास प्रशासन का ऐसा उदाहरण है जो कि अब लुप्तप्रायः हो चुका है, हालाँकि हमारे अधिकतर कारावासों में आज भी ये सब प्रचलित हैं।

पृथ्वास ब्लाक या वार्ड तथा अंधकारमय अथवा एकान्त काल-कोठरी में कोई विशेष भेद नहीं है। कारावास के इस विलग भाग में किसी व्यक्ति को इस कारण रखा जा सकता है कि वह सहयोग

---

1 हैरी एलमर बारनैस एण्ड नैगले के० टीटरस—न्यू होराइजन्स इन क्रिमिनोलोजी, थर्ड एडीशन पृष्ठ 351-352

नहीं देता, उसके बारे में यह समझा गया है कि वह खतरनाक है या उसका असर दूसरे पर बुरा होगा अथवा किसी अन्य कारणवश जिस पर कि वार्डर अथवा अभिरक्षक का भारसाधन उसके प्रतिनियुक्त पहुंचता है।"

[1]"अत्यन्त हाल ही का निर्णय जो कि प्रसिद्ध वाद का रूप धारण करता है राबर्ट स्ट्राउड वाला मामला है जिसने लैवनवर्थ और एलकाट्राज़ के फैडरल कारावासों में पृथ्वास में लगभग समान समय बिताया था। स्ट्राउड को पहले उस समय कारावास में भेजा गया था जब कि वह 19 वर्ष का था क्योंकि उसने 1909 में आलाका में एक व्यक्ति की हत्या की थी। जब वह लैवनवर्थ कारावास में रह रहा था तो उसने खाने के कमरे में एक अभिरक्षक की हत्या कर दी थी जब कि उसे फांसी के लिए दण्डादिष्ट किया गया था। राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन ने इस दण्डादेश को घटाकर आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया था जब वह पृथ्वास वाली कोठरी में कारावास में था तो स्ट्राउड पक्षियों के रोगों का विशेषज्ञ बन गया और यह अभिकथन किया गया है कि वह इस क्षेत्र में संसार भर में प्राधिकारपूर्ण व्यक्ति हो गया था।"

[2]"उपचार की युक्तियुक्त पद्धति के रूप में कोठरी में परिरोध मानविक विपर्यस्तता का एक विचित्र स्मारक है इस बात को साबित कर दिया जाना चाहिए था इससे यह दर्शित होता है कि उस समय विद्यमान दाण्डिक प्रकृति अत्यधिक अज्ञानता पूर्ण थी ; यह अभी भी बना हुआ है इससे यह दर्शित होता है कि इन विषयों का व्यापक रूप से लोकप्रिय ज्ञान आवश्यक है। हो सकता है कि घोड़े की सवारी करना सीखने के लिए लकड़ी के घोड़े पर पहले अनुभव किया जाए, अथवा तैरना सीखने के लिए मेज़ पर चढ़ कर तैरना सीखा जाए किन्तु ईमानदार समाज के प्रभाव को सामंजस्य प्रदान करने के लिए अकेले कोठरी में रखा जाना काष्ठा के रूप में प्रतिस्थापित किए जाने का उपबंध भी नहीं करता है।"

डा० भट्टाचार्य जैसे दाण्डिक विधिशास्त्रियों ने, जो कि कलकत्ता उच्च

---

[1] रायल कमीशन ग्रॉन कैपीटल पनिशमैण्ट 1949-1953 रिपोर्ट पृष्ठ 216-217

[2] हैवलाक एलीस, द क्रिमिनल फिफ्थ एडीशन 1914 पृष्ठ 327.

न्यायालय के न्यायाधीश भी थे, यह दृष्टिकोण अपनाया है कि कालकोठरी में अथवा अलग से परिरुद्ध किया जाना अभिखंडित करने योग्य है :—

[1]"भारत में बहुत से दण्ड विधि शास्त्री एकान्त परिरोध के नियम पर आक्षेप करते हैं। न्यायिक दण्ड की पद्धति के रूप में तथा परिणामों हेतु कारावास के दण्ड के रूप में इन दोनों में फर्क करना इन व्यक्तियों के लिए शारीरिक तथा मानसिक रूप से अस्वास्थ्य कर है जिन्हें इनके अधीन रखा जाता है।"

87. हमारे सांविधानिक अधिकारपत्र के प्रवृत्त होने से बहुत समय पूर्व सन् 1947 में न्यायाधिपति याहिया अली ने एकान्त परिरोध के विरुद्ध प्रबल रूप से मत अभिव्यक्त किया था और हम इसके बारे में और भी अधिक प्रबल भावना रखते हैं और तत्वविरोधी विचार धारण करते हैं। निश्चित रूप से हमारा मानविक आदेश एकान्त परिरोध को भयभीत करने वाला कह कर उसे रद्द कर सकता है। विद्वान न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया था :—

[2]"एकान्त परिरोध सम्बन्धी आदेश तब तक नहीं दिया जाना चाहिए जब तक कि साक्ष्य में विशेष लक्षण विद्यमान न हो जैसा कि अपराध के किए जाने में अत्यन्त हिंसा अथवा बर्बरता का प्रयोग। मजिस्ट्रेट द्वारा जो एकमात्र कारण दिया गया है वह यह है कि 'उसे (अपीलार्थी को) घरेलू जीवन की पवित्रता उपसहनीय मात्र हो गई है और स्वामित्व का ध्यान दिए बिना यदि वह किसी चीज़ की इच्छा रखता हो उसे ऐसा हक नहीं मिल पाता।' दण्ड संहिता की धारा 379 के अधीन सिद्धदोष प्रत्येक व्यक्ति के बारे में यह कहा जा सकता है और मेरा यह विचार नहीं है कि वह ऐसी परिस्थिति है जिसके आधार पर एकान्त परिरोध सम्बन्धी आदेश पारित करने को न्यायोचित ठहराने को निरसित किया जाएगा।"

"जहाँ तक एकान्त परिरोध से सम्बन्धित दण्डादेश का सम्बन्ध है मजिस्ट्रेट का ध्यान 1947 की दाण्डिक अपील संख्या 114 में मेरे निर्णय की ओर आकृष्ट किया जाता है। जैसा कि उस निर्णय में बताया गया था, हालाँकि एकान्त परिरोध का दण्डादेश विधिक

---

1 बी० के० भट्टाचार्य: प्रिज़न्स, पृष्ठ 117.

2 ए० आई० आर० 1947 मद्रास 381.

था, लारसनी ऐक्ट 1861 (24 और 25 विक्टोरिया 96) के अधीन शक्ति का प्रयोग किसी दाण्डिक न्यायालय द्वारा कदाचित ही किया गया था। 22-9-1893 को 56 और 57 विक्टोरिया चान्सरी 54 को अधिनियमित करके लारसनी ऐक्ट में परिरोध सम्बन्धी उपबन्ध जो कई दशकों से लेकर अब निष्प्रयोज्य हो गए थे औपचारिक रूप से निरसित कर दिए गए। इस प्रकार यूनाईटेड किंगडम में उसका परित्याग शताब्दी के अनुभव के पश्चात् कर दिया गया है और आज इसे रद्द कर दिया गया है और इसके स्थान पर दिन के दौरान मिल जुल कर काम करना और रात में, ऐसे मामलों में जहाँ कि संक्षिप्त समय के लिए विशेष कैदियों हेतु तथा अनन्य रूप के कारावास अनुशासन को बनाए रखने के लिए आवश्यक समझा जाए कोठरी में परिरोध को आदिष्ट किया जाता है। हालाँकि मध्यवर्ती समयों में धर्म के प्रभाव के अधीन यह समझा जाता था कि काल कोठरी में परिरोध सोच विचार तथा पश्चाताप को प्रोन्नत करता है, तब से लेकर यह महसूस किया गया कि इस प्रकार का व्यवहार विकृत मानसिक विपथन की ओर ले जाता है और प्रायः मनस्ताप उत्पन्न होता है और यन्त्रणा के रूप में जनता पर इसका प्रभाव निष्फल साबित होता है। इसलिए जब तक कि यह भारतीय दण्ड संहिता का एक भाग है इसका प्रशासन, यदि कभी किया जाए, तो वह अत्यन्त आपवादिक मामलों में किया जाएगा जहाँ कि अनूठी नृशंसता तथा पाशविकता देखने में आई हो।"

88. भारत के विधि आयोग ने अपनी ब्यालीसवीं रिपोर्ट में यह दृष्टिकोण अपनाया था कि एकांत परिरोध आधुनिक विचारधारा के विपरीत है और किसी भी दण्ड न्यायालय द्वारा दण्डादिष्ट किए जाने के लिए दण्ड संहिता में इसे स्थान नहीं दिया जाना चाहिए। किन्चित उभय भावी सम्प्रेक्षण की ऐसे व्यवहार सम्भवतः कारागार अनुशासन के उपाय के रूप में आवश्यक हो सकता है। किन्हीं विशेष समर्थक ऐसे कारणों के बिना प्रस्तुत किया गया है कि भला ऐसा दाण्डिक आतंक जैसा कि दीर्घ एकांत परिरोध है भला क्यों रखा जाना चाहिए जबकि कारागार में इससे अधिक खतरनाक मृत्यु दण्ड विद्यमान है। सम्भवतः, आयोग का मात्र यह अभिप्राय था कि संक्षिप्त कालावधि के लिए तथा सुधारने योग्य अवस्थाओं हेतु एकांत परिरोध को अनुशासनिक कदम के रूप में बनाए रखा जाना चाहिए।

89. बत्रा वाले मामले में विधि सम्बन्धी जिन प्रस्थापनाओं में बहस की गई थी वे इस बात पर निर्भर करती हैं कि दण्ड के रूप में एकांत परिरोध क्या है तथा फांसी के फंदे की इन्तजार करने वाले कैदी का गैर दण्डात्मक, अभिरक्षात्मक एकांतवास क्या है। और दूसरे जो दण्ड अधिरोपित किया जाता है वह यदि प्रभावतः 'एकांत' है तो क्या अधिनियम की धारा 30 (2) उसे प्राधिकृत करती है और यदि वह ऐसा करती है, क्या ऐसा कठोर पथ्यापथ्य नियम सांविधानिक है। एक प्रकार से यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं रहते क्योंकि बत्रा का निवेदन यह है कि वह जब तक धारा 30 की परिधि के अन्तर्गत "मृत्यु दण्ड" के अधीन नहीं है जब तक कि उच्चतम न्यायालय ने दण्डादेश की पुष्टि न कर दी हो। राष्ट्रपति की दयालुता अन्तिम रूप से इन्कार कर दिए जाने पर समाप्त न हो गई हो। बत्रा को सेशन न्यायालय द्वारा मृत्यु दण्डादेश दिया गया है। अब इस दण्डादेश की पुष्टि की जा चुकी है किन्तु राट्रपति द्वारा दण्डादेश को घटाने सम्बन्धी अपील साधारणतया तब तक की ही जाती है जब तक कि फांसी के फंदे पर लटकाने वाले पर घातक वार नहीं कर दिया जाता और यह अपील भी निष्पादित नहीं की गई है। उसकी दलील यह है कि एकांत परिरोध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 73 द्वारा विहित अविवेकी निष्ठुरता का पृथक अधिष्ठायी दण्डादेश है जिसे केवल न्यायालय द्वारा ही अधिरोपित किया जा सकता है और यह दण्डादेश इतना यातनादायक है कि सामाजिक रूप से न्यूनतर संवेदनशील 1860 की दण्ड संहिता द्वारा भी अपनी क्रूर नम्रता में धारा 73 और 74 दोनों में ही अन्तराल, अधिकतम तथा इसी प्रकार के नम्र लक्षण अन्तःस्थापित किए गए हैं। ऐसी दाण्डिक स्थिति के रहते हुए यह दलील दी गई है कि कारागार के अधीक्षक द्वारा पिटीशनर पर कारावास में रखने सम्बन्धी परिरोध अधिरोपित किया जाना वस्तुतः एकांत परिरोध ही है जिसे दण्ड संहिता द्वारा प्राधिकृत नहीं किया गया है और इसलिए यह अवैध है। यह स्वीकार किया गया है कि बत्रा को कोई एकांत परिरोध का आदेश नहीं दिया गया। इसलिए यदि उसे तथ्यतः इस प्रकार परिरुद्ध रखा जाता है तो यह अवैध है। इसके अलावा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 53 के अधीन मृत्यु दण्डादेश के साथ एकांत परिरोध जैसा कोई अनुपूरक गुप्त खण्ड नहीं जुड़ा हुआ है। ऐसी दशा में बत्रा को एकांत परिरोध में रखने के लिए कौन सा वारन्ट विद्यमान है ? ऐसा कोई भी नहीं है। उत्तर यह प्रस्तुत किया गया है कि वह एकांत परिरोध में नहीं है। वह दण्ड प्रक्रिया संहिता का धारा 366 (2) के साथ पठित कारागार अधिनियम की धारा 30 (2) के

प्राधिकार के अधीन "कानूनी परिरोध" के अधीन है। यदि कारागार अधिनियम की धारा 30 (2) का प्रयोग करने के वेश में अधीक्षक ऐसा परिरोध अधिरोपित करता है जो सारवान् रूप से एकांत परिरोध है जो कि अनन्य रूप से दाण्डिक न्यायालय की अधिकारिता के अन्तर्गत दण्ड का एक स्वरूप है तो यह न्यायिक शक्ति का निष्प्रभावीकरण होगा। हम बिनाकि सी हिचकिचाहट के यह अभिनिर्धारित करते हैं कि सुनील बत्रा को एकांत परिरोध में नहीं रखा जाएगा। प्रश्न यह है कि क्या उसे कारागार अधिनियम की धारा 30 (2) का आश्रय लेकर देखने और सुनने तथा लोगों के आने जाने तथा उनसे मेल-मिलाप करने से विलग रखा जा सकता है। इसका उत्तर देने के लिए यह आवश्यक है कि हम एकांत परिरोध के आवश्यक तथ्यों की जांच करें ताकि इसका प्रभेद "अन्य सभी कैदियों से परे कोठरी में परिरुद्ध रखने" से किया जा सके।

90. यदि एकांत परिरोध समाज के मानविक सार के विरुद्ध है तो इस बात का कोई कारण नहीं है कि उसी दण्ड को भिन्न नाम देकर कारागार पद्धति के अन्तर्गत लाया जाए। विधि कोई प्रारूपिक लेबल नहीं है और न ही वह शब्द विवाद है बल्कि वह न्याय की कार्यशील तकनीक है। दाण्डिक एकांतता के सम्बन्ध में दण्ड संहिता तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता अत्यन्त कठोर है। और विधानमण्डल का यह अभिप्राय नहीं हो सकता था कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 73 तथा 74, कारागार अधिनियम की धारा 29 के निर्बन्धनों से तथा कारागार नियम के निर्बन्धनों से मुक्त किए जाने पर भी अवरोधक एकांत परिरोध की अनुज्ञा दी जा सके। यह एक असाधारण बात होगी कि इससे कहीं अनुचित एकांत परिरोध जैसी सुरक्षित अभिरक्षा का जामा पहनाया गया हो और जिसमें न तो अधिकतम की सीमा हो, न कोई अन्तराल हो, न कोई न्यायिक नजरअन्दाजी हो अथवा नैसर्गिक न्याय हो, मंजूर किया जा सके। सामान्य बुद्धि ऐसी मूर्खता के विरुद्ध है।

91. विधिक उपबन्धों तथा उनके अर्थान्वयन को पूर्ण रूप से समझने के लिए हम सुसंगत धाराओं को उद्धृत कर सकते हैं और तत्पश्चात् उनकी ऐसी छानबीन कर सकते हैं जैसी कि प्रयोगशाला में की जाती है ताकि उन संघटकों का पता लगाया जा सके जो कि श्री बत्रा के अर्द्ध-एकांत परिरोध के लिए विधायी मंजूरी देते हैं। कारागार अधिनियम की धारा 30 में यह आदेश दिया गया है—

"30 (1) ऐसे प्रत्येक बन्दी की, जिसे मृत्यु दण्ड दिया गया है दण्डादेश के पश्चात् कारागार में आते ही तुरन्त जेलर द्वारा या

उसके आदेश से तलाशी ली जाएगी और उससे वे सभी वस्तुएं ले ली जाएंगी जिन्हें जेलर उसके पास छोड़ना खतरनाक या असमीचीन समझता है।

(2) ऐसा प्रत्येक बन्दी अन्य सभी बन्दियों से अलग एक कोठरी में परिरुद्ध किया जाएगा, और उसे रात-दिन पहरेदार की निगरानी में रखा जाएगा।"

यह कैदियों के अनुशासन से सम्बन्धित अध्याय 5 के अन्तर्गत आता है और इसका परिशीलन उसी संदर्भ में किया जाना चाहिए। धारा 30 (2) में अनुध्यात पृथक् परिरोध में यह अनुशासनिक परिसीमा है जैसा कि तुरन्त ही दिखाया जाएगा। यदि हम इस उपखण्ड के टुकड़े कर दें तो इससे स्पष्ट हो जाएगा कि धारा 30 केवल ऐसे कैदी को लागू की जा सकती है "जो कि मृत्यु दण्डादेश के अधीन हो"। धारा 30 (2) जिसमें "ऐसे" कैदियों की चर्चा की गई है आवश्यक रूप से मृत्यु दण्डादेश के अधीन कैदियों से सम्बन्धित है। हमें इस बात का पता चलाना है कि हम किसी कैदी को ऐसा कैदी कब पदाभिहीत कर सकते हैं जो कि मृत्यु दण्डादेश के अधीन है।

92. अगला प्रयत्न "अन्य सभी कैदियों से अलग कोठरी में" परिरोध के अर्थ का पता लगाना है। इसका प्रयोजन अनुशासन बनाए रखना है और अनुशासन, अव्यवस्था, लड़ाई, झगड़ा तथा अन्य अनुचित घटनाओं के बारे में यदि कोई आशंका हो तो उनसे बचना है।

93. किसी कारागार के अन्तर्गत परिरोध का अवश्य रूप से यह अभिप्राय नहीं है कि वह कोठरी में एकांकी रूप से ही हो। किसी एक व्यक्ति को अकेले एक ही कोठरी में पृथक् रूप से रखना एकांत परिरोध है। यह एक ऐसा पृथक् दण्ड है जो कि केवल न्यायालय द्वारा अधिरोपित किया जा सकता है। कारागार अधिनियम की धारा 30 (2) का ऐसा अर्थ लगाना कानूनी उपबंध (धारा 73 तथा 74, भारतीय दण्ड संहिता) के लिए विध्वसंक होगा जिसके द्वारा कि एकांत कारावास के अनुशासनिक परिवर्तन को किसी कैदी पर थोप दिया जाए, हालांकि ऐसा दण्ड मात्र ऐसे अर्थान्वयन द्वारा किसी न्यायालय ने अधिनर्णीत नहीं किया है जो कि किसी कार्यपालक अधिकारी को यह शक्ति प्रदान करता है जो कि जेल का शासक हो कि उसमें कठोर न्यायिक शक्तियां प्रदत्त की जाएं जिनका प्रयोग दण्डात्मक निर्बन्धनों द्वारा किया जाए और जिसके बारे में वह किसी के प्रति उत्तरदायी न हो क्योंकि यह शक्ति विवेकात्मक तथा अनुशासनिक है।

94. वास्तव में किसी जेल में साधारणतया कोठरियों का अधिभोग एक से अधिक निवासियों द्वारा किया जाता है और डारमीटियरों तथा कोठरियों के अन्तर्गत सामूहिक जीवन सामान्य होता है। इसलिए किसी कोठरी में परिरुद्ध रहना हमें इस निष्कर्ष के लिए विवश नहीं करता है कि परिरोध एकांत कोठरी में ही हो।

95. धारा 30 (2) में प्रयुक्त सभी अन्य बन्दियों से अलग एक ऐसी अभिव्यक्ति है जिसका लचीला अर्थबोध है 'अलग' से 'एक और, एक दिशा में,.....एक-दूसरे के प्रति अलग, क्रिया अथवा कृत्य में पृथक् रूप से' (शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी) अभिप्रेत है। किसी एकाकी कोठरी में परिरोध इस शब्द से अपेक्षित नहीं है। इससे तो मात्र यह अर्थबोध निकलता है कि किसी एक कोठरी में जिसमें कि अनेक निवासी हों मृत्यु दण्डादिष्ट व्यक्ति को उसी कोठरी में शेष कैदियों से पृथक् रखा जाएगा, न कि उन दोनों के अत्यन्त करीब। और इस पृथक्करण को प्रभावी रूप से प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि मृत्यु दण्डादिष्ट कैदी को दिन-रात किसी अभिरक्षक के चार्ज में रखा जाएगा। इस प्रकार अभिरक्षक अनेक निवासियों तथा मृत्यु दण्डादिष्ट कैदी के बीच विद्यमान होगा। ऐसा अर्थ अनुशासनिक प्रयोजन को परिलक्षित रखता है और दण्डात्मक कठोरता से बचाता है। यदि कृत्य की दृष्टि से देखा जाए तो पृथक्करण प्राधिकृत है, न कि लाजमी, अर्थात् यदि अनुशासन की दृष्टि से आवश्यक हो तो प्राधिकारी इस बात के लिए हकदार होगा और बंदी इस बात के दायित्वाधीन होगा कि उसे, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, एक ही कोठरी के अंतर्गत पृथक् रखा जा सके। होगा "शैल" से इस अनुशासनिक संदर्भ में "दायित्वाधीन होगा" अभिप्रेत है। यदि दण्डादिष्ट कैदी नम्र स्वभाव का हो और उसे साथ ही बन्दियों की देखरेख की आवश्यकता हो तो जेलर को उसे ऐसी सुविधा प्रदान करने से रोकने की कोई आवश्यक नहीं है—

96. जब हम अध्याय 11 पर आते हैं तो हमारे सामने बन्दियों संबंधी अपराध दिखाई देते हैं जो कि धारा 45 में सूचीबद्ध किए गए हैं। सुसंगत भाग को हम इस प्रकार प्रतिपादित कर रहे हैं।

> "46. अधीक्षक ऐसे किसी अपराध से सम्पृक्त किसी व्यक्ति की परीक्षा कर सकेगा और तब उसका अवधारण कर सकेगा तथा ऐसे अपराध के लिए निम्नलिखित दंड दे सकेगा—
>
> .....
>
> (6) ऐसे नमूने और भार की हथकड़ियों का, ऐसी

रीति से और इतनी अवधि के लिए, लगाया जाना, जो राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाए;

(7) ऐसे नमूने और भार की बेड़ियों का, ऐसी रीति से और इतनी अवधि के लिए, लगाया जाना, जो राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाए;

(8) तीन मास से अनधिक की किसी अवधि के लिए पृथक् परिरोध ।

स्पष्टीकरण—पृथक् परिरोध से, श्रम सहित या श्रम रहित, ऐसा परिरोध अभिप्रेत है जो किसी बन्दी को अन्य बन्दियों के सम्पर्क से, न कि उनकी दृष्टि से, अलग रखता है और जिसमें उसे प्रतिदिन कम से कम एक घंटे के व्यायाम और एक या अधिक अन्य बन्दियों के साथ मिलकर भोजन करने की अनुज्ञा रहती है;

.....

(10) चौदह दिन से अनधिक की किसी अवधि के लिए कोठरी-बन्द परिरोध:

परन्तु कोठरी-बन्द परिरोध की ऐसी प्रत्येक अवधि के पश्चात् उस अवधि से अन्यून अवधि का अन्तराल, उस बन्दा को कोठरी-बन्दी या एकांत परिरोध के लिए फिर से दण्डादिष्ट करने से पूर्व, अवश्य बीत जाना चाहिए ।

स्पष्टीकरण—कोठरी-बंद परिरोध से, श्रम सहित या श्रम रहित, ऐसा परिरोध अभिप्रेत है जो किसी बंदी को अन्य बंदियों के सम्पर्क से, न कि उनकी दृष्टि से, पूर्णतः अलग रखता है ।"

97. उपधारा 9 और 7 का सम्बन्ध सलाखों से है और उनकी सुसंगति शोभराज के मामले से है जिनकी चर्चा हम अभी-अभी करेंगे । उपधारा 8 में किसी ऐसी कालावधि के लिए जो तीन मास से अनधिक हो "पृथक् परिरोध" की चर्चा की गई है । तत्पश्चात् एक स्पष्टीकरण दिया गया है जो कि कुछ हद तक इस एकांतवास को विनम्र बना देता है । यह प्राधिकारी के लिए यह लाजमी बनाता है कि वह बंदी को "अन्य बंदियों की दृष्टि से" विलग न करे और उसे यह अनुज्ञा देता है कि वह प्रतिदिन उसे एक घण्टे से कम व्यायाम करने की अनुज्ञा न दें और यह भी कि वह अन्य बंदियों के साथ मिलकर अपना भोजन कर सके । यह सही है कि यदि कोई गंभीर अपराध ही किया गया हो तो भी दण्ड के साथ विलग से कोठरी में रखा जाना संलग्न

नहीं है और इस बात की इजाज़त दी गई है कि दूसरे बंदियों के साथ और उनकी आवाज को सुनते हुए किन्तु अन्य बदिवों के साथ संसूचना न करते हुए जीवनयापन कर सके। इसके अलावा दण्डात्मक पृथक् परिरोध तीन मास से अधिक नहीं होगा और धारा 47 में इस बात से निषेध किया गया है कि कोठी में परिरुद्ध किए जाने तथा पृथक् परिरोध को संयुक्त नहीं किया जाएगा जिससे कि वहां विनिर्दिष्ट कालावधियां एक साथ मिलकर अतिरिक्त कालावधि का रूप धारण न कर लें। यहां इस बात का उल्लेख करना उपयोगी है कि "कोठरी में परिरोध" पृथक् परिरोध से अधिक कठोर दण्ड है और यह इसकी कठोरता के कारण चौदह दिन से अधिक नहीं हो सकता है ; या किसी बंदी को अन्य बंदियों के साथ संसूचना करने से सम्पूर्णतया वर्जित करता है किन्तु यह किसी बंदी को अन्य बदियों को देखने से वर्जित नहीं करेगा।

98. एकांत परिरोध अत्यन्त तीव्र दण्ड है और उसे केवल न्यायालय ही दे सकता है। किसी मनुष्य को किसी द्वीप में फैंक देना, ब्रिटिश के अधीन अण्डेमान की गाथा के रूप में उसे अपने साथियों के साथ मिलने-जुलने न देना सेंट हैलन्स में नेपोलियन की प्रवृत्ति के समान है। एकाकीपन की पीड़ा पर मैंने पहले ही विचार कर लिया है और मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि धारा 30 (2) मृत्यु दण्डादिष्ट व्यक्ति के लिए, उपदर्शित की गई सीमा के सिवाए एकाकी अथवा पृथक् कोठरी में रहने के लिए कोई कारण नहीं है।

99. इस अध्ययन से स्पष्ट रूप से इस बात का पता चलता है कि दण्ड संहिता के अधीन दण्डादिष्ट व्यक्ति के रूप में पृथक् परिरोध कठोरतम दण्ड है। इससे न्यूनतर दण्ड कारागार अधिनियम की धारा 46 (10) तथा धारा 46 (8) के अधीन में परिरोध है। यह प्रत्यक्ष है कि किसी बन्दी को अलग रखने की अनुशासनिक आवश्यकताएं सर्वथा किसी कठोर दण्ड के तत्व को अन्तर्ग्रस्त नहीं करती। इसलिए हम किसी दलील को स्वीकार नहीं करते जो कि स्कीम को उलट देगी अथवा गाम्भीर्य के क्रम को पलट देगी। सही पृष्ठभूमि में समझे जाने पर धारा 30 (2) स्पष्ट रूप से कठोरता के किसी पुट को अपवर्जित करती है और केवल यह उपबन्ध करती है कि मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी तथा अन्य बन्दियों के बीच संरक्षात्मक फासला रखा जाए, हालांकि उन्हें एक ही कोठरी में आवास सुविधा प्रदान की जाती है और इस बात की इजाज़त दी जाती है कि वे एक दूसरे से संसूचना कर सकें, मिलकर खा सकें, एक दूसरे को देख सकें और अन्य सभी व्यवहार्य प्रयोजनों के लिए सामूहिक जीवन को जारी रख सकें।

100. दण्ड संहिता तथा कारागार अधिनियम के उपबन्धों के विश्लेषण से यह स्पष्ट अनुमान निकलता है कि धारा 30 (2) विलग किए जाने के बिना पृथक्करण से सम्बन्ध है और कड़े परिरोध के बिना एक दूसरे से अलग रखा जा सकता है। चाहे इसे कोई भी नाम दिया जाए 'एकांतवास' का समय पागल बना देने वाला होता है—

> "एकाकी रूप से समय गुजारने के परिणामस्वरूप बहुत से सिद्ध-दोषी पागल हो गए अथवा उनकी मृत्यु हो गई और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल तक इसे सामान्य रूप से परित्यक्त कर दिया गया.....।"

'पृथक पद्धति', 'निस्तब्ध पद्धति', 'रन्ध्र' होल तथा अन्य इसके प्रयोजनों में भी यह दोष है। प्रस्तुत मामले में हमारा समाधान हो गया है कि मृत्यु दण्डादिष्ट बन्दियों के लिए तिहाड़ में जो वातावरण है वह ध्वनिरोधी (साउण्ड प्रूफ), समाजरोधी बन्द कोठरी है एकांत परिरोध के अत्यन्त निकट है।

101. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 356 (2) का इस विचारविमर्श पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि उक्त धारा में यह कहा गया है —

> "दण्डादेश पारित करने वाला न्यायालय वारण्ट के अधीन दोषसिद्ध व्यक्ति को जेल की अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करेगा।"

102. इसलिए न्यायालय एकल दण्डादेश अर्थात् मृत्यु दण्डादेश देता है। किन्तु इसे तुरन्त निष्पादित नहीं किया जा सकता क्योंकि उसकी निष्पादिता केवल उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए जाने पर ही सम्भव है। इसी बीच, उसे छोड़ा भी नहीं जा सकता क्योंकि वह शिरश्छेदन के लिए उपलभ्य होना चाहिए जबकि न्यायिक प्रक्रियाएं समाप्त हो जाएं। यही कारण है कि धारा 365 (2) सिद्धदोष व्यक्ति को जेल अभिरक्षा के सुपुर्द करके भयानक अन्तराल के समय ध्यान रखती है। प्ररूप 40 सुरक्षित रूप से रखे जाने को प्राधिकृत करता है। इस प्ररूप का सुसंगत भाग हम यहां उद्धृत करते हैं—

> "आपको प्राधिकृत किया जाता है और आपसे यह अपेक्षा की जाती है कि आप उक्त (कैदी का नाम) व्यक्ति को उक्त जेल में इस वारण्ट सहित रखें और वहां उसे सुरक्षित रूप से रखें जब तक कि आपको अग्रिम वारण्ट अथवा आदेश इस न्यायालय द्वारा

न दिया जाए जिसके द्वारा इस न्यायालय के आदेश का प्रभाव कार्यान्वित किया जा सके।"

103. जेल अभिरक्षा में "सुरक्षित रूप से रखा जाना" जेलर की परिसीमित अधिकारिता है। सिद्धदोष व्यक्ति को कारागार के लिए दण्डादिष्ट नहीं किया गया है। उसे एकान्त परिरोध में नहीं रखा गया है। वह अभिरक्षा में है, अतिथि है जिसे सुरक्षित रूप से तब तक रखना मेजबान जेलर का कर्त्तव्य है जब तक कि वह अन्तिम घड़ी नहीं आ जाती जब कैदी को फांसी की डोरी से लटका कर सांसारिक विदायी दे दी जाएगी? यह अधीक्षक के हाथों न्यासिता है, न कि वास्तविक अर्थों में बन्दीकरण। दण्ड प्रक्रिया संहिता (जेल अभिरक्षा) की धारा 366 (2) तथा प्ररूप 40 सुरक्षित रूप से रखा जाना के अन्तर्गत इस धारणा पर जोर दिया गया है और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 73 के साथ पठित धारा 53 के अधीन कारावास के दण्ड के अभाव द्वारा प्रबल बनाया गया है। इससे यह अनुमान अनिवार्य है कि यदि मृत्यु दण्डादिष्ट व्यक्ति को शारीरिक अथवा मानसिक यंत्रणा द्वारा क्षति पहुंचाई जाती है तो विधि इस बात को सहन नहीं करेगी क्योंकि क्षति और सुरक्षा प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे के शत्रु हैं। और यदि एक बार कारागार के अन्तर्गत बन्दीग्रहण तथा सुरक्षित रूप से रखे जाने के बीच गुणिता प्रभेद समझ में आ जाता है तो जेलर की शक्ति उत्कृष्ट रूप धारण कर लेती है। बत्रा और उसके समान अन्य बन्दियों को इस बात का हक है कि उन्हें ऐसा प्रत्येक सुख और सांस्कृतिक सुविधा प्राप्त हो जो कि सहृदय सुरक्षित अभिरक्षा से विवक्षित है। बिस्तर और तकिया, मनुष्य मात्र से मेल-जोल, पावन स्थानों में पूजा पाठ, यदि कोई हो, खेल कूद, पुस्तकें, समाचार पत्र, लेखन सामग्री, कुटुम्ब के सदस्यों से मिलने जुलने और जीवन की सभी अच्छी बातें, जब तक कि जीवन रहता है और बन्दीगृह की सुविधाएं विद्यमान होनी चाहिएं। सुरक्षित रूप से रखे जाने को तोड़ मरोड़ कर ऐसे प्रच्छन्न अवसर के रूप में उपस्थित करना कि बन्दी को पिंजरे में बन्द कर दिया जाए और उसे अभिघात पहुंचाया जाए विधि की अभिरक्षा को धोखा देना होगा। सुरक्षित अभिरक्षा से प्रवंचन और विलगता बन्दियों के जीवन को मास के भोजन से बहिष्कृत करना तथा उन पर ऐसा परिश्रम अधिरोपित करना मानों कि संरक्षण इस प्रकार से सर्वोत्तम रूप से पूरा किया जा सकता है कि बन्दी लगभग पागल हो जाए। हो सकता है कि कारागार अधीक्षक इस बात की आड़ ले कि कारागार की प्रथा ऐसी ही है और यह भी हो सकता है कि उसे हमारे संविधान के अनन्य मूल्यों का ज्ञान न हो। हो

सकता है कि वृत्तिक प्रशिक्षण तथा कारागार की संस्कृति में कुछ कमी हो। हो सकता है कि वह अपने उद्देश्य की भ्रान्त धारणा अन्जाने में परमात्मा की सहायता हेतु करे : 'जिसे परमात्मा विनष्ट करना चाहता है उसे पहले वह पागल बना देता है।' कारण यह है कि दीर्घकालीन पृथक्करण संवेदनाओं को विनष्ट कर देता है जब तक कि उसकी भावना पागलपन के समतुल्य हो जाती है। सुरक्षित रूप से रखे जाने से यह अभिप्रेत है कि उसके शरीर तथा मस्तिष्क को उचित अवस्था में रखा जाए। उसके मस्तिष्क को यंत्रणा पहुंचाना असुरक्षित रूप से रखा जाना है। उसके व्यक्तित्व को क्षति पहुंचाना सुरक्षित अभिरक्षा नहीं है। इसलिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 366 किसी ऐसे कार्य को प्रतिषिद्ध करती है जो कि किसी मनुष्य को उसके शरीर तथा मस्तिष्क की दृष्टि से विघ्न पहुंचाती हो। उसके शरीर को बनाए रखना और उसकी आत्मा को कुचल देना सुरक्षित अभिरक्षा नहीं है, चाहे वह कुछ भी अन्य क्यों न हो।

104. न तो दण्ड संहिता और न ही दण्ड प्रक्रिया संहिता सुरक्षा की आवश्यकताओं से परे किसी कार्य को विधिमान्यता प्रदान करती है और कोई अन्य प्रवंचन चाहे उसका कोई भी कारण क्यों न हो, विधि के प्राधिकार को धारण नहीं करता है। कोई कार्यपालक कार्य जो जीवन में कारागार की परिधि में रखे गए मानव की स्वाधीनता में विचलित क्षण पैदा करता है और वह भी शुद्ध रूप से सुरक्षित अभिरक्षा के लिए, विधि के नियम की आधार भूत धारणा के प्रति आक्षेप है—अयुक्तियुक्त, असमान, मनमाना तथा अन्यायोचित। मृत्यु दण्डादेश को जीवन की सुविधाओं से किसी प्रकार वंचित नहीं किया जा सकता है जैसे कि किसी दीवानी ऋणी, जुर्माना के व्यतिक्रमी, भरणपोषण के व्यतिक्रमी अथवा अवमानकर्ता को—वास्तव में इस भयंकर दुर्व्यवहार का कारण गम्भीर विभ्रम हैं।

105. कारागार अधिनियम [धारा 30(2)] विनिर्दिष्ट रूप से साधारण जेल अभिरक्षा से विचलन करती है जब ऐसे व्यक्तियों का प्रश्न हो जो कि दण्डादेश के अधीन हो'। अर्थात् उन्हें कारागार जीवन की वैसी ही अवस्थाएं प्राप्त होती हैं जैसी कि अन्य सामान्य कैदियों को, सिवाए दो विशिष्टियों के। कोठरी में परिरोध के समय के दौरान, मृत्यु दण्डादिष्ट बन्दी को अन्य बन्दियों से अलग रखा जाएगा। सायंकाल से लेकर प्रातःकाल तक अलग रखा जाना एक निर्बन्धन है। दण्डादिष्ट किए गए ऐसे व्यक्तियों को अभिरक्षकों द्वारा चौबीस घण्टे देख-रेख के अधीन रखा जाएगा। यह दोनों

ऐसे निर्बन्धन हैं जो कि मृत्यु दण्डादेश की पृष्ठभूमि में क्रूरता अधिरोपित किए बिना सुरक्षित अभिरक्षा के लिए युक्तियुक्त रूप से सहवर्ती हैं और समझ में आने वाले हैं।

106. अभिरक्षा को अवास्तविक रूप से बढ़ा-चढ़ा कर बतलाना एक विकृति है और यदि वह व्यापक रोग है तो कारागार प्रशासन के लिए मनोचिकित्सा विज्ञान की अपेक्षा है। प्रत्येक देश में यह कारागारों के अन्तर्गत क्रूरता से सहृदयता में परिवर्तित हो गए हैं और इन्हें विभिन्न श्रेणियों से विरोध मिला है और महान व्यक्ति संविधान से पूर्व तथा तत्पश्चात् दण्ड नीति के बीच जो भेद करते हैं वह अभी कारागार सेवाओं की रचनान्तर क्रिया में सम्मिलित नहीं किया गया है। और इसलिए कारागार सुधार के राष्ट्रीय कार्यक्रम पर बन्दी कर्मचारीबृन्द के लिए शिक्षा का संचार करता है, इस वृत्ति को मानव रूप देता है और उनकी देख-रेख में रखे गए मनुष्यों के मानव अधिकारों को अभिज्ञात करता है।

107. मेरे निर्णयानुसार धारा 30(2) बत्रा के साथ राज्य द्वारा दुर्व्यवहार किया गया है। उसे विधिमान्य नहीं बनाया जा सकता। यह बहस करना कि यह इस कारण एकांत परिरोध नहीं है क्योंकि वहां आगन्तुकों को अनुज्ञात किया जाता है, चिकित्सक और अधिकारी आते हैं और पास में अभिरक्षक खड़ा रहता है। इस कोटि में से बाहर नहीं ले जाता है।

108. चूंकि बहस की जा चुकी है इसलिए क्या हम यह पूछ सकते हैं कि एकांत परिरोध के महत्त्वपूर्ण संघटक क्या हैं? कानूनी परिभाषा की अनुपस्थिति में हमें जो संकेत मिलता है वह जेल मैन्युअल के पैरा 510 के स्पष्टीकरण में विद्यमान है—

> "एकांत परिरोध से ऐसा परिरोध अभिप्रेत है, जो श्रम सहित हो या उसके बिना, जैसा कि बन्दी को अन्य बन्दियों को देखने और उनसे संसूचना करने से अलग करता है।"

109. अविरोध का भीतरी पहलू (क) बन्दी का अलग किया जाना, (ख) अन्य बन्दियों को न देख पाना, तथा (ग) अन्य बन्दियों के साथ संसूचना न कर पाना है। किसी साथी को देखना आत्मा को शान्ति प्रदान करता है। अपने जैसे व्यक्तियों से संसूचना करना आत्मा की पीड़ा को दूर करने वाली औषधि है। इन दोनों का प्रत्याख्यान जिस पर पूर्ण रूप से एकाकीपन, अधिरोपित किया गया हो, पागलपन की ओर ले जाता है। इस बात की परख करना कि क्या भारतीय पदों में निश्चित प्रकार का परिरोध एकांत परिरोध

है; हमें केवल इस बात का सत्यापन करना है कि क्या दूसरे कैदियों को देखने और संसूचना करने पर प्रतिषेध अधिरोपित किया गया है। इस बात से कोई लाभ प्राप्त नहीं होता कि जेल के निरीक्षकों, उसके अधिकारियों अथवा सम्बन्धियों को कभी-कभार देखने की व्यवस्था की गई है। इस मामले का सार यह है कि अन्य बन्दियों के साथ पूरी दृष्टि से मेल-मिलाप किया जाए। दुःखदायी स्थिति में साथियों के दिलों पर अत्यन्त भार रहता है जिसे उन्हें दूर करना होता है और उनके बीच वास्तविक वार्तालाप का सुखद प्रभाव पड़ता है। अब जबकि स्वयं प्रिज़न मैन्युअल में एकांत परिरोध के बारे में भारतीय धारणा बन चुकी है; शब्दकोषों के प्रयोग विनिश्चयों की विदवत्ता जो अन्य देशों से उपलब्ध होती है तथा विधि के शब्दकोषों के प्रति निर्देश से शाब्दिक सूक्ष्म अर्थ ग्रहण करना निरर्थक है। स्वयं जेल मैन्युअल की पिछड़ी हुई मनोचिकित्सा में इस बात पर विचार किया गया कि ऐसे परिरोध को जारी रखना मस्तिष्क अथवा शरीर के लिए क्षतिकर साबित हो सकता है अथवा वह मनुष्य को स्थायी रूप से ऐसा परिरोध भुगतने के लिए अयोग्य बना सकता है [देखिए जेल मैन्युअल के पैरा 512(7) और (9)].

110. शब्दों और अभियुक्तियों स्थायी संस्करण में एकांत परिरोध के बारे में दण्ड के रूप में यह समझा जाता है कि उससे समस्त मानव समाज से कैदी का पूर्णतया परिरोध हो जाता है और पर्याप्त आकार की कोठरी में उसका एकांतवास इस प्रकार व्यवस्थित बन जाता है कि उसे किसी मानव का उससे प्रत्यक्ष वार्तालाप अथवा उसकी दृष्टि प्राप्त नहीं हुई थी और न ही कोई नियोजन अथवा अनुदेश मिला था। सम्बद्ध किन्तु कम कठोर परिरोध जिसे "निकट परिरोध" का नाम दिया गया है उससे तुलना करना उपयोगी होगा और उसका अर्थ ऐसी अभिरक्षा और मात्र ऐसी अभिरक्षा है जो कि सुरक्षित रूप से उसे फांसी पर चढ़ाने के लिए नियत दिन को कैदी के शरीर को पेश करना सुरक्षित रूप से अभिरक्षित होगा।

111. इससे अधिक व्यवहारिक पहचान जो कि एकांत परिरोध के बारे में दी गई है वह हमें ब्लैक की लॉ डिक्शनरी में मिलती है—

> "साधारण अर्थ में किसी कैदी का पृथक् परिरोध जबकि किसी अन्य व्यक्ति को वहां जाने का अवसर कभी-कभी मिलता हो और वह भी जेलर के विवेकाधिकार पर। सीमित अर्थ में समस्त-मानव समाज से कैदी का पूर्ण परिरोध और उसका एकांतवास कोठरी में इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उसे किसी भी

मनुष्य से प्रत्यक्ष रूप से वार्तालाप करने या उसे देखने का कोई अवसर नहीं मिलता और न ही उसे कोई नियोजन अथवा अनुदेश प्राप्त होता है।"

समस्त मानव समाज से सम्पूर्ण अविरोध कठोर अर्थों में एकांतवास है। अन्य व्यक्तियों के साथ किसी-किसी अवसर पर मिलना-जुलना और इस प्रकार उसे पृथक् एकांत में रखा जाना भी एकांत परिरोध है।

112. बत्रा को एकांत कोठरी में रखने सम्बन्धी विलक्षण दलीलें निश्चित रूप से सफल हो जाती हैं और उसे यह सुगमताएं तथा सुविधाएं दी जाएंगी जो कि सामान्य कैदियों को दी जाती हैं जब तक कि वह दण्डादेश के अधीन रहता है।

113. क्या वह मृत्यु के दण्ड के अधीन है ? अभी नहीं।

114. स्पष्ट है कि सेशन न्यायालय द्वारा बत्रा के विरुद्ध मृत्यु दण्डादेश पारित किया गया है किन्तु यह अन्तिम है और प्रश्न यह है कि क्या धारा 30(2) के अधीन पिटीशनर को चौब्बीस घंटे अभिरक्षक की देख-रेख में अकेले कालकोठरी में परिरुद्ध किया जा सकता है। यहां जो मूल शब्दों मानविक निर्वचन की अपेक्षा करते हैं वे "मृत्यु दण्डादेश के अधीन" हैं और "अन्य सभी बन्दियों से अलग कोठरी में परिरुद्ध"।

115. कोई भी सिद्धदोष व्यक्ति "मृत्यु दण्डादेश के अधीन" तब आता है जबकि और केवल तभी जबकि मृत्यु दण्डादेश मृत्यु के बीच थोड़ा सा फासला रह जाता है। **अब्दुल अजीज** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] तथा **डी० के० शर्मा** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिर्णय हालांकि वे इस प्रश्न पर प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिए गए हैं, प्रबल रूप से इस मुक्ति को साधार बनाते हैं।

116. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 366 इस प्रश्न के बारे में सुसंगत है —

"366 (1) जब सेशन न्यायालय मृत्यु दण्डादेश देता है तब कार्यवाही उच्च न्यायालय को प्रस्तुत की जाएगी और दण्डादेश तब तक निष्पादित न किया जाएगा जब तक वह उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट न कर दिया जाए।

---

1 (1977) 3 एस० सी० आर० 393.

2 (1976) 2 एस० सी० आर० 289.

(2) दण्डादेश पारित करने वाला न्यायालय वारंट के अधीन दोषसिद्ध व्यक्ति को जेल की अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करेगा।"

117. इसलिए यह स्पष्ट है कि मृत्यु दण्डादेश तब तक अनिष्पाद्य है जब तक कि उसे उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट नहीं कर दिया जाता है। मृत्यु दण्डादेश धारा 366 (1) में अन्तर्विष्ट बाधा को ध्यान में रखते हुए स्वयं क्रियान्वित नहीं होता है भले ही सेशन न्यायालय ने उस दण्डादेश को सुनाया हो।

118. अब मैं इससे आगे विचार करूंगा। हम यह मानकर चल सकते हैं कि उच्च न्यायालय ने उस मृत्यु दण्डादेश को पुष्ट कर दिया है या नए सिरे से मृत्यु दण्डादेश दिया है। तथापि उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील करना सम्भाव्य है और सर्वोच्च न्यायालय की पूर्ण शक्ति मृत्यु दण्डादेश को समाप्त कर सकती है। स्वाभाविक रूप से स्वयं अपील के लम्बित रहने से दण्डादेश का निष्पादित किया जाना प्रतिषिद्ध हो जाता है। अन्यथा अपीली शक्ति निष्फल हो जाएगी, मनुष्य को फांसी पर चढ़ा दिया जाएगा और उच्चतम न्यायालय निष्प्रभावी बन जाएगा यदि यह बाद में मृत्यु दण्डादेश को उलट देती है। हमारे दृष्टिकोण में जब कोई अपील दोषसिद्धि के विरुद्ध लम्बित रहती है और मृत्यु दण्डादेश के साथ दण्डनीय अपराध के सम्बन्ध में दण्डादेश, ऐसा मृत्यु दण्डादेश भले ही वह उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट कर दिया गया हो कार्यान्वित नहीं होगा जब तक कि उच्चतम न्यायालय ने निर्णय न सुना दिया हो। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 415 अनिवार्य रूप से यह परिणाम प्रतिपादित करती है—

> "415 (1) जहां किसी व्यक्ति को उच्च न्यायालय द्वारा मृत्यु दण्डादेश दिया गया है और उसके निर्णय के विरुद्ध कोई अपील संविधान के अनुच्छेद 134 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) या उपखण्ड (ख) के अधीन उच्चतम न्यायालय को होती है वहां उच्च न्यायालय दण्डादेश का निष्पादन तब तक के लिए मुल्तवी किये जाने का आदेश देगा जब तक ऐसी अपील करने के लिए अनुज्ञात अवधि समाप्त नहीं हो जाती है अथवा यदि उस अवधि के अन्दर कोई अपील की गई है तो जब तक उस अपील का निपटारा नहीं हो जाता है।
>
> (2) जहां उच्च न्यायालय द्वारा मृत्यु दण्डादेश दिया गया है या उसकी पुष्टि की गई है, और दण्डादिष्ट व्यक्ति संविधान के

अनुच्छेद 132 के अधीन या अनुच्छेद 134 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) के अधीन प्रमाणपत्र दिए जाने के लिए उच्च न्यायालय से आवेदन करता है, तो उच्च न्यायालय दण्डादेश का निष्पादन तब तक के लिए मुल्तवी किए जाने का आदेश देगा जब तक उस आवेदन का उच्च न्यायालय द्वारा निपटारा नहीं हो जाता है या यदि ऐसे आवेदन पर कोई प्रमाणपत्र दिया गया है, तो जब तक उस प्रमाणपत्र पर उच्चतम न्यायालय को अपील करने के लिए अनुज्ञात अवधि समाप्त नहीं हो जाती है।

(3) जहां उच्च न्यायालय द्वारा मृत्यु दण्डादेश दिया गया है या उसकी पुष्टि की गई है और उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि दण्डादिष्ट व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील के लिए विशेष इजाज़त दिए जाने के लिए उच्चतम न्यायालय में अर्जी पेश करना चाहता है, वहां उच्च न्यायालय दण्डादेश का निष्पादन इतनी अवधि तक के लिए, जितनी वह ऐसी अर्जी पेश करने के लिए पर्याप्त समझे, मुल्तवी किए जाने का आदेश देगा।"

119. अनुच्छेद 72 और 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 433, 434 और 435 के समान मृत्यु दण्डादेश दिए जाने के लिए उपबन्ध करते हैं। कारागार अधिनियम के अधीन बनाए गए नियम जिनमें इन उपबन्धों का उल्लेख किया गया है, कैदी द्वारा दण्डादेश में कमी किए जाने के लिए पिटीशनर हेतु उपबन्ध करते हैं। कारागार अधिनियम के अधीन विरचित नियम 547 तथा नियम 548 करुणा के लिए पिटीशनरों से सम्बन्धित हैं —

*" (क) **भारत सरकार द्वारा विरचित नियम** :

I—मृत्यु दण्डादेश के उच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट किए जाने के परिणामस्वरूप किसी वारन्ट के निष्पादन की तुरन्त प्राप्ति पर

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"(a) **Rules framed by the Government of India :**

I.—Immediately on receipt of a warrant for execution consequent on the confirmation by the High Court of Sentences of death, Jail Superintendent shall inform the convict concerned that if he desires to submit a petition for mercy it should be submitted in writing within seven days of the date of such intimation.

जेल अधीक्षक सम्बन्ध सिद्धदोष व्यक्ति को सूचित करेगा यदि वह दया के लिए पिटीशन प्रस्तुत करने की इच्छा रखता है तो वह ऐसी संसूचना की तारीख से सात दिन के भीतर लिखित रूप में उसे प्रस्तुत करेगा।

II – यदि सिद्धदोष व्यक्ति नियम 1 द्वारा विहित सात दिन की कालावधि के भीतर किसी पिटीशन को प्रस्तुत करता है तो यह स्थानीय सरकार को तथा सपरिषद् महाराज्यपाल को सम्बोधित किया जाना चाहिए और जेल का अधीक्षक तुरन्त दो प्रतियों में उसे सम्बद्ध विभाग की स्थानीय सरकार को प्रेषित करेगा जिसके साथ अवर्ण पत्र भेजा जाएगा जिसमें फांसी पर लटकाए जाने की नियत तारीख सूचित की जाएगी और इस बात का प्रमाणपत्र भेजा जाएगा कि सपरिषद् राज्यपाल के आदेशों की प्राप्ति के लम्बित रहते हुए फांसी रोक दी गई है। यदि पिटीशन के प्रेषित किए जाने की तारीख से पन्द्रह दिन के भीतर कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता है तो अधीक्षक स्थानीय सरकार के सचिव को तार भेजकर इस तथ्य के प्रति उसका ध्यान आकर्षित करेगा किन्तु वह किसी भी हालत में स्थानीय सरकार के उत्तर की प्राप्ति से पूर्व फांसी नहीं देगा।"

120. परिणामस्वरूप राज्यपाल अथवा भारत के राष्ट्रपति के समक्ष दया के पिटीशन के लम्बित रहने के दौरान मृत्यु दण्डादेश निष्पादित नहीं किया जाएगा। इस प्रकार इन दोनों महामहिमों द्वारा दण्ड को न्यूनतर करने से इनकार करने तथा यह सम्भव नहीं है कि यह कारण बतलाया जाए

II.— If the convict submits a petition within the period of seven days prescribed by Rule 1 it should be addressed boih to the Local Government and to the Governor-General in Council, and the Superintendent of Jail shall forthwith despatch it, in duplicate, to the Secretary to the Local Government in the Department concerned, together with a covering letter reporting the date fixed for the execution and shall certify that the execution has been stayed pending receipt of the orders of the Governor in Council and the Governor-General in Council on the petition, if no reply is received within 15 days from the date of the despatch of the petition, the Superintendent shall telegraph to the Secretay to the Local Govenment drawing attention to the fact, but he shall in no case carry out the execution before the receipt of the Local Govérnment's reply."

कि स्वयं फांसी के फन्दे पर लटकाए जाने वाला मृत्यु दण्डादेश है। इसलिए कोई कैदी स्वतः कार्यकरण दण्डादेश के लिए केवल तभी वैध रूप से अध्यधीन हो सकता है जबकि कैदी द्वारा पेश किया गया दया सम्बन्धी आवेदन पत्र रद्द कर दिया जाए। निस्सन्देह तत्पचात् धारा 30(2) लागू होती है। दया के लिए द्वितीय अथवा तृतीय, चतुर्थ अथवा तत्पश्चात् किया गया आवेदन उसे तब तक उस कोटि में से बाहर नहीं ले जाता है जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा मृत्यु दण्डादेश के निष्पादित किए जाने को रोकने के लिए विनिर्दिष्ट आदेश न हो।

121. अनिवार्य रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि बत्रा या कोई जा भी अन्य व्यक्ति जो उसके समान हैं ऐसे व्यक्तियों के रूप में वर्गीकृत किए सकते हैं जो मृत्यु दण्डादेश के अधीन हों। इसलिए उन्हें अन्य कैदियों से विलग रूप में परिरुद्ध नहीं किया जा सकता। और न ही उसे कठोर कारागार के अधीन दण्डादिष्ट किया जा सकता है और इस प्रकार उसे परिश्रम के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। वह इसलिए अभिरक्षा में है क्योंकि न्यायालय ने मृत्यु दण्डादेश की पुष्टि किए जाने के लम्बित रहते हुए कारागार प्राधिकारी को यह समादेश दिया था कि वह दण्डादिष्ट व्यक्ति को अभिरक्षा में रखे। यहां ठोस परिणाम स्पष्ट रूप से उपवर्णित किया जा सकता है।

122. बत्रा जैसे दण्डादिष्ट कैदियों को केवल सुरक्षा में रखा जाएगा और उनसे ऐसा काम नहीं लिया जाएगा जैसा कठोर कारावास से दण्डादिष्ट व्यक्तियों से लिया जाता है। इन कैदियों को स्वयं अपनी इच्छा पर अलग नहीं रखा जायेगा और न ही पृथक् रखा जाएगा क्योंकि वे धारा 30 (2) के अधीन नहीं आते हैं। उन्हें साधारण रूप से बन्दीगृह में निवास करने वाले व्यक्तियों के समान खेल-कूद, पुस्तकें, समाचारपत्र, युक्तियुक्त रूप से अच्छा भोजन, अभिव्यक्ति का अभिकार चाहे वह कलात्मक हो या अन्यथा तथा सामान्य परिधान एवं बिस्तर की व्यवस्था की जाएगी। एक प्रकार से वे साधारण कैदियों से बेहतर हैं क्योंकि वे किसी कठोर कारावास की अवधि से भुगत रहे हैं। तथापि यदि उनकी सामाजिक इच्छाएं उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करती हैं कि वे अन्य कैदियों के साथ मिल-जुलकर रहें और उनके समान काम-काज करें तो उन्हें ऐसा करने दिया जाना चाहिए। एक साथ मिलकर खाने से, इकट्ठे सोने से, साथ मिलकर काम करने से, एक साथ रहने से, सामान्य रूप से उन्हें प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता। जब तक कि ऐसा अनुक्रम अपेक्षित करने वाले विनिर्दिष्ट आधार विद्यमान न हों, जैसा

कि समलिंग (होमो सैक्सुअल) प्रवृत्तियां, रोग, हिंसात्मक रुझान आदि। किन्तु यदि यह आधार दण्डादिष्ट व्यक्ति के प्रतिकूल फायदों का खण्डन करते हैं तो उसे संक्षेप में नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के आवश्यक अनुसरण में सुनवाई दी जानी चाहिए।

123. पांडित्यपूर्ण रूप से काउन्सेल ने जो मुझे प्रेरणा प्रदान की उसे ध्यान में रखते हुए इससे पूर्व कि मैं इस विषय का परित्याग करू तथा एंग्ले-अमरीकी मतों की विचार धारा के प्रति निर्देश करूं जिनमें न्यायिक तथा शास्त्रिय दोनों आदेश जो कि हमें उपलभ्य किये गए हैं उनमें से कुछ के प्रति मैंने निर्देश किया है। संयुक्त राज्य अमरीका के न्यायाधीशों को ऐसा विवाद्यक पर विचार करना था और उससे पूर्व कि मैं एकान्त परिरोध सम्बन्धी विधिक विवक्षाओं को समाप्त करूं मैं उनमें से कुछ के प्रति निर्देश करना चाहूंगा।

124. दाण्डिक परिरोध को इतना कठोर समझा गया है कि अनेक अमरीकी राज्यों में परिशोध आयुक्त के विशेष अनुमोदन के बिना इसे आठ दिन से अधिक सीमित नहीं रखा जा सकता। इस प्रकार के दाण्डिक कारावास की औसत कालावधि पांच दिन होती है। अब हम यूनाइटिड स्टेट्स जिला न्यायालय में किए गए एक टिप्पण को यहां प्रस्तुत करेंगे[1]—

> "यह दण्ड केवल औपचारिक लिखित सूचना के पश्चात् अधिरोपित किया जाता है और इसके बाद अनुशासन समिति के समक्ष सुनवाई की जाती है।"

125. सीमित कालावधियों पर बल तथा दण्ड से पूर्व सुनवाई को एकान्त परिरोध के दण्ड के लिए प्रक्रिया के अन्तर्गत रखा गया है यह ऐसी दशा में महत्वपूर्ण है जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि क्या किसी प्रकार का कठोर कारावास चाहे वह एकान्त कारावास का हो, अथवा सलाखों के पीछे कारावास हो, नैसर्गिक न्याय के अनुसार नहीं होना चाहिए और यर्थाथ रूप से कालावधि की दृष्टि से सीमित होना चाहिए। अवरोधक एकान्तवास तथा बेड़ियां पहनाना एक प्रतशय मामला है।

126. एक अफ्रीकी अमरीकी नागरिक सोस्त्रे ने **सोस्त्रे बनाम रौकफैलर**[2] वाले मामले में एकान्त परिरोध के बारे में नागरिक अधिकारों के सम्बन्ध में यह कार्यवाही प्रस्तुत की थी, जिसमें एकान्त कारावास का परिवाद

---

1 लियोनर्ड ग्रारलैण्ड द्वारा कृत जस्टिस, पनिशमेंट, ट्रीटमेण्ट—दि फ्री प्रेस न्यू यार्क पृष्ठ 293.

2 312 एफ० सप्लीमेण्ट 863 (1970).

किया गया था, जिसे अन्यथा दाण्डिक पृथगवास किया गया था। इस स्थिति की कठोरता मानविक पृथक्करण सामूहिक विशेषाधिकारों का समूह के रूप में थी। इसके बारे में न्यायाधिपति ने यह अभिनिर्धारित किया था—

> "यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि दाण्डिक पृथगवास उन अवस्थाओं के अधीन जिनमें कि वादी को ग्रीन हैविन में रखा गया था, शारीरिक रूप से कठोर है, नैतिक रूप से विनाशक हैं, इन अर्थों में मानवीकरण है कि यह अनुशासनिक रूप से मनुष्य को नीचे करने वाला है और जब संक्षिप्त कालावधि से अधिक हो जो कि निश्चित रूप से 15 दिन से अधिक नहीं होना चाहिए, बुद्धिमत्ता को बनाए रखने के लिए खतरनाक है।"

127. **सोस्त्रे बनाम रौकफैलर**[1] वाले मामले में दण्डकात्मक एकान्त कारावास जैसा कि यहां है, निश्चित दण्डात्मक परिरोध के रूप में है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यह इतना अननुपातक है कि यह उग्र तथा अप्रायिक दण्ड की कोटि में आता है।

> "न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया था कि यदि उन परिस्थितियों को सामूहिक रूप से देखा जाए तो सोस्त्रे को एक वर्ष से अधिक समय के लिए दण्डाधीन रखा गया था जो कि क्रूर तथा अप्रायिक दण्ड था यदि उसकी परख शालीनता के विकासशील मानकों के रूप में का जाए जो कि परिपक्व समाज की प्रकृति का अंग है। ट्राप **बनाम** डूलेस 356 यू० एस० 86, 101 (1958) (न्या० वारन का मत)"

> "एकाकीपन का खण्डन कई वर्षों से ऐसे मनुष्यों का अनुभव है जो कि पागलपन के शिकार हो गए हैं, विशेष रूप से परिरोध के अन्तर्गत है।" (टी 320)

ग्रीन हैविन के पृथक्करण के दाण्डिक पृथक्करण में जो शर्तें अकाट्य रूप से विद्यमान थीं, उनमें इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था।

> "वे केवल बन्दियों की भावना को पूर्णतः विनष्ट करने का काम करती थी तथा उसकी बुद्धिमत्ता का ह्रास उत्पन्न करती थी।" राइट **बनाम** मैचमैन पूर्वोक्त 387 एफ० 2 पृ० 526। जब इस परिरोध को 15 दिन से अधिक समय के लिए अधिरोपित किया

1 312 एफ० सप्लीमेण्ट 863 (1970).

जाए। कारागार में किसी अपराधी के लिए दण्ड के रूप में उसकी बुद्धिमत्ता का विनाश करने के जोखिम को प्रदर्शित करने के लिए अपराधी को उसके अधीन रखना स्पष्ट रूप से क्रूर है तथा अप्रायिक दण्ड जैसा कि शीलनता के वर्तमान मानकों द्वारा निर्धारित किया गया है।"

128. जो बात पर्याप्त रूप से ऋजु है, वह प्रक्रिया पर किया गया सम्प्रेक्षण है। जिसका तत्स्थानी भाग हमारे पास में अनुच्छेद 21 में मिलता है, जो कि मेनका गाँधी वाले मामले में प्रतिपादित किया गया है: अमरीकी न्यायाधीश ने **सोस्त्रे वाले मामले**[1] में निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

"हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने सुदृढ रूप से सम्यक् प्रक्रिया के सिद्धान्त को दोहराया था कि जहां सारी कार्यवाही द्वारा गम्भीर रूप से किसी व्यक्ति को क्षति पहुंचती हो और उस कार्यवाही की युक्तियुक्तता तथ्य के निष्कर्षों पर निर्भर करती हो वहां सरकार उस मामले को साबित करने के लिए प्रयुक्त साक्ष्य का पृथक्करण व्यक्ति विशेष को किया जाना चाहिए जिससे कि उसे यह दर्शित करने का अवसर मिल सके कि यह सही नहीं है। व्यक्ति को इस बात का भी अधिकार होना चाहिए कि वह काउंसेल नियुक्त कर सके। विनिश्चय करने वाले का निष्कर्ष निश्चित रूप से अनन्यतः विधिक नियमों तथा साक्ष्य पर निर्भर करता है जो कि सुनवाई में पेश किया जाता है। इस सम्बन्ध में विनिश्चय करने वाले को चाहिए कि वह अवधारण किए गए निर्णय के कारणों का कथन करे और उस साक्ष्य को उपदर्शित करे जिसका कि उसने अवलम्ब लिया है। अन्त में ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दे दिया कि निर्पेक्ष रूप से विनिश्चय देने वाले व्यक्ति का विद्यमान होना आवश्यक है। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वादा को पूर्वतः किसी कैदी पर लगाए जाने वाले न्यूनतम प्रक्रिया सम्बन्धी कठोर दण्ड के बिना दांण्डिक पृथगवास में एक वर्ष से अधिक समय के लिए दण्डादिष्ट किया किया था।"

129. अपर महा सालिसिटर द्वारा कारागार का पद्धति पर प्रक्रिया सम्बन्धी न्याय में ह्रास करने के बारे में पर्याप्त रूप से बल दिया गया है। यूनाइटिड स्टेट्स जिला न्यायालय ने सोस्त्रे वाले मामले में यह कहा था—

---

1 (1970) 312 फैडरल सप्लीमेण्ट 863.

"जैसा कि सदैव होता है, कठिन प्रश्न यह है कि प्रक्रिया सम्यक् प्रक्रिया थी। उस प्रश्न का उत्तर देने में हम आलोचना किए बिना ऐसे विनिश्चयों को अभिनिर्धारित करेंगे जो कि ऐसे संदर्भ से विरंजित होते हैं जहां कि वर्ण प्रस्तुत मामले से इतना भिन्न है जितने कि उन मामलों में हैं जिन पर हमने विचार-विमर्श किया है।"

"सामान्यीकरण के रूप में यह कहा जा सकता है कि सम्यक् प्रक्रिया के औचित्य के भिन्न-भिन्न नियमों को समाविष्ट करती है जो कि पिछले कई वर्षों से विभिन्न प्रकार के रूपों से संयोजित किए गए हैं। चाहे संविधान द्वारा यह अपेक्षा की गई हो कि कोई अधिकार विशेष किसी विनाश कार्यवाही में प्राप्त किए जाने पर नाना प्रकार के तत्वों पर निर्भर करता है। अन्तर्वलित अभिकथित अधिकार की प्रकृति, कार्यवाही की प्रकृति और असंभाव्य जो उस कार्यवाही पर पड़ता है—सभी ऐसे विचार्य विषय हैं जिन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।"

130. उसी मामले में अपीली निर्णय में एक सारगर्भित संदर्भ को उद्धृत किया जा सकता है —

"यह नहीं समझा जाना चाहिए कि हम अनेक न्यायालयों के इस निर्णय का अननुमोदन कर रहे हैं कि हमारे संविधान की स्कीम में यह अनुध्यात नहीं है कि समाज विधि का भंग करने वालों को कारागार के अधिकारों के सनकी तथा मनमाने कार्यों पर छोड़ दें। यदि किसी कैदी से सारवान् प्रवंचन किए जाते हैं तो यह बुद्धिमत्ता होगी कि ऐसे कार्यवाही कम से कम ऐसे तथ्यों पर आधारित हो जो व्यवहारात्मक रूप से अवधारित किये हों। यह ऐसी धारणा नहीं है जो निरर्थक है। अधिकतर मामलों में संभाव्यतः यह कठिन होगा कि किसी जांच को न्यूनतम रूप से उचित विवेकपूर्ण मान लिया जाए तब तक कैदियों पर लगाए गए लांछन प्रस्तुत न किए गए हों, और उन्हें उनके विरुद्ध दिए गए साक्ष्य से सूचित न किया जाए।"

131. वुल्फ वनाम मैकडानल[1] वाले मामले में संयुक्त राज्य अमरीका की सुप्रीम कोर्ट ने सम्यक् प्रक्रिया के प्रश्न पर कारागार सम्बन्धी अनुशासनिक सुनवाई, प्रतिवाद और प्रति परीक्षा एवं काउन्सेल की उपस्थिति

1 41 लॉइयर्स एडीशन, सैक्रेण्डम् 935.

पर भी विचार किया था। न्यायाधिपति व्हाइट ने बहुमत का निर्णय सुनाते हुए यह सामंजस्य स्थापित किया था कि सम्यक् प्रक्रिया खण्ड द्वारा निम्नलिखित मांग की गई है और उसमें इस बात पर जोर दिया गया है :

> ".....हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि आरोपों का लिखित नोटिस अनुशासनिक कार्यवाही में प्रतिवादी को दिया जाना चाहिए जिससे कि उसे आरोपों से अवगत कराया जा सके और उसे इस योग्य बनाया जा सके कि वह तथ्यों को क्रमिक रूप में प्रस्तुत कर सकें और अपनी प्रतिरक्षा तैयार कर सकें। नोटिस दिए जाने के पश्चात् कम से कम संक्षिप्त कालावधि जो चौब्बीस घण्टों से कम नहीं होनी चाहिए कारागार में निवास करने वाले को अनुज्ञात की जानी चाहिए जिससे कि वह समंजन समिति (एड्जस्टमेंट कमेटी) के समक्ष हाजिर होने के लिए तैयार हो सके।
>
> हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अनुशासनिक कार्यवाही के लिए कारणों तथा जिस साक्ष्य का अवलम्ब लिया गया है उससे सम्बद्ध तथ्य का अन्वेषण करने वालों द्वारा लिखित कथन दिया जाना चाहिए ।
>
> हालांकि नभरास्का में यह उपबन्ध किया गया प्रतीत नहीं होता कि समंजन समिति द्वारा कार्यवाही का प्रशासनिक पुनर्विलोकन किया जाना तथापि ऐसी कार्यवाहियों में उठाए गए कदमों के अन्तर्गत अन्य निकायों द्वारा पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए। उनके द्वारा सुधार निदेशक की ओर से इस बात का विनिश्चय किया जा सकता है। किसी बन्दी को किसी अन्य संस्था में स्थानान्तरित कर दिया जाए क्योंकि उसके बारे में यह समझा गया है कि वह बार-बार साशय अनुशासन भंग के कारण असाध्य हो गया है और उन पर निश्चित रूप से परोल विनिश्चय करते समय राज्य परोल प्राधिकारियों द्वारा विचार किया जाएगा। इस प्रकार कार्यवाहियों के लिखित अभिलेख बन्दियों को साम्पार्शिवक परिणामों से संरक्षित करते हैं जोकि मूल कार्यवाही की प्रकृति को अनुचित रूप से समझने पर आधारित हैं। इसके अलावा स्वयं अनुशासनिक कार्यवाही के बारे में लिखित अभिलेख के लिए उपबन्ध इस बात को सुनिश्चित बनाने में सहायता देता है कि प्रशासक, राज्य अधिकारियों तथा

जनता द्वारा संभाव्य रूप से संवीक्षा किए जाने पर और सम्भवतः न्यायालयों में भी ऐसा किए जाने पर जहां कि मूल सांविधानिक अधिकारों को न्यून बनाया गया है समुचित रूप से कार्यवाही करेंगे। लिखित अभिलेखों के बिना, बन्दी अपने वाद को प्रतिपादित करने में या अन्य व्यक्तियों से अपनी प्रतिरक्षा करने में गम्भीर हानि की स्थिति में होगा। हो सकता है कि ऐसे अवसर आएं जबकि वैयक्तिक अथवा संस्थागत सुरक्षा इतनी जटिल हो कि कथन में से समुचित रूप से साक्ष्य की कुछ मदें अपवर्जित कर दी जाएं, किन्तु ऐसी स्थिति में कथन द्वारा वह उपदर्शित किया जाना चाहिए कि किस तथ्य का लोप हुआ है। अन्यथा हमें कोई पुनर्वासात्मक उद्देश्य अथवा कारागार के विनाश की कोई प्रत्याशा दिखाई नहीं देती जो कि इन कथनों की उपेक्षा से अग्रसर होती हो। हमारी यह भी राय है कि अनुशासनिक कार्यवाहियों का सामना करने वाले बन्दी को इस बात की इजाज़त दी जानी चाहिए कि वह साक्षियों को बुला सके और प्रतिरक्षा के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य पेश कर सके जबकि संस्थागत सुरक्षा अथवा संशोधात्मक उद्देश्यों के प्रति उसे ऐसी अनुज्ञा देना अप्रायिक रूप से खतरनाक नहीं होगा।"

132. जहां तक काउन्सेल के अधिकार का प्रश्न है न्यायाधिपति ह्वाइट ने यह महसूस किया था कि ऐसी दशा में कार्यवाहियां प्रतिकूल रूप धारण कर लेंगी, किन्तु उन्होंने आगे यह भी कहा था कि—

"किन्तु जहां किसी अपढ़ बन्दी का प्रश्न हो अथवा जहां विवाद्यक की जटिलता इस बात को असम्भाव्य बनाती हो कि बन्दी के लिए मामले को पर्याप्त रूप से समझने के लिए यह आवश्यक होगा कि वह उस हेतु साक्ष्य को संगृहीत करे और पेश करे; उसे इस बात की स्वतंत्रता होनी चाहिए की वह किसी साथी बन्दी की सहायता ले सके अथवा यदि ऐसा प्रतिषिद्ध हो तो कर्मचारीवृन्द से सहायता के रूप में पर्याप्त सारवान् सहायता ग्रहण कर सके या वह ऐसी सहायता कर्मचारीवृन्द पदाभीहीत पर्याप्त रूप से सक्षम बन्दी से ग्रहण कर सके। किन्तु यहां हमें इस मामले पर और आगे विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस बात का दावा नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थी मैकडानल ऐसे बन्दियों के वर्ग के अन्तर्गत है जोकि कारागार अनुशासनिक सुनवाई के अनुक्रम में अन्य

व्यक्तियों से सलाह या मदद लेने का हकदार है।"

किन्तु विद्वान न्यायाधीश ने यह महसूस किया कि ऐसी अवस्थाओं में जहां कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण (हेबियस कार्पस) सम्बन्धी आवेदन पत्र दिए जाने थे, योग्य बन्दियों को विधिक सलाहकारों के रूप में कार्य करने की इजाज़त दी जा सकती है।

133. न्यायाधिपति मार्शल ने बहुमत की राय से बढ़चढ़ कर मत व्यक्त किया और यह सम्प्रेक्षण किया—

> ".....सुधारात्मक प्राधिकारी का कहीं अधिक महत्व यह है कि अनुशासनिक कार्यवाहियों में बृहत्तर प्रक्रियागत औचित्य, जिनके अन्तर्गत वाद-विवाद तथा प्रतिपरीक्षा अनुज्ञात है, पुनर्वासात्मक, यंत्र के रूप में अनुशासनिक प्रक्रिया को बढ़ावा देता है न कि उसका ह्रास करता है।
>
> समय ने यह साबित कर दिया है..... कि सुधारात्मक अधिकारियों को अन्धाधुन्ध समादर उन्हें कोई वास्तविक सेवा प्रदान नहीं करता है। प्रक्रियागत विनियमितता के साथ न्यायिक सम्बन्ध संस्थागत आदेश के बनाए रखने के प्रति प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है; जिस व्यवस्थित सावधानी से विनिश्चय कारागार प्राधिकारी द्वारा दिए जाते हैं वह आदर के उस स्तर से इतने घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं जिससे कि बन्दी उस प्राधिकारी को मानते हैं।
>
> कारागार जैसी किसी सार्वजनिक संस्था के तन्तु के प्रति इससे अधिक क्षतिकर और कुछ नहीं हो सकता। जैसी कि उन व्यक्तियों के भीतर वह भावना जो उसके अन्दर निवास करते हैं कि उनके साथ अनुचित रूप से व्यवहार किया जा रहा है।
>
> जैसा कि मुख्य न्यायाधीश ने उल्लेख किया था.....उचित व्यवहार.....से मनमानेपन के प्रति क्रियाओं द्वारा पुनर्वास के अवसर को वृद्धि मिलेगी।
>
> .....हमने यह स्वीकार कर लिया है कि कोई निष्पक्ष विनिश्चयकर्त्ता विभिन्न सुसंगत स्थितियों में सम्यक् प्रक्रिया का मूलभूत उपेक्षा है और मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि यह उपेक्षा पूरी तरह से यहां लागू होती है। किन्तु मेरे दृष्टिकोण में यहां जो समंजन समिति (एड्जस्टमेंट कमेटा) जैसी समिति जिन जिम्मेदार कारागार अधिकारियों से मिलकर बना है उससे अनुशासनिक बोर्ड को कोई

सांविधानिक बाधा नहीं पहुंचती। जबकि यह भलीभांति वांछनीय है कि अनुशासनिक पेनलों पर पीठासीन बाहर से कारागार पद्धति में से कुछ व्यक्तियों को इसमें अन्तर्विष्ट करना वांछनीय है जिससे कि किसी ऐसी सम्भाव्यता को दूर किया जा सके कि सूक्ष्म संस्थागत दबाव अनुशासनिक मामलों में प्रभाव डाल सकता है और किसी अनौचित्य के प्रदर्शन को दूर किया जा सकता है, मेरी राय में सम्यक् प्रक्रिया का तब तक समाधान हो जाता है जब तक कि अन्वेषण में अनुशासनिक बोर्ड के किसी भी सदस्य को अथवा किसी मामला विशेष में अभियोजन के किसी सदस्य को शामिल नहीं किया गया है। अथवा उस मामले में निजी रूप से किसी रीति में उसे सम्मिलित नहीं किया गया है।

134. न्यायाधिपति डग्लस ने अपने विसम्मत दृष्टिकोण में एक भूतपूर्व मामले में से उद्धरण पेश किया था--

"हमारे विधिशास्त्र में कुछ सिद्धान्त सापेक्ष रूप से अपरिवर्तनीय रहे हैं इनमें से एक सिद्धान्त यह है कि जहां सरकारी कार्यवाही किसी व्यक्ति को गम्भीर पूर्वक रूप से क्षति पहुंचाती हो और कार्यवाही की युक्तियुक्तता, तथ्य सम्बन्धी निष्कर्षों पर निर्भर करती हो, वहां साक्ष्य जो कि सरकार के मामले को साबित करने के लिए प्रयुक्त किया गया है वह निश्चित रूप से व्यक्ति के सामने प्रकट किया जाना चाहिए ताकि उसे यह दर्शित करने का अवसर मिल सके कि यह सही नहीं है। जबकि यह दास्तावेजी साक्ष्य की दशा में महत्त्वपूर्ण है, यह वहां और भी अधिक महत्वपूर्ण है जहां कि साक्ष्य उन व्यक्तियों के साक्ष्य से मिलकर जुटाया गया हो चूंकि मनःशक्ति भ्रान्तिपूर्ण हो सकती है या जो कि वास्तव में शपथ में मिथ्या साक्ष्य दे सकते हैं या ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं जो कि द्वेष, दुर्भावना, असहनशीलता, प्रतिकूल विचार अथवा जलन से पिड़ीत व्यक्ति हो सकते हैं। बहस तथा प्रतिपरीक्षा की अपेक्षाओं में हमने इन संरक्षणों को औपचारिक रूप दिया है.....यह न्यायालय इस बारे में सतर्क रहा है कि कहीं इन अधिकारों का प्रवंचन न हो। इनमें न केवल दाण्डिक मामलों में ऐसे विचार प्रकट किए हैं .....बल्कि सभी प्रकार के मामलों में जहां प्रशासनिक तथा विनियामक कार्यवाहियों समीक्षाधीन थीं यही दृष्टिकोण अपनाया है। किसी

बन्दी को उस पर अभियोग लगाए जाने वालों के सामने लाने की इजाज़त दी जानी चाहिए या नहीं यह तथ्य निरीक्षण के बिना अथवा पुनर्विलोकन से रहित कारागार अनुशासनिक बोर्ड के विवेकाधिकार पर नहीं छोड़ दिया जाना चाहिए। इस परिणाम के लिए दो दलील प्रस्तुत की गई है वह यह है कि अभियोग लगाने वालों के विरूद्ध वहां निवास करने वाले बन्दियों द्वारा हिंसक संकट अति गम्भीर है और यह कि मात्र कारागार प्रशासक इस स्थिति में है कि वे प्रत्येक मामले में गोपनायता की आवश्यकता के महत्व को समझ सकें, दलील के रूप में पेश किया गया है। किन्तु सुनिश्चित रूप से यह कारागार प्रशासन की अनियंत्रित शक्ति ऐसी समस्या है कि सम्यक् प्रक्रिया सम्बन्धी रक्षोपाय उसका उपचार करने के लिए अपेक्षित हैं। न केवल न्यायिक पुनर्विलोकन का सिद्धान्त बल्कि अमरीकी सरकार की सम्पूर्ण स्कीम अत्यावश्यक स्वाधीनताओं पर किसी ऐसी अनियंत्रित तथा असंतुलित शक्ति पर किसी संस्थागत **अविश्वास** को परिलक्षित करती है। ऐसा अविश्वास घातक क्रयशीलता अथवा सत्तारूढ़ व्यक्तियों की ओर से निर्योग्यता पर निर्भर नहीं करते.....।"

135. प्रतिपरीक्षा के अधिकार के पूर्ण विस्तार पर विचार करते हुए विद्वान् न्यायाधीश ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि कारागारों के अन्तर्गत उचित प्रक्रिया पुर्नवासात्मक कार्यक्रम का एक सफल भाग है और यह मत व्यक्त किया--

'उद्देश्य बंदियों को एक समाज के रूप में एकत्रित करना है जहां कि मनुष्यों के बारे में यह विचार किया जाता है कि उनसे सरकार द्वारा उचित व्यवहार किया जाता है न कि मनमाने रूप से। इसके विरुद्ध प्रक्रिया अनुपयोगी होगा। सुधार मानव शक्ति तथा प्रशिक्षण पर संयुक्त आयोग के लिए तैयार की गई एक रिपोर्ट में यह कहा गया है कि पुनः आविर्भाव में आधारभूत बाधा यह है कि कैदी को ऐसा दर्जा दिया जाता है मानों कि वह मनुष्य नहीं है और जेलर को सर्वोच्च महाराजधिराज समझा जाता है। इस रुकावट को दूर करने के लिए विधिक नाति ऐसे नियमों को अपनाना है.....जिनके द्वारा बंदियों की सहायता गरिमा और जिम्मेदारी को अधिकतम रूप दिया जा सके। यदि विशिष्ट रूप से विधि के यह आवश्यक है कि उन अधिष्ठायी तथा प्रक्रिया सम्बन्धी दावों का लिए प्रत्युत्तर दे जिन्हें प्रस्तुत करें।....."

136. इन विनिश्चयों का सार यह है कि बंदियों को राज्य का कोई स्थायी पास नहीं है और वह एकान्त परिरोध में दण्डादिष्ट किए जाने से पूर्व विधि की उचित प्रक्रिया का हकदार है। यूनाइटिड स्टेट्स के न्यायाधीश ने सामान्य रूप से जेल प्रशासन में मनमाने अथवा सनकी प्रशासन को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है—

> "हम मनमानी के विरुद्ध ऐसे मूलभूत रक्षोपायों के अभाव को आसानी से माफ नहीं करेंगे जैसे कि यथायोग्य नोटिस दिया जाना, बंदियों के विरुद्ध जिन आरोपों को लगाया गया हो, उनके उत्तर के लिए अवसर दिया जाना तथा सारवान् प्रशासन में युक्तियुक्त रूप से अन्वेषण किया जाना।"

137. उसी मामले में न्यायाधीश फैनबर्ग के एक संदर्भ के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है —

> "आरवेलिया के इस युग में ऐसे दण्ड जिसका अन्त पागलपन है और जो मात्र शारीरिक क्षति पहुंचाने से कम नहीं है, संविधान द्वारा प्रतिषिद्ध किया गया है। वास्तव में हमें यह जानकर बहुत दुःख हुआ है कि पिछले कुछ दशकों में वास्तविक मानवता द्वारा मात्र शरीर को विनष्ट करने की बजाय मस्तिष्क को विनष्ट किया गया है। बहुमत की राय द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है कि अन्ततः सोस्त्रे एकान्तवास से किसी भी समय रिहाई प्राप्त कर सकता था यदि वह नियमों का पालन करने के लिए तथा सहयोग देने के लिए राजी हो जाता है। संभवतः ऐसा ही है किन्तु इससे विषय बदल नहीं जाता·····अन्ततः एकान्त परिरोध की संभाव्यता अभी भी बनी हुई है जब तक कि बन्दी हार मान नहीं लेता। यदि सोस्त्रे को तब तक यंत्रणा दी जा सकती थी जब तक कि इस प्रकार हार नहीं मान लेता तो ऐसा ही संप्रेक्षण किया जा सकता था किन्तु कोई भी इस बारे में दलील नहीं देगा कि यंत्रणा अनुज्ञात की गई है। मुद्दा यह है कि हार मान लेने के लिए प्रयुक्त साक्ष्य सांविधानिक होना चाहिए और स्वीकार्य होना चाहिए तथा वस्तुतः अन्त में एकान्तवास की धमकी जो कि पागल बना देने के लिए खतरनाक साबित हो सकती है, सांविधानिक अथवा स्वीकार्य नहीं है। (अधोरेखांकन हमने किया है)

138. संयुक्त राज्य अमेरिका के निम्नतर स्तर के इस प्रकार के बहुत

से विनिश्चय, काउन्सेल द्वारा हमारे ध्यान में लाए गए हैं जिससे कि उन्होंने यह कोशिश की है कि सांविधानिक दृष्टिकोण से कानून परिरोध को विधिमान्य अथवा अविधिमान्य बनाया जा सके। जब तक कि सांविधानिकता के बारे में प्रत्यास्थान न करना हो, हमें इस प्रश्न पर विचार करने की सर्वथा कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि एकान्त परिरोध के सूक्ष्म पहलुओं को समझने के लिए मैं कुछ उद्धृत मामलों के प्रति निर्देश करूंगा। न्यायालय बंदियों तथा जेल में बंदियों की भावना तथा उसकी बुद्धिमत्ता की भावना को विनिर्दिष्ट करने के लिए तथा उसकी बुद्धिमत्ता को नीचा दिखाने के लिए बंदी और बंदी कारागार की पद्धति के बीच एक दीवार है। हम यह इसलिए नहीं कह रहे हैं कि अष्टम संशोधन जैसा संशोधन किया जा रहा है बल्कि इस लिए कि अयुक्तियुक्त निर्बन्धन तथा मनमानी प्रवंचना भाग 3 के लिए हानिकारक हैं, विशेष रूप से अनुच्छेद 14 और 19 के लिए और यह भी कारागार की पृष्ठभूमि में।

139. यदि कोठरी के अन्तर्गत शालीनता की मूलभूत धारणा विद्यमान नहीं है तथा ऐसी क्रूर अवस्थाएं और अपमानजनक परिस्थितियां छाई हुई हैं जो कि मानविक गरिमा के सभ्य मानकों को हिला हैं जैसा कि **हैनोक** बनाम **ऊवरी** के मामले में न्यायालय ने बताया था। तो यह सहज निवेदन है 'कि ऐसे असाध्य मनुष्यों से व्यवहार करने की पद्धतियों के बारे में अवधारण राज्य कारागार के अन्तरिक प्रबन्ध का एक विषय है और उसे कारागार प्रशासन के विवेकाधिकार पर छोड़ दिया जाना चाहिए.....' अमान्य है कारागार को रखने के उद्देश्य, विशेष रूप से यदि वह मात्र सुरक्षा बनाए रखने नंगे फर्शों के एकान्त की उत्तेजित करने वाली शर्तों में कैदी को निवास करने के लिए अपेक्षित किए बिना नहीं प्राप्त किये जा सकते हैं।

140. कृत्यों की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि न्यायालय को कारागार की पद्धतियों में सुधार लाने को निश्चित ध्यान में रखना है और इस पद्धति में सांविधानिक जागरूकता लाना है—

> "कारागार सुधार का चिन्ता न्यायालयों के लिए कितनी वैवश्यक है कि वे कारागार में डाले गए व्यक्तियों के सांविधानिक अधिकारों को संरक्षित करने की अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने से इनकार नहीं कर सकते हैं। ऐसा संरक्षण उपलभ्य करना इस बात की मांग करता है कि न्यायालय पद्धतियों को केवल अविधिमान्य

बनाने की बजाए कुछ और भी कर सकते हैं यह मांग की गई है कि वे समस्त रूप से कारागार की अवस्था पर ध्यान दें। यदि अवस्था को सामूहिक रूप से देखा जाए और जनतंत्रात्मक आदर्श का विश्लेषण किया जाए तो ऐसी देख-रेख का ढांचा प्रस्तुत किया जाएगा।"

"इसके अलावा कारागार के अधिकारी न्यायिक हस्तक्षेप को भी स्वीकृत करें क्योंकि इससे निहित सुधारों का सूत्रपात दृष्टिगोचर होगा, जो कि राजनीतिक तथा विधायी दृष्टि से कीमती है। अध्ययनों से यह पता चला है कि सामूहिक अवस्थाओं का एक उपांग यह है कि वे जनता तथा कारागार अधिकारी दोनों को कारागार सुधार के लिए आवश्यकता के प्रति संवेदनशील होते है। परिणामस्वरूप प्रगतिशील कारागार प्राधिकारी तथा मानविक न्यायालयों के समूह इस संवेदनशीलता का लाभ उठा सकते हैं और सुधार कर सकते हैं।"[1]

प्रजातंत्र के लिए मध्यक्षेपी नागरिक ने भावावेश के साथ किन्तु निष्पक्ष रूप से यह शिकायत की है कि तिहाड़ जेल में एक सौ से भी अधिक बंदी ऐसी अमानविक अवस्थाओं में रहते हैं। राज्य ने नागरिकों के बारे में प्रतिवाद किया है। किन्तु निवेदन पर प्रबलता का खण्डन नहीं किया है जो यह है कि बड़ी संख्या में विचाराधीन बन्दियों के शरीर दर्दनाक जंजीरों से पीड़ित हैं। 207 के मुकाबले में राज्य ने यह स्वीकार किया है —"कुल 93 बन्दी.....जंजीरों में जकड़े हुए हैं" इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि पिटीशनर के सिवाए सभी (सी) वर्ग के हैं अर्थात् ऐसे मनुष्य हैं जिनकी सामाजिक एवं आर्थिक दशा कमजोर है। केन्द्रीय कारागार के अधीक्षक का यह पक्षकथन है कि 20 जनवरी, 1970 को 41 बन्दियों की जंजीरें खोल दी गई थीं। इसी प्रकार 6 फरवरी, 1978 को 25 बन्दियों की जंजीरें हटा दी गई थीं। प्रतिशपथपत्र पर प्रवृत्ति यह है कि इस अधीक्षक ने कारागार में विद्यमान अवस्थाओं को सामान्य रूप में— देने में कुछ सुधारात्मक उपाय किए हैं। एक दूसरे के विरोधी कथनों के बीच विसंगतियां इसके सार को दूर नहीं करतीं कि अनुशासन बनाए रखने के लिए जंजीरों की पद्धति का अधीक्षक के कारागार में अधीक्षक की मानसिक स्थिति किंचित खतरनाक है। यदि

---

[1] हार्वर्ड सिविल राइटस—सिविल लिबर्टीज लॉ रिव्यू (खण्ड 12).

जेल के समुदाय को निश्चित रूप से जंजीरों द्वारा शासित किया जाना है तो हमारे कारागार स्थलों के अन्तर्गत अल्पमात्र न्याय है। कुछ राज्यों में विपत्तिकारक परिणामों के बिना जैसे कि केरल तथा तमिलनाडु में जंजीरों का उत्सादन उल्लेखनीय है।

141. अब हम सोबराज संबंधी तथ्यों पर विचार करेंगे। सोबराज 6 जुलाई, 1975 से अभिरक्षा में रहा है जब से कि वह विक्रम होटल में तीन अन्य अपराधी साथी, जो कि ब्रिटिश, आस्ट्रेलियाई और फ्रेंच के मूल निवासी थे, गिरफ्तार किया गया था। इन्टरपोल के अन्तर्गत उसके चरित्र लेखा प्रमाणपत्र में यह कथन किया गया है कि वह अत्यन्त भयंकर है और उसके कारनामों में जेल को तोड़कर भाग निकलना तथा गम्भीर अपराध आते हैं। हम इस तथ्य का केवल उल्लेख कर रहे हैं किन्तु इससे हम विफल नहीं होते क्योंकि उसके बारे में विवाद किया गया है कि हालांकि जेल अधिकारियों पर कड़े आरोप नहीं लगाए जा सकते यदि ऐसी जानकारी द्वारा उन पर प्रभाव पड़ता है। सोबराज की कहानी जुलाई 1976 में उसकी गिरफ्तारी से लेकर निरंतर तथा अनिश्चित अनुरोध का वृत्तान्त है जो कि भागतः आंतरिक सुरक्षा बनाए रखने के अधिनियम के अधीन है और इस समय हत्या सहित गंभीर आरोपों का सामना करने वाले विचाराधीन के रूप में है। बन्दियों ने उच्च न्यायालय में मनमाने रूप से ज़ंजीरों में जकड़े जाने की बाध्यता को चुनौती दी थी किन्तु संक्षेप में खारिज कर दिया गया था। इन धाराओं से शब्दों में आदेश वर्जित किए गए थे, वे इस प्रकार थे—

> "यह जेल में से प्रस्तुत किया गया एक पिटीशन है। तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पिटीशन कायम रखने योग्य नहीं है। इसे आरम्भतः खारिज किया जाता है। पिटीशनर को आदेश की सूचना दे दी गई है।"
>
> "व्यथित होकर सोबराज ने इस न्यायालय में समावेदन किया है।"

142. विचारण से पूर्व वाले वर्षों के कारावास के बिक्षुब्धकारी तथ्य के अलावा, जिस कष्टप्रद पहलू का पिटीशनर की ओर से डा० घटाटे द्वारा और मध्यक्षेपी के रूप में श्री तारकुण्डे द्वारा प्रदर्शित किया गया है वह यह है कि जब तक कि न्यायालय ने कुछ समय पूर्व बेड़ियों सम्बन्धी विनिधान की कठोरता में किंचित छूट नहीं दी थी सोबराज (और उसी प्रकार के कितने ही विनम्र पीड़ित व्यक्ति होंगे ?) को निरन्तर रूप से लगभग दो

वर्षों तक प्रतिमास के प्रत्येक दिन 24 घण्टे यन्त्रणापूर्ण बेड़ियों में बांधे रखा था, जबकि विधिशास्त्र की दृष्टि से यह उदार उपधारणा की जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति निर्दोष होता है और फिर भी उसे दुखःद विडम्बना का सामना करना पड़ा है। सोबराज ने कटु शब्दों में यह शिकायत की है कि हालांकि उसकी एड़ियों पर घाव हैं और तत्प्रतिकूल चिकित्सीय सलाह दी गई है उसे लगतार बेड़ियों में बांधे रखा गया है। राज्य ने कारागार अधिनियम की धारा 56 द्वारा कानूनी तौर पर बेड़ियों में अभिरक्षित रखने की दलील दी है और वास्तविक रूप से खतरनाक निदान के लिए निरोधक औषधि के रूप में जेल अधीक्षक के बुद्धिमत्तापूर्वक विवेक का प्रयोग किया है जिसकी देखरेख कारागार महानिरीक्षक द्वारा की गई है और जिसकी सुनवाई जेल के अधिकारियों द्वारा की जाती रही है। बेड़ियों की प्रक्रिया जिसका खण्डन काउन्सेल ने असहनीय बताया है, राज्य द्वारा असुविधाजनक वर्णित की गई है न कि अमानविक रूप से दोषपूर्ण न कि अनिवार्य, जहां कि बन्दी एक ऐसा व्यक्ति है जो खतरनाक प्रवृत्ति तथा निष्पत्तियों से युक्त है। यह स्वीकार किया गया है कि सोबराज को इसलिए बेड़ियों में रखा गया है ताकि हिंसा तथा उसके बच निकलने को निषिद्ध किया जा सके।

143. सोबराज के जेल जीवन के बेड़ियों सम्बन्धी अध्याय का पूर्ण वृत्तान्त दिए बिना उसकी दुःखद स्थिति की सराहना नहीं की जा सकती और न ही उसके सांविधानिक दावों का मूल्यांकन किया जा सकता है। 6 जुलाई, 1976 से लेकर वह बेड़ियों में बांध कर रखा गया है जिनमें कि सम्यक् रूप से टांके लगे हुए हैं और ये सब इन सभी महीनों में बना रहा है जिसमें कोई राहत नहीं दी गई और इसके अन्तर्गत निवारक निरोध तथा तत्पश्चात् समय भी आता है। पिटीशनर के शब्दों में बेड़ियों के बन्धन से उसे सर्वदा राहत नहीं दी गई थी हालांकि रेज़िडेण्ट चिकित्सा अधिकारी ने बन्दी की वृत्तान्तपर्णी में ऐसी प्रविष्टियां की हैं जो अपनी कहानी स्वयं कहती है —

"9-2-1977—दाएं टखने पर अनेक रोगाणुग्रस्त घाव। 15 दिन के लिए दाईं टांग से बेड़ियां उतार दी जाएं।

हस्ता०/- डा० मित्तल

आर० एम० ओ०

9-2-1977—चिकित्सीय सलाह पर 15 दिन के लिए दाईं टांग से बेड़ियां हटा दी गईं।

हस्ता०/- डा० मुखर्जी,
सहायक जेल अधीक्षक
हस्ता०/-डा० आन्धुर,
जेल उप-अधीक्षक

12-2-1977—बाएं पांव से भी चिकित्सीय सलाह पर बेड़ियां हटा दी जाएं।

हस्ता०/- डा० मरवाह
जेल उप-अधीक्षक
(प्रत्यर्थी संख्या 3)

18-2-1977—वह एक अति भयंकर तथा खतरनाक बन्दी है; अभिरक्षा के कारणवश यह आवश्यक है कि उसे बेड़ियों में रखा जाए। जहां तक उसके घावों का प्रश्न है उन पर मरहम पट्टी कर दी जाए।

(अधोरेखांकन हमने किया है)

हस्ता०/- डा० मरवाह
जेल उप-अधीक्षक
(प्रत्यर्थी संख्या 3)"

144. श्री मरवाह जो कि उस समय अधीक्षक थे, के प्रति शपथपत्र में एक आत्यंतिक स्थिति अपनाई गई है जिसके बारे में मुझे आशंका है। उदाहरणार्थ, उन्होंने यह प्रकथन किया है कि रेज़िडेण्ट चिकित्सा अधिकारी ने 3 सितम्बर, 1977 को पिटीशनर की परीक्षा की थी और उसके टखनों पर कोई घाव नहीं पाए थे। यह महत्वपूर्ण है कि 4 सितम्बर, 1977 को इसी अधीक्षक ने अपने जरनल में एक टिप्पण अभिलिखित किया है: "मुझे श्री एस० एस० लाल, सहायक अधीक्षक द्वारा सूचित किया गया था कि चार्ल्स सोबराज ने अपने टखनों पर जानबूझकर क्षतियां पहुंचाई हैं। मेरे मन में इस बारे में तनिक भी संदेह नहीं है कि उसने ऐसा इसलिए किया है क्योंकि उसे अपने रिट पिटीशन के सम्बन्ध में 6-9-1977 को भारत के उच्चतम न्यायालय के समक्ष पेश किया जाना है जहां कि उसने यह उल्लेख किया है कि उसके टखने क्षतिग्रस्त हैं और इसलिए उसकी बेड़ियां खोल दी जाएं।

145. यह साबित करने की कोशिश करने में कि बेड़ियां बांधने में विवेक तथा अविवेक से काम लिया गया था पिटीशनर ने दो परिस्थितियां वर्णित की हैं —

उसने यह प्रकथन किया है—

"इस बात का उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि निम्नलिखित गम्भीर मामलों में विचारणाधीन बन्दी, जो कि तिहाड़ जेल में परिरुद्ध थे, किन्हीं भी बेड़ियों से ग्रस्त नहीं थे —

(i) बड़ौदा डायनामाइट वाले मामले में सभी विचारणाधीन बन्दी जिनको भी आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने के अधिनियम के अधीन अवरुद्ध किया गया था ;

(ii) माननीय भारत के मुख्य न्यायाधिपति (श्री ए० एन० रे)पर किए गए आक्रमण के प्रयत्न में सभी अभियुक्त व्यक्ति ;

(iii) समस्तीपुर बम्ब विस्फोट वाले मामले में जिसमें कि भूतपूर्व रेल मन्त्री श्री एल० एन० मिश्रा की मृत्यु हो गई थी, सभी अभियुक्त व्यक्ति ;

(iv) विद्या जैन हत्याकाण्ड में सभी अभियुक्त व्यक्ति, तथा

(v) नई दिल्ली में हुए प्रसिद्ध बैंक वेन लूट वाले मामले में अभियुक्त सभी व्यक्ति।"

146. तिहाड़ जेल में दुष्प्रचलित बेड़ियों की तकनीक की आलोचना से सम्बन्धित कई अन्य प्रकार की परिस्थितियों से भी हो सकता है जो कि एक अतिरुच सुरक्षा जेल जो कि स्वतन्त्रता के पश्चात् निर्मित की गई थी (1958 में)।

147. पहली परिस्थिति यह है कि भारी संख्या में बन्दी जो कि किसी एक समय कुछ सैंकड़ों की संख्या में होते हैं—अवयस्क तथा विचारणाधीन बन्दी भी जिनके अन्तर्गत आते हैं—कई दिनों तथा महीनों भर दिन-रात बेड़ियों में जकड़े रहते हैं—जो कि सांस्कृतिक समवृत्ति को ध्यान में रखते हुए भारी आघात पहुंचाने वाली बात है। और इससे प्रथम दृष्टया किसी मतिमान समाजवादी को जेल के अन्याय की ए वर्ग सम्बन्धी प्रकृत्ति दर्शित होती है। व्यवहारी रूप से ये सभी बेड़ियों में बंधे प्राणी निर्धन व्यक्ति होते हैं। सोबराज एकमात्र ऐसा बी वर्ग का बन्दी है जो बेड़ियों में बंधा है, और अन्य सभी सी वर्ग के लोग हैं। यह एक निन्दात्मक परिस्थिति है किन्तु किसी

सम्प्रेक्षक को आवश्यक रूप से गांधी जी के भारत में हिंसात्मक दिखाई देती है कि यहां धनाढ्य व्यक्ति जातिवाद पद्धति में विद्यमान वर्ग न्याय का क्रय कर सकते हैं जब कि वे कारागार में भी होते हैं—निस्सन्देह ऐसा नियमानुसार किया जाता है । कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसका सामाजिक एवं आर्थिक स्तर उच्चतर हो बी वर्ग का बन्दी, विचारणाधीन व्यक्ति अथवा सिद्धदोष होता है । कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसकी आर्थिक स्थिति उस पंक्ति से निम्नतर है सी वर्ग का साधारण बन्दी होता है जिसे प्रायः मूल सुविधाओं से वंचित रखा जाता है और यदि वह सिद्धदोष व्यक्ति हो तो उसे कठिन परिश्रम करने के लिए बाध्य किया जाता है । समान व्यवहार की हमारी भावना को विपर्यस्त किए बिना निर्धनता को 'खतरनाक' नहीं माना जा सकता । इस बात का क्या कारण है कि सभी विचारणाधीन व्यक्ति जो कि सलाखों में बन्द हैं निर्धन व्यक्ति ही होते हैं ? सन्देहपूर्ण दृष्टि से, यह धनी व्यक्तियों के प्रति 'नम्र' न्याय का लक्षण है, न कि निर्धन व्यक्तियों के प्रति सामाजिक रूप से न्याय की प्रतिक्रिया ।

148. पिटीशनर ने कारागार के वातावरण का हिंसावत् चित्र चित्रित करने के लिए तथा जेल में विद्यमान स्वपान पद्धति के भयानक रवैये को दर्शित करने के लिए अतिरिक्त तथ्यों का अभिवचन किया है । उदाहरणार्थ यदि मैं उसके शपथपत्र के अंशों को उद्धृत करूं तो निम्नलिखित उद्धरण दृश्यनीय है—

> "पंजाब जेल मैनुअल, जो कि 1898 में बनाया गया था, के पैरा 630 में अभी भी कोड़े लगाने का दण्ड विद्यमान है और पैरा 628 और 629 विधिमान्य हैं और जेल प्राधिकारी अपने विवेक के अनुसार उक्त कोड़े लगाने के नियम का प्रयोग करते आए हैं और वहां भी इस प्रकार के बन्दियों को लगभग प्रतिदिन पीटा जाता है और कभी-कभी तो पीटने से उनकी मृत्यु हो जाती है जैसे कि 1971 में एक मामला देखने में आया था किन्तु इसके आधार पर कोई दण्ड नहीं दिया गया था, सिवाय इस बात के कि एक वर्ष के लिए कुछ जेल अधिकारियों को निलम्बित कर दिया गया था ।"

149. उसके द्वारा कोड़ों की मारपीट और मृत्यु के प्रति निर्देश किया गया है जिस पर यहां विचार करना आवश्यक नहीं है । इस प्रकार जो भयंकर रेखाएं चित्रित की गई हैं वे कारागार नियम की बर्बरता पर

विस्फोटक टिप्पण के रूप में है, यदि उनमें से लेशमात्र लांछन भी सत्यापित हो जाता है। अभिकथिक तथ्यों का तनिक भाग भी यदि सही हो तो उससे यह भय अपेक्षित है कि तिहाड़ जेल की चारदीवारी के इर्दगिर्द हिटलरनुमा रूप से व्यक्तियों का दौर-दौरा है।

150. कारागार अधिकारियों के विरुद्ध सोबराज के आरापों के तथ्य तथा विधि सम्बन्धी पहलुओं के प्रति विरोध का संकेत पहले ही दिया जा चुका है।

151. ठीक इस प्रक्रम पर, मैं धारा 56 का परिशीलन करना चाहूंगा, जो कि ऐसी विधि है जिसका अवलम्ब सोबराज के इधर-उधर जाने की सीमित स्वाधीनता पर प्रतिबन्ध के रूप में लगाया गया है—

> "56. जब कभी अधीक्षक, किन्हीं बन्दियों की निरापद सुरक्षा के लिए (कारागार की दशा या बन्दियों के आचरण के प्रसंग में) यह आवश्यक समझे कि उन्हें बेड़ियां लगाकर परिरुद्ध रखना चाहिए तब वह ऐसे नियमों और अनुदेशों के अधीन रहते हुए, जो राज्य सरकार की मंजूरी से महानिरीक्षक द्वारा निर्धारित किए जाएं उन्हें इस प्रकार परिरोध में रख सकेगा।"

152. सोबराज वाले मामले में शीर्षों की विरचना करने से पूर्व यह कहना आवश्यक है कि प्रत्यर्थी ने कुछ स्वतन्त्रतापूर्व पंजाब की सरकारी कार्यवाहियों को अभिप्राप्त करने के प्रयत्न में विफल रहने के पश्चात्, जो कि अब पाकिस्तान के अभिलेखागार में है, यह स्वीकार किया कि इससे अधि-नियम की धारा 56 द्वारा यथा-अपेक्षित कारागार महा-निरीक्षक के अनुदेशों हेतु स्थानीय सरकार की मंजूरी के अस्तित्व को विधिमान्य नहीं बनाया जा सकता हालांकि ऐसा अनुदेश जेल मैनुअल में विद्यमान है। कोई अन्य बात जो कि न्यायिक सूचना को लाज़मा बनाती है उपलभ्य नहीं है और इसलिए इस नियम के बारे में यह दर्शित नहीं किया जा सकता कि वह विधिमान्य है। सोबराज की व्यथा यह है कि उसे लोहे का सलाखों में निरुद्ध रख के आघात पहुंचाया गया है। उसका कलाइयों पर ज़ंजीर है, उसके टखनों पर ज़ंजीर है और उन दोनों के बाच ज़ंजारों को प्रबल रूप से वैल्ड किया गया है जिससे कि भारी छः पौण्ड वज़न उसके हिलने-डुलने को रोकता है, उसकी निद्रा में खलल डालता है और समस्त समय उसे हानि पहुंचाता है जिससे कि उसका जीवन दूभर हो गया है। तथापि वह अभा ऐसी अवस्था में है कि उसके बारे में यह उपधारणा की जाती है कि वह निर्दोष है और न्यायिक

अभिरक्षा के अधीन है। इस आधारभूत तथ्य से कि सोबराज को जेल के अधाक्षक के एकमात्र विवेक के अनुसार वहां जंजीरों में जकड़ा गया है, इन्कार किया गया है और वह पिछले दो वर्षों से लेकर इस वेदना को सहन कर रहा है और उसे राहत मिलने की कोई आशा नहीं है सिवाय इस बात के कि कारागार के मुख्य अधिकारी के हृदय में ऐसा परिवर्तन आ जाए जो कि असम्भवप्राय है। राज्य की प्रतिरक्षा यह है कि जिन बन्दियों के बारे में अत्यधिक जोखिम होता है, चाहे वे विचारणाधीन बन्दी ही क्यों न हों, उन्हें इस बात की कोशिश करने नहीं दी जा सकती कि वे निकल भागें और जहां परिस्थितियां न्यायोचित ठहराती हों वहां कोई ऐसा उपाय जो निश्चित परिणाम की ओर ले जाने वाला हो, जिसके अन्तर्गत बेड़ियों का बन्धन भी आता है, अवैध रूप से अनुज्ञेय है। यह बहस की गई है कि कारागार कोई खेल का मैदान नहीं है और सलाखों के बारे में अति संवेदनशील प्रतिक्रिया व्यावहारिक रूप से मूर्खता है, यदि हम इस बात को महसूस करें कि अभिरक्षात्मक सुरक्षा कारागार के लिए अत्यन्त पूर्विक्ता है। यदि खतरनाक व्यक्तियों को न्याय का उत्तर देने के लिए पेश किया जाना है तो यह आवश्यक है वे अनिश्चित समय तक परिरुद्ध रहें भले ही यह दर्दनाक रूप से असुविधापूर्वक हो—दण्डात्मक रूप से अधिरोपित न किया गया हो बल्कि अवरोधक रूप से थोपा गया हो—जब तक कि खतरा बना रहता है।

अधिकार और वास्तविकताएं

153. जंजारों में जकड़ा हुआ सोबराज मनुष्यमात्र के लिए सांविधानिक अधिकारों की मांग करता है। कारण यह है कि उसी कारागार में उस जैसे विचारणाधीन व्यक्ति, निर्वन लोग और अवयस्क भी रहते हैं। यह अभिकथन किया गया गया है कि शासकीय जरनल में जंजीरों से जकड़ने के लिए आदेश देने हेतु जेल अधीक्षक के निमित्त एक सक्षिप्त कारण अभिलिखित है और यह एक खतरनाक कारण अंग्रेजी न जानने वाले (मुख्यत:) सी वर्ग के बन्दियों की वृतांत पर्णियों में अंग्रेजी में अभिलिखित किए गए हैं। यह जादू नियम के सूत्र तथा जेल निरीक्षकों की परेड के अनुसरण में है। यदि कारागार के महा-निरीक्षक को दया आ जाए और जेल के अनुशासन की तकनीक के रूप में भावना को दलित करने वाली युक्ति व्याप्त हो जाए तो वह उसमें पुनरीक्षण कर सकता है। साधारणतया, ऐसा नहीं होता, चीख-पुकार की कदाचित ही सुनवाई होती है, संसार तन्द्रा में विलीन रहता है,

संविधान और न्यायालय उदात्त रूप से मानव अधिकारों को कायम रखते हैं किन्तु कोठरियों में सड़ने वाले व्यक्ति बिना किसी सुनवाई के न्याय के वास्ते चीख-पुकार करते रहते हैं।

154. नैनीताल के कारागार में श्री नेहरू द्वारा लिखित शब्दों के परिशीलन उत्तेजित करने वाले हैं और वे किसी भी भारतीय कारागार का खाका खींचते हैं जो कि उस समय विद्यमान था —

> "अनेक वर्षों तक आजीवन कारावास भुगतने वाले ये व्यक्ति किसी बच्चे अथवा स्त्री को ही नहीं बल्कि किसी पशु तक को नहीं देख पाते। बाह्य संसार के साथ उनका सम्पर्क पूर्ण रूप से टूट जाता है और मानविक सम्पर्क समाप्त हो जाता है। वे सोच-विचार करते-करते भय के क्रुद्ध विचारों में डूब जाते हैं और बदला लेने तथा घृणा की भावना में तालीन हो जाते हैं; वे संसार की अच्छी बातों को भूल जाते हैं उसकी सहृदयता तथा प्रसन्नता को विस्मृत कर देते हैं और मात्र दूषित विचारों में डूबे रहते हैं जब तक कि क्रमिक रूप से घृणा भी अपनी कठोरता को विनष्ट कर देती है और जीवन एक निष्प्राण वस्तु का रूप धारण कर लेती है तथा मशीन की तरह दैनिक क्रिया अपना लेती है। स्वचालित यन्त्रों की तरह वे अपने दिनों को ठीक ऐसे ही गुजारते हैं जैसे कि सभी दिन एक समान हों और उनमें संवेदनशीलताएं नाममात्र को भी नहीं रह जातीं, सिवाय एक के अर्थात् भय के। समय-समय पर बन्दी के शरीर को तोला और मापा जाता है। किन्तु भला मस्तिष्क कोई कैसे तोल सकता है और भावना का आभास कैसे कर सकता है जो कि शिथिल पड़ जाते हैं और संकीर्ण रूप धारण कर लेते हैं और इस भयंकर दबाव के वातावरण में मुरझा जाते हैं? लोग मृत्यु दण्डादेश के विरुद्ध दलीलें देते हैं और मुझे उनकी दलीलें प्रभावशील प्रतीत होती हैं। किन्तु जब मैं कारागार में बिताए गए जीवन की दीर्घकालीन वेदना को देखता हूं तो मैं यह महसूस करता हूं कि वह शास्ति कदाचित बेहतर है बजाय इसके कि किसी व्यक्ति को धीरे-धीरे तथा एक-एक अंग को पंगु बनाते हुए मृत्यु के घाट उतार दिया जाए। एक बार एक आजीवन कारावास से दण्डादिष्ट व्यक्ति मेरे पास आया और उसने मुझसे पूछा "हम आजीवन कारावास से पीड़ित व्यक्तियों का क्या होगा? क्या स्वराज हमें इस नर्क में से निकाल पाएगा?"

155. विधि की बड़ी-बड़ी समस्याएं जीवन का गम्भीर कठोर रूप है और उन दोनों का समाधान मुद्रित अधिनियमितियों के शाब्दिक अनुदेश द्वारा नहीं किया जा सकता बल्कि मनुष्य मात्र के विस्तब्ध, दुःखद प्रवाह को निर्वचनात्मक रूप से संवेदनशील बना कर किया जा सकता है।

156. जेल सम्बन्धी विधिशास्त्र का मानविक तन्तु जो निरंतर प्रचलित है वह यह है कि कोई भी कारागार प्राधिकारी असांविधानिकता के प्रति क्षमा किए जाने का भागी नहीं है और मूल अधिकारों का जबरन परित्याग हमारी पद्धति में एक संस्थागत अन्याय है जहां कि पत्थर की दीवारों और लोहे की सलाखों को विधि के नियम के समक्ष झुकना होगा। चूंकि जीवन और स्वाधीनता जोखिमपूर्ण है इसलिए जेल मैनुअल के पुरातन राज्य को मूल अधिकारों की सार्वभौमिकता के साथ सामंजस्य स्थापित करना होगा।

157. इस दृष्टिकोण के साथ एक मूल्यवान पाद टिप्पण संलग्न किया जा सकता है यदि हम इस बात को स्मरण रखें कि महात्मा गांधी ने किस प्रकार कारागारों को सामाजिक अस्पताल के रूप में माना था और प्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई ने जब कि वे बहुत समय पहले 1952 में मुम्बई के गृहमन्त्री थे, कारागारों के महानिरीक्षकों के सम्मेलन में यह बताया था —

> "किसी बन्दी को मात्र बन्दी के रूप में समझना पर्याप्त नहीं है...मेरे विचार में बन्दी अवमान का विषय नहीं है। चाहे आप किसी व्यक्ति को निकृष्ट अपराधी क्यों न समझें वह अन्ततः एक ऐसा मनुष्य है जो कि किसी अन्य कारागार से बाहर रहने वाले व्यक्ति के समरूप अच्छा या बुरा है। बन्दियों के साथ व्यवहार करने के लिए चाहे आप कैसे ही उपचार क्यों न ढूंढ निकालें, जब तक कि आपकी प्रवृत्ति में परिवर्तन नहीं आ जाता है और आप यह समझते हैं कि कारागारों के अन्तर्गत रहने वाले बन्दी वस्तुतः ऐसे मानव हैं जो कि ऐसा आत्म-सम्मान रखते हैं जैसे कि आप, तो आप जो कुछ भी करें उसमें बहादुरी नहीं होगी क्योंकि आप उन पर केवल ऐसा प्रभाव डालेंगे जैसा कि आप उनसे आदर प्राप्त करते हैं और साथ-साथ ही उनकी भावना भी आपके लिए उतनी ही अच्छी होगी और ऐसा तब

तक नहीं हो सकता जब तक कि आप उनके साथ समान रूप से व्यवहार नहीं करते……"[1]

158. महा अपर सालीसिटर ने जो समस्या सामने रखी है उसे हल करने के लिए यह आवश्यक है कि अभिरक्षात्मक सुरक्षा तथा कारागार मानवता के दावों को संसृष्ट रूप से समझा जाए। यदि हम सुरक्षा के प्रति नम्र हो जाते हैं तो जेल से भाग निकलने की घटनाएं बढ़ जाएगी; इसलिए यह निवेदन किया गया है कि हथियारों का प्रयोग करते हुए कठोर रहना चाहिए। डायरलिस्ट की स्मृतियों को ध्यान में रखते हुए और हाल की घटनाओं को देखते हुए सुरक्षा को प्रथम तथा अन्तिम स्थान दिया जाना चाहिए एक ऐसी दलील है जो जानी-मानी है तथा भयभीत करने वाली है। निःसहाय बन्दियों पर शासकीय हिंसा के आवरण के रूप में 'भेड़िया आ गया है' चिल्लाना एक कायर रीति है। यदि प्रत्येक विचारणाधीन व्यक्ति अथवा सिद्धदोष व्यक्ति को सम्भवतः खतरनाक पागल के रूप में चित्रित किया जाए तो सभी बन्दियों को जंजीरों में जकड़ना, कुछ का अंग-विच्छेदन करना, कुछ को सलाखों में बन्द कर देना सम्पूर्ण रूप से धोखा देना होगा। यदि इस बात को मानकर चला जाए कि यह सम्भाव्य है कि कुछ व्यक्ति भाग निकलेंगे तो क्या सैकड़ों कैदियों को गोली मार देंगे अथवा प्रत्येक बन्दी को प्रतिदिन कोड़े मारेंगे या सभी संदिग्ध व्यक्तियों को जंजीरों में जकड़ देंगे और वह केवल इसलिए कि कहीं कोई एक कैदी कारागार से भाग न जाए। हमारी मानव व्यवस्था में अन्धाधुन्ध रूप से आशंकाएं धारण करने का कोई मूल्य नहीं है यदि सांविधानिक क्रिया में अनुच्छेद 14, 19 और 21 मुख्य पात्र हैं। हम ऐसी दलीलों को स्वीकार नहीं करते जिनके द्वारा जोखिमपूर्ण हाथों में निस्सीम शक्ति सौंप कर न्यायालयों में भगदड़ मचा दी जाए जबकि तुरन्त, निष्पक्ष नियन्त्रण के लिए कोई विश्वसनीय तन्त्र विद्यमान न हो। गम्भीर सन्तुलन, वास्तविक पद्धति जिसके साथ दुष्प्रयोगों के प्रति संकेत किया गया हो और सभी मानव अधिकारों के प्रति आशंसा व्यक्त की गई हो, केवल यही सांविधानिक उपबन्धों की पूर्ति कर सकता है।

159. धारा 56 का निर्वचन करते समय कारागार के अन्तर्गत व्यवस्था, अनुशासन और सुरक्षा पर अत्यधिक जोर देने का गम्भीर खतरा यह है कि इससे अनजाने में पूर्वकल्पित इकतरफा अर्थ निकलता है :—

---

1 इण्डियन करैक्शनल जरनल, खण्ड 1 संख्या 2, जुलाई 1957, पृष्ठ 225.

1. "किसी पूर्वकल्पित भाव के अनुकूल बनाने के लिए अथवा अपने आपको उचित प्रतीत होने वाले मत अथवा सिद्धान्त की पूर्वकल्पित भावना से सामंजस्य स्थापित करने के लिए अचेतन अथवा अर्धचेतन रूप में तथ्य और शब्द एवं भाव को आकर्षित करना भारतीय तर्कशास्त्रियों द्वारा एक अत्यन्त उपयोग क्रान्ति का स्रोत माना गया है; और यह सम्भवतया एक ऐसा स्रोत है जो कि सर्वाधिक विवेकी, चिन्तनशील व्यक्ति द्वारा भी नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि मानविक युक्ति इस पर्यवेक्षण में स्वयं अपने-आप पर सदैव खोज करने में असमर्थ है; इसकी प्रकृति यह है कि किसी आंशिक निष्कर्ष, भाव, सिद्धान्त को अभिगृहीत कर लिया जाए, उसका पक्षपात किया जाए और समग्र सत्य के रूप में इसे प्रयुक्त किया जाए तथा स्वयं अपने-आप पर सन्देह करने की अनन्त कला इसमें विद्यमान है जिससे कि इसकी संक्रियाओं में इस आवश्यक तथा यथेष्ट कमज़ोरी की खोज करने से बचा जा सके।"

160. न्यायाधीशों को चाहिए कि वे इस सम्भाव्यता के विरुद्ध सतर्क रहें क्योंकि जीवन तथा स्वाधीनता को प्रभावित करने की विवेकशील शक्ति के प्रयोग में राष्ट्र का विश्वास आत्यंतिक रूप से डगमगा गया है विशेष रूप से जबकि न्यायालय ने विश्वास करते हुए इसे कार्यपालिका को सौंप दिया हो। कारागार एक ध्वनिरुद्ध नक्षत्र है जिस पर कि दृष्टिपात करना ऊंचा दीवारों के कारण सम्भव नहीं है और इसमें आना-जाना विनियमित होता है और इसलिए बन्दियों के अधिकार कदाचित ही दृष्टिगोचर होते हैं, देखरेख करना अधिक कठिन है और शक्ति के आधार की शासकीय स्थिति लेशमात्र को विश्वसनीयता प्रदान करती है जहां कि दोषारोप्य व्यक्ति राजनीतिक विरोधी, अलोकप्रिय व्यक्ति, अल्पसंख्यक वर्ग का बीड़ा उठाने वाले अथवा कलाविहीन व्यक्ति होते हैं जो कि छोटे–मोटे जेलरों की उद्धृत शक्ति को प्रसन्नता प्रदान करने में विफल रहते हैं।

161. विद्वान अपर महा सालीसिटर ने हमारे विचारार्थ अविधिमान्यकरण के मुकाबले में निर्वाचन की प्रक्रिया द्वारा धारा 56 में विवक्षित क्रूर निर्योग्यता को न्यायिक रीति से नम्र बनाने की सिफारिश की है। हम इससे सहमत हैं और इस बात पर विचार करेंगे कि क्या धारा 56 ऐसी नम्रता के योग्य है। आक्षेपित उपबन्ध निम्नलिखित है --

---

1 श्री अरविन्द : एसेज आन दि गीता, पृष्ठ 37.

"जब कभी अधीक्षक, किन्हीं बन्दियों की निरापद सुरक्षा के लिए (कारागार की दशा या बन्दियों के आचरण के प्रसंग में) यह आवश्यक समझे कि उन्हें बेड़ियां लगाकर परिरुद्ध रखना चाहिए तब वह ऐसे नियमों और अनुदेशों के अधीन रहते हुए, जो राज्य सरकार की मंजूरी से महानिरीक्षक द्वारा निर्धारित किए जाएं, उन्हें इस प्रकार परिरोध में रख सकेगा।"

162. यहां सुसंगत नियमों के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है। "सलाखों में परिरोध" (कनफाइनमैण्ट इन आएरन) शीर्षक के अधीन एक समस्त नियम समूह में इस विषय पर चर्चा की गई है। अधिक सुसंगत नियम 423, 428, 432, 433 और 435 हैं। इन नियमों में केवल यह उपबन्ध किया गया है कि जंजीरें किस प्रकार बांधी जाती हैं, उनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, बन्दियों की कोटि तथा अवस्थाओं का विनिर्देश किया गया है जिनसे जंजीरें पहनने की अपेक्षा की जा सकती है, उनकी चिकित्सा परीक्षा सम्बन्धी निदेश दिया गया हैं, बेड़ियां उतारने और इस प्रकार से अन्य उपबन्ध विद्यमान हैं।

163. इसके अलावा ऐसे उपबन्ध भी मौजूद हैं जिनमें ऐसी स्थितियों को विनिर्दिष्ट किया गया है जिनमें कि साधारणतया बंन्दियों को बेड़ियों से मुक्त किया जाता है और साधारणतया तथा अपने जरनल में अधीक्षक द्वारा अभिलिखित किए जाने वाले विशेष कारणों के बिना किसी असिद्धदोष दाण्डिक बन्दी को बेड़ियां नहीं पहनाई जाएंगी (देखिए नियम 430)। सोबराज अभी सिद्धदोष व्यक्ति नहीं है। जहां तक अन्य कोटियों का सम्बन्ध है जो कि इस प्रकार मुक्त हैं उनके बारे में हमें यहां वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। भ्रान्ति को दूर करने के लिए यह कथन करना उचित होगा कि उन नियमों तथा अनुदेशों में कोई विधिक बल नहीं है क्योंकि शक्ति के स्रोत के रूप में धारा 56 के अन्तर्गत स्थानीय सरकार की मंजूरी हेतु उनकी विधिमान्यता वांछित है। ऐसी मंजूरी को ढूंढ निकालने के लिए भरसक प्रयत्न करने के पश्चात् अपर महासालीसिटर इस पुरोभाव्य शर्त को पूरा करने में असफल रहें। चूंकि मंजूरी का अभाव था इसलिए ये अनुदेश मात्र ऐसी प्रक्रिया के रूप में हैं जो कि स्वयं प्रस्तुत की गई है और वे अनुच्छेद 21 के अधीन अभिज्ञात किए जाने के लिए अर्ह नहीं हो सकते। इन अर्थों में धारा 56 नग्न अवस्था में है और संक्षिप्तता मात्र की व्याप्त शब्दावली की सांविधानिक रूप से परख की जाना आवश्यक है।

164. अन्यथा भी नियम केवल वहां तक लागू होते हैं जहां तक कि अधिनियम अनुज्ञात करता है क्योंकि धारा अपने स्रोत से ऊपर उभर नहीं सकती है। इसलिए धारा 56 की निकट से संवीक्षा करना आवश्यक है। बेड़ियों में परिरुद्ध किए जाने के लिए अनुज्ञात करना बन्दियों की सुरक्षित अभिरक्षा हेतु होता है। अतः अनिवार्य शर्त सुरक्षा की उस हद तक विद्यमान है जहां तक कि बेड़ियों से बन्धित करना लाज़मी हो। सुरक्षित अभिरक्षा केवल तभी खतरे में पड़ती है जहां कि बन्दी की भाग निकलने की सम्भाव्यता विद्यमान हो। इस प्रकार भाग निकलना केवल वहां स्पष्ट और वर्तमान खतरा होता है जहां कि बन्दी ने पूर्वोदाहरणों द्वारा भाग निकलने संबंधी आसन्न यत्न दर्शित किया हो। बन्दी की हिंसामात्र या उसका दुर्व्यवहार अथवा अन्य कदाचार जिसका कि सुरक्षित अभिरक्षा से कोई सम्बन्ध न हो धारा 56 से सुसंगत नहीं है। मान लीजिए कि कोई बन्दी चिड़चिड़े स्वभाव, अशिष्ट अथवा समलिंग काम व्यक्ति (होमोसैक्सुयल) हो तो कारागार में उसकी सुरक्षित अभिरक्षा के बारे में कोई खतरा नहीं है। अभिरक्षा से असम्बद्ध दुर्व्यवहार ही ऐसी दशा में अन्तर्वलित है और सुधारात्मक उपचार इसका इलाज है। जब तक कि बन्दी की सुरक्षित अभिरक्षा के बारे में खतरा न हो तब तक धारा 56 लागू नहीं होती। ध्यान उसके निकल भागने पर दिया जाना चाहिए और हो सकता है कि उसने निमित्त प्रत्यक्ष तथा क्रूर रूप से प्रयत्न किया हो। किसी अन्य प्रकार की अव्यवस्था या दोष होने पर अनुशासनिक कार्यवाही की जा सकती है किन्तु धारा 56 कारागारों के अन्तर्गत सभी प्रशासनिक दुःखों के लिए गुप्त औषधि नहीं है।

165. धारा 56 की दूसरी अपेक्षा यह है कि अधीक्षक को चाहिए कि वह इस बात को आवश्यक समझे कि बन्दी को सुरक्षित अभिरक्षा हेतु ही बेड़ियों में रखा जाए। सुरक्षित अभिरक्षा के प्रति विनिर्दिष्ट निर्देश से न कि बन्दी के आचार-व्यवहार का अध्ययन अधीक्षक द्वारा किया जाना चाहिए और यदि वह सूझबूझ से इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि उस व्यक्ति को अभिरक्षा से भाग निकलने से निवारित करने के लिए बेड़ियों में रखना आवश्यक है तो वह धारा 56 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। किसी कार्यवाही को आवश्यक समझने के लिए प्राधिकारी को चाहिए कि वह बुद्धिमत्तापूर्वक देखरेख से काम ले, उस पर गम्भीरता से विचार करे और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कार्यवाही न केवल वांछनीय अथवा परामर्श योग्य है बल्कि आवश्यक तथा अपरिहार्य है। इससे न्यूनतर मानक अपनाने से यह

दर्शित होगा कि कानूनी आज्ञापक उपबन्ध पर पूरी तरह ध्यान नहीं दिया गया है ।

166. धारा 56 उप-अधीक्षक को इस बात के लिए सशक्त करती है कि वह किसी बन्दी को केवल अत्यधिक आवश्यकता की स्थितियों में ही बेड़ियों से बन्धित किया जाए और तत्पश्चात् अविलम्ब इसकी रिपोर्ट अधीक्षक को दे दी जाए । इससे जो प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह है कि केवल आत्यंतिक आवश्यकता का निष्कर्ष इस बात को न्यायोचित ठहरा सकता है कि उप-अधीक्षक शृंखलाबद्ध करने की शक्ति का प्रयोग करे और अधीक्षक को चाहिए कि वह इस शक्ति का प्रयोग करते समय धारा 58 की भावना को ध्यान में रखे । यह निरपेक्ष निष्कर्ष होना चाहिए और इसलिए निश्चित रूप से ठोस विषयों पर आधारित होना चाहिए जिसका कि मानविक न्याय की भावना से कार्य करते हुए समाधान हो जाएगा और यह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसे विधि का अनुदेश प्राप्त हो तथा जो ध्यानपूर्वक निदान का मूल्यांकन करे । जहां-तहां से उठाए विनिश्चय, विचित्र प्रभाव, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए निर्देश, सापेक्ष समाधान तथा सुआधारित तीव्रग्राहिता (एलर्जी) किसी विशिष्ट बन्दी के सम्बन्ध में अपर्याप्त हो सकती है । हमें यह याद रखना चाहिए कि हालांकि धारा 56 एक ऐसा अध्योपाय है जो संविधान से पूर्व निर्मित किया गया था इसे लागू किए जाने पर अनुच्छेद 14, 19 और 21 का अर्थबोध ध्यान में रखा जाए । जीवन और स्वाधीनता कीमती मूल्य है । मनमानी कार्यवाही जो यन्त्रणापूर्वक जीवित मनुष्य के शरीर पर आघात पहुंचाती है इतनी गम्भीर है कि उसका सामंजस्य अनुच्छेद 14 या 19 के साथ अथवा पर्याप्त सतर्कता के साथ नहीं किया जा सकता । कार्यपालक कार्यवाही में जो कुछ भी मनमाना है वह विभेद से सारग्राभी है और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है । इसी प्रकार जो कोई भी विनिश्चय अपर्याप्त प्रलक्ष्य का उत्पादन है या जिसमें अन्यथा योग्य सामग्री विद्यमान है अथवा जो स्पष्ट तथा वर्तमान खतरे के अनुमान की ओर नहीं ले सकता, अनुच्छेद 19 के अधीन अयुक्तियुक्त है, विशेष रूप से जब कि कारागार की दीवारों के पीछे निवास करने वाले निःसहाय व्यक्तियों की मानविक स्वतन्त्रता तात्विक विवाद्यक हो । अनुच्छेद 121, जैसा कि हमने बत्रा वाले मामले पर विचार करते समय स्पष्ट किया है, नैसर्गिक न्याय के विनिधानों का अनवर्तन करेगा (मेनका गान्धी वाला मामला देखिए) । आकस्मिक स्थिति में भी नैसर्गिक न्याय की मात्रा तथा गुणता के सम्बन्ध में करेगा । इस क्षेत्र में युक्तियुक्तता के अन्तर्गत कार्यपालक अधिकारी के कार्य का किंचित पुनर्विलोकन भी आता है जिससे कि पीड़ाग्रस्त

बन्दी का यह समाधान हो जाए कि किसी उच्चतर अधिकारी ने निष्पक्ष रूप से इस बात का समाधान कर लिया है कि उसे जंजीरों में बन्द रखा जाना चाहिए। ऐसा प्रशासनिक औचित्य सलाखों में जकड़े जाने के लिए प्रत्येक अभिरक्षा से संदिग्ध व्यक्ति से अनुपयोगी अपेक्षा करने की बजाय कारागार में कहीं अधिक व्यवस्था उत्पादक है। अदूरदर्शी अधीक्षक के लिए कारागार की अव्यवस्था एक ऐसी हानि है जो ऐसे बेतुके अनुशासन तथा हिंसात्मक प्रशासनात्मक संस्कृति से उद्भूत होती है।

167. **मारिसी** बनाम **ब्रूवर**[1] वाले मामले में न्यायाधिपति डगलस के मत से सांविधानिक पर्यवेक्षण को विचारधारा की दृष्टि से बल प्राप्त होता है।

> "समाज की स्थिरता में विधि का नियम महत्वपूर्ण है। पैरोलों के प्रतिसंहरण में मनमानी कार्यवाहियां केवल आधुनिक दण्ड विधि के पुनर्वासात्मक पहलुओं में रुकावट डाल सकती हैं या उनमें ह्रास कर सकती हैं। मामले की प्रकृति के लिए समुचित सुनवाई हेतु सूचना तथा अवसान सम्यक् प्रक्रिया के मूल तत्व हैं जिनसे यह आस्था स्थिर हो जाती है कि हमारा समाज अनेक व्यक्तियों के लिए है, न कि गिने चुने लोगों के लिए और यह कि सनक की बजाए उचित व्यवहार मनुष्यों के क्रियाकलाप को शासित करेगा।"

168. इस बारे में निर्णय करने की कि क्या सोबराज के जो बेड़ियां पहनाई गई हैं वे विधिक थीं हमें उस कालावधि पर विचार करना होगा जिसके लिए यह क्रूर प्रतिक्रिया लागू रखी जा रही है। ऐसे बन्दी भी जो कि आजीवन कारावास से पीड़ित थे, तीन मास से अधिक के लिए बेड़ियों में निरुद्ध नहीं रखे जाएंगे जब तक कि महा निरीक्षक की विशेष मंजूरी न हो (देखिए धारा 57)। इन नियमों में शृंखला के अभिज्ञात किए जाने का भयानक दृष्टिकोण अन्तर्विष्ट है।

169. बेड़ियों में परिरुद्ध करने की शक्ति केवल तभी सांविधानिक रूप धारण कर सकती है यदि उसे गंभीर निर्बन्धनों से किया गया हो। विवेकात्मक शक्ति के अनुसार विरचित होने पर संरक्षित तानाबाना होना चाहिए। जो कारागार की अभिरक्षा तथा कारागार की अखंडता में संतुलन स्थापित कर सके। यह सही है कि अधीक्षक ने धारा 56 द्वारा यह विवेक निहित किया

1 33 एल० एच० 434, 505.

गया है कि वह किसी बंदी को बेड़ियां पहनाने के लिए अपेक्षित कर सके। आवश्यकता की स्थिति में यह एक संकुचित शक्ति है। इसका प्रयोग अत्यन्त निर्बन्धन से किया जाना चाहिए। विवेकाधिकार का आधार तथ्यों के निरपेक्ष मूल्यांकन पर किया जाना चाहिए और स्वयं तथ्यों की सुसंगति संरक्षित अभिरक्षा के साथ होनी चाहिए। इस बात को प्रकाशमान रूप में देना होगा कि शृंखलाबद्ध करने के समादेश के अन्तर्गत मनुष्य के समस्त शरीर पर पूर्णतः हमला होता है, उसकी कैदी तथा गरिमा की भावना भी ह्रासयुक्त हो जाती है। अनुच्छेद 19 को ध्यान में रखते हुए इसकी विधिमान्यता को कायम रखने हेतु आनुकल्पिक प्रक्रिया द्वारा अनियंत्रित आकस्मिकताएं मात्र ऐसी स्थिति हैं जिनमें इस कठोर नियोग्यता को विहित किया जा सकता है। दूसरे, प्रक्रियागत युक्तियुक्तता को सनसनीखेज अभिवचनों का आश्रय लेकर विनष्ट किया जा सकता है जिन्हें यू० एस० सुप्रीम कोर्ट द्वारा चार्लस वुल्फ वाले मामले में रद्द कर दिया गया है।

170. ऐसी शक्ति अत्यन्त आवश्यक मामलों के सिवाए जिनमें कि अंधकारमय कारागार की स्थिति में ध्यान देना कठिन है, जहां कि सशस्त्र अभिरक्षक तुरन्त सूचना होने पर उपलभ्य होते हैं और देख रेख रखने वाले मीनार (वाच टॉवर्स) सतर्कता से असाधारण अचानक बलवा अथवा क्रान्ति के मामलों के सिवाए देखभाल करते हैं उनका प्रयोग केवल निष्पक्ष रीति में सूचना देकर और सुनवाई करके किया जा सकता है। हो सकता है कि केवल सुनवाई संक्षिप्ततम की जाए, हो सकता है कि आधारित संक्षिप्त हों हो सकता है कि मौखिक परीक्षा सदैव न की जाए तथापि नैसर्गिक न्याय के अत्यावश्यक रूप में ऐसे कारणों से अनुवर्तन किया जाना चाहिए जिनका स्पष्टीकरण हमने **गिल** और **मेनका गांधी वाले मामलों** में दिया था।

171. मैं इस बात को समझता हूं कि ऐसी कठोर कार्यवाही के लिए जैसे कि कथित है, कारण समनुदिष्ट किया जाना चाहिए और बन्दी के वृत्तान्त में पर्णी एवं प्रणाली में अभिलिखित किया जाना चाहिए। चूंकि कारणों का आशय यह है कि यदि पिटीशनर बाध्यता को तो वह अभिलेख पर आक्षेप करे इसलिए यह पिटीशनर की भाषा में या उसकी भाषा में न कि संरक्षा में होना चाहिए जैसा कि इस समय किया जा रहा है।

172. जब किसी असिद्धदोष बन्दी को हथकड़ी लगाई जाती है तो असाधारण अथवा अत्यावश्यक प्रकृति के विशेष कारण विद्यमान होने

आवश्यक हैं। ऐसे सारवान् कारणों को निश्चित रूप से अभिलिखित किया जाना चाहिए और उनकी प्रति बंदी को दी जानी चाहिए। नियम 430 में यह समादेश किया गया है कि ऐसा किया जाए अन्यथा भी विनिर्दिष्ट कारण देना (न कि साधारण कारण कथन करने) के प्रक्रियागत उपचार का दुष्कर निर्बन्धक प्रभाव पड़ता है और धारा 56 को यदि सांविधानिक विधिमान्यता दी जानी है तो वह युक्तियुक्तता के सूत्र पर निर्भर करती है।

173. नियम 432 की भावना तथा सार से यह स्पष्ट हो जाता है कि कारणों का अभिलेख आज्ञापक है और उसका भी कुछ कृत्य है। अधीक्षण के शपथपत्र में चाहे कुछ भी कहा गया है नियम 433 स्पष्ट रूप से यह दर्शित करता है कि बेड़ियां केवल संक्षिप्त कालावधि के लिए होना चाहिएं और बार-बार संवीक्षा की जानी चाहिए। हमारे दृष्टिकोण में, वस्तुतः दूरस्थ असाधारण स्थितियों के सिवाए किसी असिद्धदोष बन्दी को बेड़ियां पहनाने के लिए युक्तियुक्त न्यायौचित्य प्राप्त नहीं होता है सिवाए कारागार अधीक्षक और उसकी व्यवस्था करने में अक्षम हैं और अयुक्तियुक्तता के प्रति उपेक्षावान् हैं। खूंखार बंदियों और अलवा करने वाले गिरोहों के घाव बनाने वाली दलीलें हमारे सांविधानिक आधार को विनष्ट नहीं करती हैं विशेष रूप से जबकि भारत में हैं। ऐसे राज्य हैं जिन्होंने बेड़ियों के सम्बन्धी अनुशासनिक का परित्याग कर दिया है (तमिलनाडु केरल राज्य)।

174. नियम 435 का भावार्थ यह है कि ऐसे मामलों में भी जिनमें कि अभिरक्षा इस बात के लिए मजबूर करती हो कि बन्दी को जंजीरों में जकड़ा जाए ऐसा केवल कम-से-कम सम्भव समय के लिए होना चाहिए। यह तथ्य कि दण्ड के रूप में भी जंजीरों के प्रयोग को निर्बन्धित किया जाना चाहिए [देखिए धारा 46(7)] इस बात का तर्क प्रस्तुत करती है कि प्रतिषेदक जंजीरों का प्रयोग न्यूनतम समय के लिए किया जाना चाहिए। रात को, जबकि बन्दी कोठरी में होता है, इस बात का कोई विशेष कारण नहीं है कि यह आशंका या सम्भावना की जाए कि वह भाग निकलेगा। इसलिए रात्रि में हथकड़ियां लगाना और जंजीरें बांधना बेहूदा और प्रतिहिंसात्मक तथा विधि की दृष्टि से अभिशाप है।

175. बेड़ियों द्वारा बन्दी की स्वाधीनता का अतिक्रमण इतना गंभीर है कि उसे साधारण कह कर नहीं टाल दिया जाना चाहिए और सांविधानिक औचित्य के लिए प्रशासनिक प्रक्रिया के अन्तर्गत युक्तियुक्तता के आधारभूत

तत्व अन्तर्निहित किए जाने चाहिएं। जब जंजीरों में जकड़ा जाना प्रथम-दृष्टया आघात पहुंचाता हो तो निरपेक्षता को आधार बनाना आवश्यक है। इसलिए कोई बाह्य अभिकरण जैसे कि अधीक्षक से उच्चतर किसी अधिकारी अथवा बन्दीगृह विभाग से बाहर के किसी ऊंचे अधिकारी को जंजीरों में जकड़े जाने सम्बन्धी आदेश पर पुनर्विलोकन करने की शक्ति दी जानी चाहिए। नियम 423 में यह कहा गया है कि कारागृह के महा-निरीक्षक को उन परिस्थितियों की सूचना दी जानी चाहिए जिनके आधार पर हथकड़ियां लगाना और बेड़ियां पहनाना आवश्यक नहीं है। नियम 426 का भावार्थ भी ऐसा ही है। सामान्य रूप से यह कहना उचित है कि नियमों के सार में तथा धारा द्वारा जिस बात पर ज़ोर दिया गया है उसमें यह समादेश अन्तर्विष्ट है कि कारावास का महानिरीक्षक अविलम्ब, जैसा कि कम-से-कम 48 घण्टे के भीतर ऐसी सज़ा दी जाने की रिपोर्ट प्राप्त करेगा और इस बात पर विचार करेगा कि क्या यह न्यायोचित तथा आवश्यक है। वह इस बात के लिए भी तैयार होना चाहिए कि सम्बद्ध बन्दी से बेड़ियां पहनाए जाने के बारे में अपीलों के तौर पर परिवाद प्राप्त करे। कारावास महानिरीक्षक को अधीक्षक की कार्यवाही के विरुद्ध अपील अथवा पुनरीक्षण का अधिकार तथा पुनर्विलोकन के रूप में तुरन्त कार्यवाही इस उपबन्ध में विवक्षित है। यदि ऐसा करने में विलम्ब होता है तो सम्यक् ध्यान दिए जाने के अभाव के रूप में सद्भावपूर्वक पूर्विकता का लोप अनिवार्य है और आदेश की विधिमान्यता संकटापन्न है।

176. एक अन्य उपचार को भी व्यावहारिक होने के नाते परिलक्षित किया जा सकता है। जेलों का दौरा करने वाले व्यक्तियों के अन्तर्गत खण्ड के ज्येष्ठ कार्यपालक अधिकारी, सेशन न्यायाधीश तथा जिला मजिस्ट्रेट आते हैं (देखिये नियम 47)। यह साधारणतया एक अखिल भारतीय पद्धति है। शासकीय दौरे पर आने वाले अधिकारियों के कर्त्तव्यों के अन्तर्गत यह है कि उनका समाधान हो जाए कि कारागार अधिनियम, नियमों, विनियमों, आदेशों और निदेशों के उपबन्धों का सम्यक् रूप से पालन किया जा रहा है। निस्सन्देह धारा 56 तथा सम्बन्धित नियमों का पालन नियम 49 की परिधि के अन्तर्गत आता है। नियम 53 में यह कथन किया गया है कि दौरे पर आने वाले सभी अधिकारियों को जेल की अवस्था, उसके प्रबन्ध तथा उसमें परिरुद्ध प्रत्येक बन्दी को देखने का अवसर प्राप्त होगा। दौरे पर आने वाले अधिकारी, चाहे वे पदाधिकारी हो या गैर-पदाधिकारी, को इस बात की शक्ति प्राप्त होगी कि वे जेल के विलेखों को मंगा सकें और उनका निरीक्षण

कर सकें। नियम 53 तथा 53-क सारगर्भित उपबन्ध हैं। कानूनी विनिधानों को सांविधानिक रूप देने के लिए हम इन नियमों के समूह में मानविक प्रचुरता का परिशीलन करते हैं। उनके द्वारा दौरे पर आने वाले अधिकारियों तथा कारावास महानिरीक्षक का यह कर्त्तव्य बनता है कि वे बन्दियों को पहनाई गई बेड़ियों के विरुद्ध अपीलों अथवा परिवादी कि सुनवाई कर सके। इस निर्बन्धन की युक्तियुक्तता चूंकि सांविधानिक संकेत है इसलिए जिस एकमात्र रूप से हम अधिनियम की धारा 56 को कायम रख सकते हैं वह यह है कि उपबन्धों के व्यापक समूह के अन्तर्गत बाह्य निरीक्षण, तुरन्त पुनर्विलोकन तथा सलाखों में जकड़े जाने के समय को काट कर न्यूनतम बनाना विवक्षित है।

177. अपर महा सालिसिटर द्वारा लोहे की सलाखों के साथ संकटापन्न होने की जो किंचित दलीलें जोड़ी गई हैं अब उन पर विचार किया जाएगा।

178. विद्वान अपर महा सालिसिटर ने यह दलील दी कि अधीक्षक के विवेक के लिए एक अन्तर्निहित मार्गदर्शन प्रस्तुत किया गया है। पैरा 435 तथा धारा 56 में अभिव्यक्त सुरक्षा के विचारणीय विषय मनमानेपन तथा अयुक्तियुक्तता के दोष को दूर करते हैं। यह साबित करने के लिए पैरा 433 के प्रति निर्देश किया गया था कि केवल खतरनाक बन्दियों को ही इस रीति में शृंखलाबद्ध किया जाना चाहिए। हम इस तथ्य को नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकते कि किसी असिद्धदोष बन्दी के साथ भिन्न व्यवहार किया जाना चाहिए और इस प्रकार न्यायिक रूप से कारागार में डाले गये व्यक्ति को बंदी का नाम देना मिथ्या होगा। हमें असिद्धदोष तथा सिद्धदोष बन्दी के साथ भिन्न रूप से व्यवहार करने का प्रभेद परिलक्षित होता है (मैनुअल का पैरा 392 देखिये) यदि यह मान भी लिया जए कि पैरा 399 के अन्तर्गत अविवेक रीति उपबन्ध जिसमें खतरनाक बन्दी समाविष्ट हैं चाहे वे विचारणाधीन हो या सिद्धदोष किए गए हों उन्हें उक्त पैरा लागू होता है। तथापि हमें इन दोनों प्रवर्गों से भिन्न-भिन्न रीति में व्यवहार करना चाहिए। पैरा 399 (3) इस प्रकार है —

*"खतरनाक बन्दी की सुरक्षित अभिरक्षा के लिए चाहे वे विचारणाधीन हो अथवा सिद्धदोष किया जा चुका हो, विशेष

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"Special precautions should be taken for the safe custody of dangerous prisoners whether they are awaiting

पूर्वविधानियां बरती जानी चाहिएं। जेल में दाखिल किए जाने पर उन्हें (क) विश्वसनीय अभिरक्षकों के भार-साधन में रखा जाना चाहिए, (ख) सर्वाधिक उपलभ्य अभिरक्षायुक्त इमारत में परिरुद्ध किया जाना चाहिए, (ग) यथा व्यावहार्य रूप से, भिन्न-भिन्न बैरकों अथवा कोठरियों में प्रत्येक रात्रि परिरुद्ध किया जाना चाहिए, (घ) कम-से-कम दिन में दो बार और अनिश्चित समयों में कभी-कभार पूरी तरह से उनकी तलाशी ली जानी चाहिए (यह आवश्यक है कि उप-अधीक्षक उनकी तलाशी कम-से कम एक बार दिन में ले और स्वयं अपना समाधान कर ले कि अन्य समयों में किसी विश्वसनीय अधीनस्थ व्यक्ति द्वारा समुचित रूप से उनकी तलाशी ली जा रही है), (ङ) यदि आवश्यक हो तो उन्हें शृखलाबद्ध किया जाना चाहिए (शृंखलाओं का सहारा लेने के लिए विशेष कारण अधीक्षक के जरनल में पूर्णतया अभिलिखित किए जाने चाहिएं और बन्दी की वृत्तान्तपर्णी में उल्लिखित किए जाने चाहिएं)। उन्हें किसी ऐसे उद्योग में नियोजित नहीं किया जाना चाहिए जिनमें आग निकलने की सुविधा प्राप्त हो और कोई ऐसे यन्त्र नही सौंपे जाने चाहिएं जो कि हथियारों का काम दे सकें। ऐसे बन्दी का भार-साधन ग्रहण करने के अभिरक्षकों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपना समाधान कर

---

trial or have been convicted. On being admitted to Jail they should be (a) placed in charge of trustworthy warders, (b) confined in the most secure building available, (c) as far as practicable confined in different barracks or cells each night, (d) thoroughly searched at least twice daily and occasionally at uncertain hours (the Deputy Superintendend must search them at least once daily and be must satisfy himself that they are properly searched by a trustworthy subordinate at other times), (e) fettered if necessary (the special reasons for having recourse to fetters should be fully recorded in the Superintendent's Journal and noted in the prisoner's history ticket). They should not be employed on any industry affording facilities for escape and should not be entrusted with implements that can be used as weapons. Warders on taking over charge of such prisoners must satisfy themselves that their fetters are intact and the iron bars

लें कि उनकी जंजीरें भली-भांति लगी हुई हैं और जिन बैरकों में उन्हें परिरुद्ध किया गया है उनकी लोहे की सलाखें अथवा जालियां अभिरक्षित हैं और सभी ताले, चटकनियां इत्यादि समुचित अवस्था में है। अपनी ड्यूटी की बारी के दौरान उन्हें अपना समाधान कर लेना चाहिए कि ऐसे सभी बन्दी अपने-अपने स्थान पर हैं और उन्हें उनके हुलिए से अपने आप को अवगत कर लेना चाहिए।"

179. ये सभी तत्व हमारा ध्यान नियन्त्रण विवेकात्मक शक्ति के रूप में संकटापन्नता की धारणा के प्रति दिलाते हैं और हर इस धारा को विधिमान्य बनाते हैं।

180. विद्वान अपर महा-सालिसिटर ने यह दलील दी कि 'खतरनाक अभिव्यक्ति न तो अस्पष्ट है और न ही अविवेकशील बल्कि वह स्पष्ट तथा सुनिश्चित है और अधिकारी के विवेकाधिकार को पर्याप्त रूप से विनियमित बनाती है जिससे कि मनमानेपन का दोष दूर किया जा सके। उसने ऐसी नज़ीरें उद्धृत कीं जिन पर हम शीघ्र ही विचार करेंगे किन्तु उनका निरीक्षण करने से पूर्व संकटापन्न बन्दियों की अक्षमता के विधिमान्यकरण के रूप में हम साथ ही साथ (1) अक्षमता के प्रति किस प्रकार का संकट ले जाता है, (2) विनिश्चय किस प्राधिकारी को करना है कि वह संकट वर्तमान है या नहीं ? (3) किस आधार पर वह प्राधिकारी इस बात का विनिश्चय करेगा कि अपराधियों में से कौन सा अपराधी खतरनाक है और वह कब तक खतरनाक बना रहेगा ? द्वारा प्रस्तुत की गई समस्या के कुछ पहलुओं के प्रति भी निर्देश करेगा।

181. संकटापन्न होने के पूर्वानुमान जोखिमपूर्ण है। 1966 में उच्चतम न्यायालय ने अपने दण्डादेशों की कालावधि से परे न्यूयार्क मनोचिकित्सा संस्थाओं में रखे गए 967 अपराधियों को रिहा किया था क्योंकि उनके बारे में यह समझा गया था कि वे खतरनाक हैं। (उन्हें समुचित प्रक्रिया के बिना अवरुद्ध किया गया था) चार वर्षों तक उन व्यक्तियों की पश्चात्वर्ती जीवन-यापन प्रणालियों का जिन अनुसन्धानकर्त्ताओं द्वारा देख-रेख की गई थी वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि केवल दो प्रतिशत दाण्डिक रूप से पागल बन

---

or the gratings of the barracks in which they are confined are secure and all locks, bolts, etc. are in proper order. They should during their turns of duty frequently satisfy themselves that all such prisoners are in their places, and should acquaint themselves with their appearance."

कर लौटे थे ; आधे से अधिक किसी भी संस्था में पुनः दाखिल नहीं किए गए थे। तथापि जिन कसौटियों द्वारा इन व्यक्तियों को पहले-पहल संकटापन्न घोषित किया गया था वे प्रश्नास्पद हैं और उन्हें अपने दण्डादेशों के अतिरिक्त औसतन 13 वर्ष कारागार में रखा गया था।

182. इसका अन्वेषण प्रत्येक व्यक्ति पर तथा उन व्यक्तियों द्वारा उसके बारे में किए गए अध्ययन के निर्वचन पर करता है—अर्थात् उनके (अन्तर्ज्ञानात्मक) चरित्र सम्बन्धी मनमाने पर के आधार पर किए गए निर्णय की कसौटियों पर निर्भर करता है।

183. सभी ऐसी संस्थाएं जो व्यक्तियों को उनकी इच्छाओं के विरुद्ध अपनी हिरासत में रखती हैं उनके बारे में बाहर से पर्यवेक्षण की आवश्यकता है क्योंकि भाषा के अनुसार उनमें आन्तरिक निर्बन्धनों तथा सन्तुलनों का अभाव रहता है जो कि ऐसी पर्यवेक्षण को अन्यत्र अनावश्यक बना देता है। यदि किसी व्यक्ति के साथ दुर्व्यवहार किया जाए तो वह होटल में से चला जाएगा किन्तु बन्दीगृह की दशा में ऐसा नहीं है। कारागार का कर्मचारिवृन्द उसमें निवास करने वाले व्यक्तियों के कार्यकलाप को पूर्णतया निर्बन्धित भी कर सकता है जबकि होटल का कर्मचारिवृन्द ऐसा नहीं कर सकता ; कारागृह के कर्मचारिवृन्द को व्यापक विवश्यक शक्ति प्राप्त होती है किन्तु उस पर किसी बाह्य प्राधिकारी का नियंत्रण रहना चाहिए यदि उसका दुष्प्रयोग नहीं किया जाता है। दण्ड पद्धति के प्रयोजनों में सम्मिलित होने के लिए बाह्य प्राधिकारी उन संस्थाओं के प्रबन्ध से सर्वथा स्वतन्त्र होना चाहिए जिनका और जिसके कर्मचारिवृन्द का पर्यवेक्षण उसे करना है ? (न्यायपालिका की सामान्य पर्यवेक्षण शक्ति अत्यन्त दूभर है कि और वह कहीं भी पर्याप्त साबित नहीं हो पाई है)। ऐसे प्राधिकरण बाह्य देशों में भी विद्यमान हैं ; ग्रेट ब्रिटेन में "बोर्ड आफ विज़िटर्स" (दौरे पर आने वाला बोर्ड) कारागार के नियमों के उल्लंघन पर विचार करता है और साथ ही साथ बन्दियों द्वारा की गई शिकायतों पर दृष्टिपात करता है। फ्रांस में डी ला एप्लीकेशन डि सपेन्स के बारे में यह उपधारणा की गई है कि वह ऐसा करता है और इटली में गाइडाइस डी सोवैंगलाईन्जा नामक न्यायाधीश।

184. खतरनाक होने के विषय पर कैण्ट एस० मिल्लर ने यह लिखा[1] है—

---

1 कैण्ट एस० मिल्लर : मैनेजिंग मैडनैस पृष्ठ 58, 66, 67, 63.

".....यहां एक भाषात्मक समस्या पर विचार करना आवश्यक है। राज्यों के कानून निष्ठकर रूप में संकटापन्न के प्रति निर्देश से अस्पष्ट है और उनमें बृहतर भागने में संकटापन्न होने का अवधारण करने को न्यायालय तथा इस अवधारणा को लागू करने में अन्तर्वलित अन्य व्यक्तियों की सनक पर छोड़ दिया गया है।"

हिंसात्मक व्यवहार की पूर्वाधानी से सम्बद्ध विशेषज्ञों की राय भिन्न-भिन्न रही है। मिल्लर ने यह कहा है —

"संकटापन्न व्यवहार की पूर्वाधानी करने में मनोवैज्ञानिक कसौटियों की भूमिका पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है और उनके मूल्य के बारे में व्यापक दृष्टिकोण से राय प्रस्तुत की गई है।"

"अभी तक कोई संरचनात्मक अथवा प्राक्षेपक कसौटी का मापमान नहीं निकाला गया है जिसे अकेले प्रयोग में लाये जाने पर समाधानप्रद रीति में व्यक्तिगत मामले में हिंसा की पूर्वाधानी की जा सके। वास्तव में ऐसी किसी कसौटी का विकास नहीं किया गया है जो कि पूर्वाधानी करना तो क्या उसे तत्पश्चात् भी नहीं बता सकती है कि हिंसात्मक आचार क्या था। तथापि साहित्य का पुनर्विलोकन करने पर हमारा यह विचार है कि यह प्रदर्शित करना सम्भव है कि यदि अनुसन्धान सम्बन्धी कार्यक्रम अपनाए जाएं जो कि अद्यतन किए गए अध्ययनों से अधिक सूक्ष्म हो तो हिंसा के बारे में पूर्वाधानी की जा सकती है।"

"न्यायालयों और समाज को उन कठिनाइयों में से होकर गुजरना होगा और तथा सम्भाव्य सर्वोत्तम रीति में ऐसी समस्याओं पर विचार करना होगा। यह तथ्य कि हमें संकटापन्न आचार की पूर्वाधानी की परिभाषा करने में कठिनाई हो रही है इससे यह अभिप्रेत नहीं है कि समुदाय के सदस्य आचार की ऐसी पद्धतियों की उपेक्षा कर सकते हैं। और यह तथ्य कि मनोवैज्ञानिक मानसिक रोग की प्रकृति तथा परिधि के बारे में सहमत नहीं है इससे यह विवक्षित नहीं है कि विधि को ऐसे विषयों की अवहेलना कर देनी चाहिए।

".....किन्तु जब ऐसी अवस्थाओं के अधीन स्वाधीनता पर प्रवंचन होता है तो हम संकटापन्न क्षेत्र में विचारण कर रहे हैं।

"......यह परिपाटी रही है कि किसी बात की पूर्वविधानी का अधोरेखांकन बढ़ा-चढ़ा कर किया जाता है। इसके अलावा न्यायालय तथा मानसिक स्वास्थ्य वृत्ति के लोग जो उसमें अन्तर्वेलित हैं उनके द्वारा संकटापन्न होने तथा मानसिक रुग्णता से सम्बन्धित कानूनी अपेक्षाओं की क्रमबद्ध रूप से उपेक्षा की गई है..............व्यक्ति की स्वाधीनता तथा अधिकारों के विनाश के विरुद्ध राज्य के हितों को संतुलित करने में, संकटापन्न आचार सम्बन्धित रुचि होना अत्यन्त उच्च स्तर की सम्भाव्यता रखता है (जो एक ऐसी शर्त है जो कि आजकल विद्यमान नहीं है, तथा प्रतिवादित की जाने वाली हानि पर्याप्त होनी चाहिए)।"

185. यदि हमारी विधि द्वारा जीवन के लिए उच्चतर आदर परिलक्षित किया जाना होता तो व्यक्ति का निर्वन्धन केवल तभी न्यायोचित है यदि सम्भाव्य हानि पर्याप्त हो। मिल्लर द्वारा जो निष्कर्ष निकाले गए गए हैं वे सार्थक तथा सुसंगत हैं —

"यदि परिरोध किया जाता है तो उसका अल्पकालावधिक आज्ञापक पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए।"

"...............पुलिस शक्ति के प्रति वचनदान के लिए आधार भौतिक हिंसा अथवा सम्भाव्य भौतिक हिंसा होना चाहिए जो कि आसन्न हो और 'स्पष्ट तथा वर्तमान' संकट गठित करता हो एवं ऐसे परिसाक्ष्य पर आधारित हो जो कि वास्तविक आचरण से सम्बन्धित हो। ऐसा कोई वचनदान दो सप्ताहों के भीतर आज्ञापक पुनर्विलोकन पर आधारित होना चाहिए।"

"..............अवरोध समय द्वारा सीमित होना चाहिए और इसके लिए पांच से लेकर सात दिन से अधिक समय नहीं दिया जाना चाहिए।"

186. यह अनुमान अनिवार्य है कि कारागार की पृष्ठभूमि में संकटापन्न सम्बन्धी प्रबन्ध प्रायः अत्यन्त तीव्र तथा अवैज्ञानिक होता है। मनोचिकित्सीय प्रशिक्षण के बिना मनुष्यों द्वारा सापेक्ष निर्णय पर आधारित सलाखों में बन्धित किए जाने की अविवेकता तथा मानसिक विचार प्रत्येक बन्दी को 'खतरनाक' बना देते हैं। डा० भट्टचार्य ने लिखा[1] है —

---

[1] डा० बी० के० भट्टाचार्य : प्रिजन्स पृष्ठ 116.

"दिल्ली जेल में, विशेष रूप से 1949 में, अनेक विचाराधीन श्रृंखलाबद्ध बन्दी देखने का विचित्र दृश्य प्राप्त हुआ था और वह मात्र इस आधार पर कि उनके विरुद्ध एक से अधिक मामला लम्बित था। पटियाला में और जयपुर में यह बात देखने में तो आई थी किन्तु ऐसे बन्दियों की संख्या कम थी। अनेक परिवहन बन्दियों को कोठरियों में सलाखों के पीछे अभिरक्षित रखा गया था, तथापि उन्हें बेड़ियों में जकड़ा गया था हालांकि यहां ऐसे बन्दियों का उल्लेख नहीं किया जा रहा है जो कि भाग निकले थे और न ही ऐसे बन्दियों का जो कि दण्डादिष्ट थे। दिल्ली जेल में यह आभास प्रतीत होता था कि बेड़ियों में जकड़ना एक स्वभाविक नियम था।"

मुख्य विधिशास्त्रीय पूर्व शर्तें निम्नलिखित हैं—

(1) श्रृंखलाबद्ध रहने के लिए आत्यंतिक आवश्यकता हैं ;

(2) इस बात का विशेष कारण कि भला श्रृंखलाबद्ध रहने के सिवाय कोई अन्य अनुकल्प अभिरक्षात्मक आश्वासन क्यों नहीं देगा;

(3) विस्तृत रूप से समवर्ती उन कारणों का कथन ;

(4) ऐसा अभिलेख न केवल पूर्ण होना चाहिए बल्कि वह अधीक्षक के जर्नल में तथा बंदी की वृत्तान्तपर्णी दोनों में दस्तावेज के रूप में अभिलिखित होना चाहिए। पश्चात्वर्ती बंदी की दशा में होना चाहिए जिसमें कि वह संसूचना ग्रहण कर सके और उपचार के लिए आग्रह कर सकें।

(5) खतरनाक होने की मूल शर्तें सुआधारित तथा अभिलिखित होनी चाहिएं।

(6) यह सभी शर्तें श्रृंखलाबद्ध होने के लिए पुरोभाव्य शर्तें हैं सिवाय तबके जबकि कोई अत्यन्त आपत्काल हो।

(7) निवारात्मक अथवा दण्डात्मक जंजीरों से बंद किए जाने से पूर्व (जो कि दोनों ही शारीरिक वेदना अधिरोपित करते हैं) न्यूनतम रूप में नैसर्गिक न्याय का अनुसरण किया जाएगा) जिसके अंतर्गत पहले-दूसरे की की जाए तथा न्यायिक नियमों का अनुवर्तन शामिल है।

(8) जंजीरों को शीघ्रातिशीघ्र अवसर प्राप्त होने पर खोल दिया जाएगा अर्थात् तब भी जबकि कोई जोखिम उठाना पड़े उसे हटा दिया जाएगा जब तक वैवेशिक विचार्य विषय सुरक्षा की आवश्यकताओं के लिए उसे चालू न रखे।

(9) शृंखलाबद्ध किए जाने के लिए आत्यंतिक आवश्यकता का आत्यंतिक रूप से पुनर्विलोकन किया जाएगा और किसी भी व्यक्ति को कोठरी में बेड़ियां पहनाई जाएंगी।

(10) यदि यह पाया जाता है कि शृंखलाबद्ध एक दिन से अधिक समय के लिए बनी रहती हैं तो इसे अवैध माना जाएगा जब तब कि कोई बाह्य अभिकरण जैसे कि जिला मजिस्ट्रेट या सेशन न्यायाधीश अपने समक्ष रखी गई सामग्री के आधार पर यह निदेश नहीं करता कि उसे जारी रखा जाए।

187. हालांकि ये पुरोभाव्य शर्तें संख्या में अत्यधिक हैं, ये युक्ति-युक्त रूप से व्यावहारिक हैं और अभिरक्षा तथा मानविकता के बीच सामंजस्य स्थापित करती हैं। इसके विरुद्ध जो दलीलें दी जाती हैं वे पारम्परिक रूप से दी जाती हैं और हो सकता है कि उनके द्वारा धारा 56 को शक्तिबाह्य कर दे। खण्ड इच्छय संबंधी क्षेत्र के प्रति ध्यान देते हुए जिसमें शृंखला निष्ठुरता और हीनता तथा अनुचित पद्धति के साधन मौजूद हैं प्रत्येक राज्य के लिए कारागार संबंधी कारागार को संगठित करना स्वास्थ्यकर होगा। लिंग का प्रभाय है गैर जिम्मेदाराना आग्रह है जो कि दीर्घकालीन कारावास की अवधियों तथा समलिंगता द्वारा अवैध की जाती हैं और अन्तरमय क्षेत्रों में आछन्न रूप से प्रचलित हैं। उदारपूर्वक खुली जेलें, नातेदारों की समय-समय पर मुलाकातें अपने घरों के निकटतम जेलों में सिद्धदोष को रखने तनतनाव को दूर करता है दबाव से मुक्ति प्रदान करता है, तथा अंधकारमय कोठरियों में बंद किए जाने तथा जंजीरों में जकड़े जाने से बेहतर अभिरक्षा सुनिश्चित करता है।

188. इस विचारविमर्श का निष्कर्ष यह है कि सोबराज को जो बेड़ियां पहनाई गई हैं उन्हें तुरन्त खोल दिया जाएगा और उपवर्णित व्यादेशों का यथार्थरूप से पालन किए बिना पुनः नहीं पहनाया जाएगा जो कि कारागार संबंधी न्याय तथा भावना की घोर यंत्रण पथभ्रष्ट की परम्परा को विद्यायी उद्देश्य और पुनर्मवासात्मक प्रक्रिया शृंखलापूर्ण विबद्ध रुग्ण मस्तिष्कों के पीछे सलाखों के लिए स्वास्थ्यकर आशा के रूप में पुनर्जन्म

प्रदान करती हैं। यह सुधारात्मक आविर्भाव सामाजिक न्याय की सांविधानिक विवक्षा जिसके सूचक (मनमानापन) अनुच्छेद 19 युक्तियुक्तता का विरोध तथा अनुच्छेद 21 प्रक्रियागत मानविकता के प्रति संकेत करती है।

189. कारागार संबंधी सुधार प्रशासनिक विचारधारा में अंकुरित हो रही है और आशावान रूप से इस बात को विधायी तथा कार्यपालिक प्रयत्न को छोड़ा जा सकता है कि यह ठोस रूप में धारण करेगा जिसके अंतर्गत कारागार में रहने वालों के लिए अच्छी भावना होगी और सामाजिक संरक्षण के लिए सम्पृक्त रहेगा तथा अभिरक्षा पर बल दिया जाएगा एवं सुधारात्मक नीति होगी जो कि कारागार सुधार की परियोजना है।

190. जब यथेच्छया विवेक जेलर में निहित रहता है कि वह निवारक निरोध को निरीक्षक न्याय के निष्ठुर नियमों द्वारा अन्तर्निहित कर दे तो उपधारणात्मक निर्देश प्रफुल्लित होता है। यदि कारागारों, विचाराधीन बन्दियों तथा अवयस्कों को भी खतरनाक कहलाने के आधार पर बेड़ियां सहन करनी पड़ें तो कारागृह का भय का रूप धारण कर लेते हैं और यह अनुशासनिक त्रास एक ही जेल में विद्यमान रहता है। ऐसी दशा में कारागार के अधीक्षक को निश्चित रूप से अपने विवेकाधिकार को अनुशासित करना होगा क्योंकि अन्यथा वह खतरनाक साबित हो सकता है। क्योंकि सांविधानिकता वैवेकिक तथा वास्तविक युक्तियुक्तता की एकत्रित है। इसलिए यह विधि संबंधी विवाद्यक की तह तक पहुंचती है।

191. मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि लोहे की सलाखों में जकड़े जाना सामान्य रूप से एक बर्बरता है और जिस प्रकार कोड़े मारने की रीति को समाप्त किया जाना चाहिए उसी प्रकार इनको भी बन्द किया जाना चाहिए। सभ्य जागरूकता बन्दीगृहों की चार दीवारों के अन्तर्गत यातना के विरुद्ध है। हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि एकान्त परिरोध, कोठरी में रखा जाना और उसी प्रक्रिया की किञ्चित रूप से उपांतरित ऐसी प्रक्रियाएं हैं जो अमानविक तथा अविवेकशील हैं। जब ऐसी जेलों के एक वरिष्ठ अधिकारी की अनियमित तथा अप्रशिक्षित शक्ति द्वारा जिसे मानव मनोविज्ञान, स्ट्रेसालोजी या शरीर विज्ञान का कोई प्रशिक्षण न हो अधिरोपित की जाती है तो यह अधिक खतरनाक होती है। क्योंकि मनोचिकित्सा में ऐसा कोई अन्य अनुक्रम दबाव अथवा शारीरिक दबाव नहीं है जिससे चिकित्सीय अथवा मनोवैज्ञानिक परीक्षा पर निर्भर करना पड़े, पूर्व इसके कि उसे सलाखों

में बन्द किया जाए या एकान्तवास में रखा जाए जिसे कि सुनवाई करने का कोई अवसर उसे नुकसान पहुंचाए बिना प्राप्त न हो, जिसके 'कारण' वृत्तान्त-पर्णी पर दिये गये होते हैं और इसलिए वह उन्हें न जान सके और जर्नल में भी ऐसा हो अभिलिखित किया गया हो जिसके प्रति बन्दी की कोई पहुंच न हो। कारागार के महानिरीक्षक की परामर्शदायी शक्ति ऐसी दशा में भ्रामक होती है जब कि बन्दी को पुनरीक्षण की मांग करने के अधिकार का पता नहीं होता और महानिरीक्षक का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह एकान्त परिरोध में रखे गए या शृंखलाबद्ध व्यक्तियों का दौरा करे और इस प्रकार दण्डादिष्ट प्रत्येक व्यक्ति की परीक्षा करे। जेल के निरीक्षकों को अधीक्षक के आदेशों को रद्द करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं होती और न ही उन पर यह बाध्यता होती है कि वे ऐसी जांच करे, सिवाय इसके कि वे उस पर दयाभाव प्रकट कर सकते हैं और अपने टिप्पण अभिलिखित कर सकते हैं। जब दौरा करने पर आए अधिकारी अथवा उच्च पदप्राप्त व्यक्ति उनको बाहर लाने के लिए कहते हैं तो बन्दियों की कालावधिक परेडें राजनीतिक दृष्टिकोण से चिड़िया-घर में सर्कस के रूप में प्रदर्शित होती हैं अथवा/और जर्नल में की गई प्रविष्टियां तथा वृत्तान्त पर्णियां नियम के अनुसार एक जादू का काम देती है, जहां कि उल्लेखनीय मुख्य प्रश्न यह है कि कारागार के अन्तर्गत वह सार्वजनिक प्रदर्शन के पश्चात् ऐसे बन्दियों के रूप में अंकित किए जाते हैं जो कि शृंखला-बद्ध अधिकारियों की कठोर दयालुता पर निर्भर करते हैं, क्योंकि कारागार के अन्तर्गत कोई सक्रिय विधिक, साहाय्य प्रयोजन विद्यमान नहीं होते। विधि का कठोर नियम जो कि असभ्य तथा नग्न होता है किसी मनमाने, अयुक्ति-युक्त तथा प्रक्रियागत हृदयविहीन कार्य के सिवाय कायम नहीं रखा जा सकता है। अनुच्छेद 13 के साथ पठित अनुच्छेद 14, 19 और 21 के घातक आघात से उद्भूत उसके जीवन के संकट में किसी ऐसी दलील की आवश्यकता नहीं है जो कि दूरस्थ हो। 'खतरनाक' तथा 'आवश्यक' के समान ऐसे शब्दों में उपचारात्मक मार्गदर्शन के लिए गम्भीर खोज, पत्थर की दीवारों और लोहे की सलाखों की पृष्ठभूमि को विस्मित करते हुए अपरिकृत वास्तविकता को विदाई देते हैं और शाब्दिक मार्ग को समाविष्ट करती है। विधि कोई निरर्थक जादूटोना नहीं है बल्कि वह तुरन्त व्यावहारिक तथा बुद्धिमत्तापूर्वक पद्धति है और वह कारागार के अधिकारियों द्वारा अभिरक्षा को बढ़ा चढ़ा कर बताए गए भावों के समक्ष अपनी शक्ति को अभ्यर्पित नहीं करती है। 'एकान्तवास' तथा 'बेड़ियों' के अनुकल्प के रूप में कारागार की तकनीक उपलभ्य है, यदि इसके लिए इच्छा विद्यमान हो, सिवाय वहां कि जहां कि उदासीनता,

अक्षमता तथा सूझबूझ की अविद्यमान्यता कारागार अधिकारियों को बन्दी बनाती हो। सामाजिक न्याय तन्द्रागत नहीं पड़ा रहेगा यदि संविधान लड़खड़ा कर लटक जाता है जहां कि उसकी उपभोक्ताओं को इसकी मानविकता की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

पहुँच तथा विधि

192. हमारे ध्यान में अभिव्यक्त रूप से सरकारी कर्यावाही लाई गई थी जो कि निरुद्ध मनुष्यों को सरकार की यातना के खिलाफ न्यायिक उपचार की मांग करने के निर्योग्य बनाती है। मैंने इस मामले को सरकारी कृत्यशीलता के अहितकर विचलन के रूप में छोड़ दिया होता किन्तु लांछन की मूल प्रकृति हमें इस बात का अनुकल्प नहीं देती सिवाय इसके कि विधियों के हमारे प्रशासन के मूलभूत आकार को सुलझाया जाए। गणतन्त्रात्मक वैधता समाप्त हो जाती है यदि विधि निकाय नागरिक की वास्तविक परिधि अथवा युक्तियुक्त पहुंच के अन्तर्गत न हो ; कारण यह है कि यह विधि की विडम्बना है कि विधान चाहे वह प्राथमिक हो या अधीनस्थ प्रकाशित रूप में उपलभ्य नहीं है अथवा साधारण प्रभावित भारतीय की क्रय शक्ति से बाहर है। इस मुद्दे पर विचार किए जाने पर हमें यह बताया गया था कि पंजाब जेल मैनुअल बन्दियों को उपलभ्य नहीं किया गया था और वास्तव में उसकी कीमत इतनी अधिक रखी गई थी कि बहुत थोड़े व्यक्ति उसे खरीद सकते थे। मैनुअल की जो प्रति उसमें दी गई है उससे यह देखा गया है कि वह सरकारी तौर पर 1975 में प्रकाशित की गई थी और उसकी कीमत 260 रुपये 30 पैसे थी हालांकि उसके अन्तर्गत कतिपय कानूनों, नियमों तथा हिदायतों के पाठमात्र का संग्रह था और ये सब 469 मुद्रित पृष्ठों में थां। न्यायालय के समक्ष जिस बात का वर्णन किया था कि वह सही है कि इससे पूर्व मैनुअल का विक्रय लगभग 20 रुपये में किया जाता था किन्तु अचानक उसे बढ़ा कर दस गुना से अधिक कर दिया गया था तो भूतपूर्व कीमत अनन्य रूप से लोगों को इस बात से विरत करती थी कि उन्हें कारागार की विधियों का पता चल जाए और ऐसी दशा में विधि के नियम को लांछित किया गया था। यह सुझाव दिया गया था कि इससे यह अभिप्रेत है कि निर्धन बन्दी इतनी अधिक कीमत न देने के कारण अपनी मूल्यवान स्वाधीनताओं से वंचित कर दिया गया था क्योंकि वह अपने साधनों से अधिक विधि के सुसंगत उपबन्धों की कीमत की जानकारी के बिना कारागृह सम्बन्धी क्षति पर आक्षेप नहीं कर सकता था। यदि यह उत्प्रेरणा सही है तो अनौचित्य की गम्भीरता और भी

बढ़ जाती है। किन्तु हमें इन दुर्गम कुचक्रों में नहीं डाला गया है और इस अन्वेषण से दूर रखा गया है तथापि हम इस बारे में स्पष्ट रूप से उल्लेख करना चाहते हैं। विधियों के प्रशासन में विधि के प्रति पहुंच स्वाधीनता के लिए मूलभूत है। यदि विधि का नियम हमारी सांविधानिक व्यवस्था का मूल अंग है तो इससे दोहरा आज्ञापक अर्थ विवक्षित है—एक तो नागरिक को इसका पता होना चाहिए और दूसरे राज्य को चाहिए कि वह इसका ज्ञान प्रस्तुत करे। यदि विधियां अपनी व्याप्ति को सरणीबद्ध करने अथवा निर्बन्धित करने के लिए प्रकल्पित है और उन्हें जनता की पहुंच से परे रखा जाता है तो मूलभूत अधिकारी प्रवर्तनीय नहीं रहते और अनुच्छेद 19 (1) के अधीन स्वाधीनताओं को उचित अन्वेषण द्वारा खोज से परे ऐसे नियमों के परिणामस्वरूप छिपाया नहीं जा सकता जो कि न्यून रूप से दर्शनीय है। अनुच्छेद 19(2) से (6) के अधीन निर्बन्धन युक्तियुक्त होना चाहिए और भला कोई सैद्धान्तिक विनिधान इस प्रकार युक्तियुक्त हो सकता है यदि उसे प्राप्त करना उचित कीमत पर अथवा वैवेकिक खोज पर उपलभ्य न हो? इसी प्रकार अनुच्छेद 21 के अधीन प्रक्रियागत औचित्य सांविधानिकता का संकेत है यदि जीवन तथा स्वाधीनता समाप्त अथवा निर्वापित किए जाने हैं। और भला किसी व्यक्ति को सैद्धान्तिक प्रक्रियाओं द्वारा आबद्ध कैसे किया जा सकता है जिनका संग्रहण ऐसी पुस्तकों में किया गया हो जिनकी कीमत अत्यधिक हो? अधीनस्थ विधान तथा उनकी जटिलताओं को पहुंच से बाहर होने की समझ में न आने वाली संवृद्धि तथा बार-बार किए जाने वाले उपांतरण गणतन्त्र के लिए अत्यन्त मार्मिक सहदायी वैधता को इतने परेशान करने वाले हैं कि हम सांविधानिक निस्तब्धता में नहीं रह सकते। आर्केन विधि इतनी तुच्छ है जितनी कि विधिविहीन युक्ति जो कि ऐसी चेतावनी है जिस पर प्रशासन आशावान रूप से ध्यान देगा।

193. विधिमान्य विधि की एक सर्वोपरि अपेक्षा यह है कि यदि उसके लिए सक्षम रूप से खोज की जाए तो वह समाज के संज्ञान के अन्तर्गत होनी चाहिए। यहां न्यायाधिपति बोस के सम्प्रेक्षणों को स्मरण करना उपयोगी होगा जो कि भिन्न संदर्भों में किए गए थे किन्तु उनका दार्शनिक भाव है —

> "नैसर्गिक न्याय से यह अपेक्षित है कि इसके पूर्व की कोई विधि लागू हो वह प्रख्यापित अथवा प्रकाशित की जानी चाहिए। उसे किसी मान्यताप्राप्त रीति में प्रसारित किया जाना चाहिए जिससे कि सभी व्यक्तियों को इस बात का पता चल जाए कि वह क्या

है..... यह विचार कि कोई विनिश्चय किसी बन्द कमरे में मुक्त रूप में किया गया था जहां कि जनता को जाने की अनुज्ञा नहीं थी और जिसके बारे में वह प्रसामान्य रूप में कुछ नहीं जानते तथापि उनके जीवन, स्वाधीनता तथा सम्पत्ति को प्रभावित कर सकती है यदि केवल यह संकल्पमात्र पारित कर दिया जाए कि वह सभ्य मनुष्यों को जघन्य प्रतीत होती है। यह अन्तः प्रेरणा को आघात पहुंचाती है।"[1]

यदि सरकार द्वारा एकाधिकृत विधिक प्रकाशनों की अत्यन्त ऊंची कीमत रख देने के समान अनुचित पद्धतियां अपनाई जाती हैं, तो इनसे विधियों के समान संरक्षण का प्रत्याख्यान होता है और मूल अधिकारों के प्रयोग पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित होते हैं। रहस्यपूर्णता का जादू विधि का नियम नहीं है जैसे कि विधि के प्रति पहुंच हमारी पद्धति के लिए समाहित है। जो कुछ मैंने कहा है उसका सारगर्भित अर्थ, मेरे विचार में, राज्य के कार्यपालक अभिकरण द्वारा नजर-अन्दाज़ नहीं कर दिया जाएगा।

सामयिक खतरा

194. यह आवश्यक है कि हमारे कारागार की कोठरियों में विद्यमान क्रूरता छाई हुई हो और इससे भी अधिक संकटापन्न यह है कि सभ्य तथा अन्य देशों में कारागार यन्त्रणा की बहुमुखी रूप से वृद्धि हो रही है। हमारा देश कोई द्वीप नहीं है और न्यायालयों को इस बात का ज्ञान होना चाहिए और इससे बचना चाहिए। जब कि मैं कारागार नामक निस्तब्ध क्षेत्र में यन्त्रणा में सम्भाव्यताओं को बढ़ा-चढ़ा कर कहना नहीं चाहता, हम अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को नजर-अन्दाज नहीं कर सकते जो कि 'माइन्ड्स बिहाइन्ड बार्स' (सलाखों के पीछे मस्तिष्क) नामक हाल ही के एक लेख में संगृहीत किया गया है—

> "समस्त संसार भर में यन्त्रना की तकनीक सर्वदा अधिक सूक्ष्म रूप धारण करती जा रही है—नई युक्तियां घण्टों भर में बन्दी की इच्छा को विनिष्ट कर सकती है—किन्तु बर्बरता के कोई अंग या चिन्ह विद्यमान नहीं रहते। और सरकार द्वारा जो आतंक फैलाया गया है उसके द्वारा स्वयं उसकी अपनी अन्धकारमय अधीनस्थ संस्कृति विकसित की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि सारे संसार

1 (1951) एस० सी० 467.

भर में, यंत्रणा पहुंचाने वाली यह इच्छा प्रतीत करना चाहते हैं कि जिन व्यक्तियों पर दोष लगाए गए हैं उन्हें वे सम्मान योग्य लगें ..... साथ ही मनुष्यों पर पीड़ा और वेदना अधिरोपित करने की नई पद्धतियों की एक अनन्त सूची का आविष्कार हो रहा है जो कि शीघ्रातिशीघ्र द्वीपों तथा विचारधारा सम्बन्धी अवरोधों को एक प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय गुप्त पुलिस के समूह द्वारा पार कर दी जा रही है। 'गीली पण्डुबी' (वैट सबमैरीन) से यह अभिप्रेत है कि किसी बन्दी को जल में डुबोकर लगभग उसका गला घोंट दिया जाए या कारागार मूत्र में डुबो कर ऐसा किया जाए ; 'शुष्क पण्डुबी' से वही अभिप्रेत है सिवाए इसके कि दोषी के सिर पर उसे आक्सीजन से वंचित करने के लिए उस पर एक प्लास्टिक की थैली बांध दी जाती है। एक अन्य सामान्य तकनीक यह है कि 'टेलीफोन' (दूरभाष) के अन्तर्गत एक साथ दोनों कानों में कठोर आघात पहुंचाए जाते हैं जिससे कि प्रायः कनपटियों में अत्यन्त पीड़ादायक छेद कर दिया जाता है।

'हैलमैट' यन्त्रणा पहुंचाने वाले एक ऐसे दोषी के सिर पर रख दिया जाता है जिससे कि स्वयं उसकी अपनी चीखोपुकार विस्तृत रूप धारण करके उसे सुनाई दे। 'हुक' (कांटा) के अन्तर्गत दोषी को उसके हाथों द्वारा ज़मीन से ऊपर उठा दिया जाता है जो कि उसकी पीठ पर ऐसी रीति में बन्धे होते हैं कि स्नायुओं के तनाव द्वारा प्रायः भुजाओं का अधरंग हो जाता है। असगुयन यंत्रणा के एक दोषी ने यह कहा है कि जिन व्यक्तियों को हुक से खींचा जाता है वे लम्बी सांस नहीं ले सकते और वास्तव में तो वे सांस ले ही नहीं सकते। वे तो केवल कराहते हैं ; यह एक भयानक, लगभग अमानविक शोक होता है।

और समस्त संसार भर में यन्त्रणा से पीड़ित व्यक्ति अपने कार्य को वर्णित करने के लिए भयानक अनुभव का वर्णन करते हैं। यूगांडा में अमीन की खुफिया पुलिस को 'स्टेट रिसर्च ब्यूरो' (राज्य अनुसन्धान ब्यूरो) का नाम दिया गया है और मुख्य यन्त्रणागृहों को 'सार्वजनिक सुरक्षा यूनिट' कहा जाता है। ब्राज़ील में यन्त्रणा से पीड़ादायक व्यक्ति अपने स्तरों को 'आध्यात्मिक' स्तरों का नाम देते हैं और चाइल में यन्त्रणादायक व्यक्ति विल्ला ग्रेमालदी अपने कार्यस्थल को 'पलेसियों डि लारीज़ा'—कटहास का महल का नाम देते

हैं ईरान में उटाके तमायात (वह कमरा जहां कि आप व्यक्तियों को चला सकते हैं) से वह रक्तरंजित कोष्ठ प्रेरित है जहां कि बन्दियों को इस बात के लिए बाध्य किया जाता है कि वे अपने रक्त के संचार हेतु यन्त्रणा के पश्चात् पैदल चलें।

"इस समग्र अन्धकारमय चित्रण में प्रोत्साहक बात यह है कि हम इस बात को महसूस करते हैं कि विभिन्न देशों में सार्वजनिक राय पहले की अपेक्षा हमारी सामान्य रक्षा से अधिक जागरूक है, और यह बात नहीं है। मेरे विचार में अन्तिम स्थिति में सरकारें इस बात की अपेक्षा नहीं करतीं। हम इस तथ्य से भी प्रोत्साहित हुए हैं कि आज मानव अधिकारों पर सरकारों के बीच विचारविमर्श किया जाता है—अब वे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक कार्य सूची के अन्तर्गत हैं किन्तु उनमें महत्वपूर्ण बात यह है कि पुलिस थाने अथवा कोठरी में मनुष्य को कैसी वेदना तथा पीड़ा सहन करनी पड़ती है।"

195. मैं इस उद्धरण से कोई बात विवक्षित नहीं करना चाहता, किन्तु इससे हमें अपने कर्त्तव्य पर पहुंचने में जागरूकता प्रदान होती है।

निष्कर्ष

196. अब जब कि समय-समय पर अतिव्यापी विस्तृत विचार-विमर्श समाप्त हो गया है मैं दोनों मामलों में निष्कर्षों को ठोस रूप देना चाहूंगा, ताकि कहीं विस्तृति से विनिश्चय अस्पष्ट न हो जाए अथवा उसका कोण जीर्ण शीर्ण न हो जाए। वे न्यायाधिपति (जैसे कि वे तब तक थे) चन्द्रचूड़ के उत्कृष्ट **भुवन मोहन पटनायक बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य**[1] से निरसित होते हैं जिन्हें मानविकता द्वारा प्रचुर रूप दिया गया है—

"हम अधिक से अधिक इतना कह सकते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 42 में अन्तर्विष्ट इस निदेशक तत्व को, कि 'राज्य काम की न्याय और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए उपलब्ध करेगा', जेल के रहन-सहन की स्थिति में सुधार के लिए उदारतापूर्वक विस्तृत किया जाए। दण्ड के ऐसे भी युक्तिपूर्ण रूप हैं जो दोषसिद्ध और विचाराधीन कैदियों को कभी-कभी दिए जाते हैं किन्तु यह समझना चाहिए कि विगत युग के ये बर्बरतापूर्ण

---

[1] (1975) 3 एस० सी० सी० 185, 189.

अवशेष हमारे संविधान के अक्षरों और भावनाओं के विरुद्ध आघात पहुंचाते हैं।"

संविधान द्वारा उपदर्शित सुधार तथा निर्देश मैंने व्यापक रूप से वर्णित किए हैं ताकि प्रगतिशील कारावास सम्बन्धी सुधार हरे-भरे जंगलों और नवीन चरागाहों की ओर ले जाएं।

क1. निर्वचन द्वारा यथा मानविक रूप से परिशीलन किए जाने पर कारागार अधिनियम की धारा 30 और धारा 56 की विधिमत्ता को कायम रखते हैं। यह और अन्य उपबंध जोकि वर्तमान दण्डात्मक मूल्यों से किंचित् विसंगत हैं तथा मानव अधिकारों के आधारों पर ध्यान नहीं देते, इसलिए मैं आशा करता हूं कि नया विधान ला कर उन्हें पुनरीक्षित कर दिया जाएगा। इस बात का अफसोस है कि कारागार मैनुअल अधिकतर कठोर उपनिवेषक संग्रह और उनकी प्रतियां भी बन्दियों को प्राप्य नहीं हैं। सभ्य समाज में निश्चित रूप से ऐसे दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए जिनसे मनुष्य की गरिमा में ह्रास को अथवा उनके शरीर तथा भावना को चोट पहुंचे। दण्डादेश का महत्वपूर्ण उद्देश्य सुधारात्मक है जिससे कि दण्डादेश व्यक्ति की भावना को कोई सामाजिक प्रतिरक्षा सुनिश्चित की जा सके। जहां कि कारागार संबंधी व्यवहार के अन्तर्गत सुधारात्मक प्रयोजन का परित्याग किया जाता है और ऐसी परिपाटी बनाई जाती है जो कि अमानवीकरण की तकनीकों के रूप में होते हैं वहां अयुक्तियुक्तता के विरोधी छोर पर मंडराना विनाशकारी है; अनुपयोगी तथा अव्यावहारिक होगा। (अनुच्छेद 19) और न ही यातना संबंधी तकनीकें निवारात्मक प्रयोजन धारण करके सांविधानिक चुनौति से बच सकते हैं। स्वाभाविक रूप से अमानविकता अभिरक्षक को जिम्मेदार ठहराना पिछला दरवाजा निकालकर अनधिकृत कर दी जाती हैं क्योंकि वर्जन बर्बरता का होता है। उसकी आवश्यकता दण्डात्मक अथवा प्रतिषेधक है।

2. मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि एकान्त परिरोध वहां वह कुचल दिया जाए तथा सामान्य रूप से उपांतरित कर दिया जाए धारा 30 द्वारा 'मृत्यु दण्डादेश' बन्दियों के लिए मंजूरशुदा नहीं है। किन्तु उस धारा के अधीन वैध है कि ऐसे दण्डादेश व्यक्तियों के शस्त्र कारागार समुदाय से ऐसे समयों पर अलग रखा जाए जबकि बंदी सामान्य रूप से जेल में बन्द रहते हैं। मैं यह भी अभिनिर्धारित करता

हूं कि विशेष देखरेख जो कि अभिरक्षकों द्वारा ऐसे दण्डादेश बन्दियों की की जाती है उचित है। हो सकता है कि एकान्त अधिक्रमण का अनिवार्य है। किन्तु अभिरक्षकों के लिए यह आवश्यक है कि वे व्यवहार में कम-से-कम मानविक एकान्तता प्रदान करेंगे।

3. आवश्यक विवक्षा द्वारा मृत्युदण्डादेश के अधीन बन्दियों को ऐसे किन्हीं सामूहिक सुविधाओं से वंचित नहीं किया जाएगा। जैसे कि खेलकूद समाचार पत्र पुस्तकें, इधर-उधर घूमना और बन्दियों तथा मिलने के लिए आये व्यक्तियों से मुलाकात करना किन्तु यह कारागार प्रबन्ध के युक्तियुक्त विनिमय के अध्यधीन होगा। इस बात का उल्लेख कर दिया जाना चाहिए कि धारा 30 बन्दीकरण के दण्डादेश के लिए कोई प्रस्थापना नहीं है और उसमें मात्र वह रीति विहित की गई है जिनके अनुसार दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 366 द्वारा प्राधिकृत सुरक्षित जेल अभिरक्षा की व्यवस्था की जाती है।

4. इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि बन्दी सोच विचार तथा पश्चात्ताप के लिए प्रार्थना करने के लिए और सर्वशक्तिमान के सम्मुख नतमस्तक होने के लिए हुई है अथवा कुटुम्ब या मित्रों के साथ मेल मिलाप के लिए अवसरों की वांछा करता है तो ऐसी सुविधाएं उदारपूर्वक अनुदत्त की जाएंगी। किन्तु ऐसा करने में उसकी आत्मा जिस प्रपीड़क यंत्रणा में से मौत के घाट उतारे जाने के कारण गुजर रही है। समय को ध्यान में रखते हुए इसके प्रति समाज उसके लिए करुणामय रूप से उत्तरदायी है जिसका जीवन वह ले रहा है।

5. धारा 30 (2) के अधीन तात्विक अभिनिर्धारण यह है कि कोई व्यक्ति ऐसी दशा में भी मृत्यु के दण्डादेश के अधीन नहीं होता जब कि सेशन न्यायालय ने उसी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए जाने के अध्यधीन रहते हुए दण्डादेश दिया गया हो। उच्च न्यायालय पुष्टिकरण द्वारा अथवा नए सिरे से अपील अधिरोपण मृत्यु शास्ति से दण्डादिष्ट नहीं होता जब तक कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील संभाव्य है या समावेदित की गई है अथवा लम्बित है। यदि इस न्यायालय द्वारा दण्डादेश दे दिया गया हो तो धारा 30 उसे समाविष्ट नहीं करती जब तक कि राज्यपाल और/या राष्ट्रपति के समक्ष उसका पिटीशन संविधान द्वारा संहिता तथा कारागार

नियमों द्वारा निपटा न दिया गया हो। निस्संदेह, राज्यपाल तथा राष्ट्रपति द्वारा एक बार रद्द कर दिए जाने पर और अतिरिक्त आवेदन किए जाने पर कार्यकारियों द्वारा फांसी के फंदे पर लटकाए जाने से रोका नहीं जा सकता, तो वह दण्डादेश के अध्यधीन है भले ही वह अतिरिक्त रहम के लिए पिटीशन करता रहे। ऐसे अंतराल में वह अभिरक्षात्मक विलगता का भाग होता है जो कि धारा 30 (2) में विनिर्दिष्ट की गई है और जो उक्त उपबन्धों के समनुदिष्ट सुधारात्मक अर्थ के अधीन है। मृत्यु दण्डादेश के अधीन से अन्तिम रूप से निष्पाद्य मृत्यु दण्डादेश के अधीन होना अभिप्रेत है।

6. यदि स्पष्ट तथा वर्तमान हिंसा का खतरा अथवा अभिरक्षक के उल्लंघन का किया जाना संभावित हो और ऐसा नैसर्गिक न्याय में व्यवस्था में स्वयं औचित्य के नियम को ध्यान में रखते हुए माना जाए तो मैं ऐसे मृत्यु दण्डादेश बन्दी पर अतिरिक्त निबन्धन लगाने के विचार को अनुचित नहीं समझता हूं।

1. धारा 56 विधि के नियम द्वारा सिधाया जाना चाहिए तथा उसमें काटछांट की जानी चाहिए और कारागार शासकीय दृष्टि से नहीं समझा जाएगा। अधीक्षक की शक्ति में काट की जाएगी और उसके विवेकाधिकार को उपदर्शित रीति में किया जाएगा।

2. विचारणाधीन व्यक्तियों के बारे में यह समझा जाएगा कि वह अभिरक्षा में हैं किन्तु वे दण्डात्मक नहीं मानते रहे हैं, यहां तक कि उनके साथ सिद्धदोष व्यक्तियों की उपेक्षा अधिक शिथिल रूप से व्यवहार किया जाएगा।

3. शृंखला विशेष रूप से बेड़ियां मानव गरिमा के उल्लंघन के रूप में चाहे वह कारागारों के अन्तर्गत हो या उनसे बाहर हो। अब अभियुक्त व्यक्ति को न्यायालय से बाहर ले जाया जाता है या न्यायालय में वापिस लाया जाता है तो अंधाधुंध रूप से हथकड़ियां नहीं पहनाई जाएंगी तथा कारागार के निवासियों की जबरन शृंखलाएं अवैध हैं और उन्हें तुरन्त समाप्त कर दिया जाएगा सिवाए थोड़े से मामलों के जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है। अव्यावहारिक रूप से हथकड़ियां पहनाना और जनता के बीच शृंखलाबद्ध करना सूक्ष्म

संवेदनशीलताओं के लिए शर्मनाक है और हमारी संस्कृति पर एक लांछन है।

4. जहां किसी विचारणाधीन व्यक्ति की हिंसात्मक तथा भाग निकलने की प्रवृत्ति हो वहां मानविक रूप से क्रमिक सलाखों का निर्बंधन अनुज्ञेय है यदि और केवल यदि अन्य अनुशासनिक अनुकल्प निष्क्रिय सिद्ध होते हैं। सबूत की आधार शिला अभिरक्षक पर है और यदि वह असफल रहता है तो विधि की दृष्टि से वह दायित्वाधीन होगा।

5. किसी भी दशा में शृंखलाबंधन दण्डात्मक शृखला-बंधन के लिए निर्धारित अन्तरालों, अवस्थाओं और अधिकतम सीमाओं से अधिक नहीं होंगे। वे संक्षिप्त कालावधि के लिए होंगे, नम्र स्वरूप के होंगे और यदि घाव विद्यमान हों तो कदापि काम में नहीं लाए जाएंगे।

6. बन्धनों को अधिरोपित करने का विवेकाधिकार न्यायिकवत् उपेक्षा के अध्यधीन है भले ही वह अभिरक्षा के कारणों के लिए तात्पर्यित रूप से अधिरोपित किया गया हो।

7. कोई पूर्व सुनवाई, चाहे वह कितनी भी न्यूनतम क्यों न हो, दोषियों को प्रदान की जाएगी। आपवादिक मामलों में सुनवाई तुरन्त पश्चात् की जा सकती है गिल वाले मामले में तथा मेनका गांधी वाले मामले में जो नियम इंगित किया गया है वह मार्गदर्शक के रूप में काम करता है।

8. दोषी को शृंखलाबद्ध किए जाने के आधारों से अवगत कराया जाएगा। और जब शृंखलाबद्ध करने का विनिश्चय किया जाता है तो जरनल में तथा बन्दी की वृत्तान्तपर्णी में राज्य की भाषा में कारण अभिलिखित किए जाएंगे। यदि यह इस भाषा में अनभिज्ञ हो तो यथा संभव उसकी भाषा में ही उसे संसूचित किया जाएगा। यह कारागार के दण्ड सम्बन्धी मामलों को उसी प्रकार लागू होगा जैसे कि सुरक्षा सम्बन्धी जंजीरों को।

9. अनुशासन अथवा अभिरक्षक के लिए निवारक और दण्डात्मक कार्यवाही के स्वतन्त्र पुनर्विलो कन के लिए उपबन्ध के अभाव में ऐसी कार्यवाही मनमानी और अनुचित तथा

अयुक्तियुक्त रूप में अविधिमान्य होगी। तत्पश्चात् कारागार अधिकारी सिविल तथा दाण्डिक उपहतिबन्दी की देह को पहुंचाने के दायित्वाधीन होंगे। राज्य अत्यावश्यक रूप से लाज़मी प्रतिरक्षात्मक पद्धति को तथा प्रक्रिया को इस निमित्त स्थापित करेगा अथवा उसे सुदृढ़ रूप देगा जैसे कि पहले से अधिनियम के अन्तरंग भाग में विद्यमान है।

10. बन्दियों को विधिक सहायता प्रदान की जाएगी ताकि वे कारागार प्राधिकारियों से न्याय की मांग कर सकें और यदि आवश्यक हो तो न्यायालय में उस पर आपेक्ष कर सकें जो कि ऐसे मामलों में होगा जहां वे इतने निर्धन हों कि वे अपने-आप अपनी अभिरक्षा न कर सकते हों, वकील की सेवाएं प्रदान नहीं की जाती हैं, विनिश्चयात्मक प्रक्रिया अनुचित तथा अयुक्तियुक्त हो जाती है विशेष रूप से क्योंकि विधि का नियम किसी नियोग्य बन्दी के लिए विनष्ट हो जाता है यदि वह काउन्सेल न रख सके तथा उसकी फीस अदा न कर सके। मोटे तौर पर बन्दी निर्धन व्यक्ति होते हैं जिनमें विधिक परिशीलन का अभाव होता है और वे जेलर के कम्पायमान कर देने वाले नियंत्रण के अधीन मानो कि उसकी दया पर रहते हैं तथा विधिक कार्यवाही करने के लिए अपने नातेदारों या मित्रों से मिलने में असमर्थ होते हैं। जहां कोई उपचार मृतप्राय हो वहां अधिकार केवल मुद्रित शब्दों में विद्यमान होता है। अनुच्छेद 39-क इस संदर्भ में सुसंगत हैं। अनुच्छेद 19 का ऐसी दशा में उल्लंघन हो जाएगा जिसमें कि प्रक्रिया अयुक्तियुक्त होगी। अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण किया जाएगा क्योंकि प्रक्रिया अनुचित मनमानी है। मेनका गांधी वाले मामले में इस नियम को त्रुटिहीन रूप में कथित किया गया है।

11. दिन बीत जाने के पश्चात् बेड़ियां नहीं पहनाई जाएंगी क्योंकि सलाखों के अन्तर्गत बन्द किए गए बन्दियों पर रात्रि में पहनाई गई जंजीरें साधारणतया अनपेक्षित हैं, यदि सुरक्षा की दृष्टि से देखा जाए।

12. सलाखों का दीर्घकालीन रूप से जारी रखा जाना, दण्डात्मक अथवा अवरोधक कदम के रूप में किसी बाह्य

निरीक्षक जैसे मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अथवा सेशन न्यायाधीश के पूर्व अनुमोदन के अधीन होगा। क्योंकि संक्षेप में दोषी की सुनवाई करेगा और कारणों का कथन करेगा। वे अधिकतम केन्द्रीय कारागारों के पादेन निरीक्षक अधिकारी होते हैं।

13. कारागारों का महानिरीक्षक शीघ्रातिशीघ्र शृंखलाबद्ध कैदियों द्वारा प्रस्तुत किए गए पुनरीक्षण पिटीशनों पर विचार करेगा और यह निदेश देगा कि क्या शृंखलाबद्ध किया जाना चाहिए या नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा तुरन्त विनिश्चय के अभाव में यह समझा जाएगा कि शृंखलाओं से बद्ध किए जाने के विरुद्ध आदेश दिया गया है और शृंखलाओं को हटा दिया जाएगा।

197. इतना सतर्कतापूर्वक स्पष्टीकरण केवल इस कारण आवश्यक है कि क्योंकि कारागार संबंधी प्रणाली से लेशमात्र को भी विश्वास प्राप्त होता है और यहां जो विषय है वह मानवीय अधिकारों से संबंधित है। क्योंकि कारागार अधिकारियों को चाहिए कि वे कारागार की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार हों। और उसमें निवास करने वाले व्यक्तियों की सुरक्षा को बढ़ाया जाए। इसलिए उन्हें कारागार में निवास करने वाले व्यक्तियों को लागू होने वाले नियमों को प्रख्यापित करने में तथा उनका उल्लंघन किए जाने के लिए अनुशासनिक शास्ति अधिरोपित करने में वैयक्तिक विवेकाधिकार होना चाहिए। किन्तु कोई भर मानवशील न्याय शास्त्री अमरीकी न्यायाधीश की भांति संदिग्ध होगा जिसका कि **विलियम किंग जैक्सन बनाम डी० ई० बिशन**[1] में यह संप्रेक्षण किया था—

"1. हमें आश्वासन नहीं प्राप्त हुआ है कि कोई नियम अथवा विनियम लगाने के प्रयोग के बारे में चाहे वह किसी भी रूप में गंभीरतापूर्वक अथवा निष्ठावान होते हुए कल्पित किया गया हो, और विनियमित किया गया हो, उसके दुष्प्रयोग को सफलतापूर्वक निवारित किया जा सके। वर्तमान अभिलेख से अनिवार्य रूप से अंगीकृत निर्वचन भी प्रकट होता है.....

2. इस क्षेत्र में जो नियम हैं वे प्रायः बिना निरीक्षण किए हो जाते हैं।

3. विनियमों को सुगमतापूर्वक दे दिया जाता है।

1 फैडरल रिपोर्टर, सैकंड सीरीज, खण्ड 404 पृ० 671.

4. क्रूर संभोग संबंधी व्यक्तियों के हाथों मारपीट का आसानी से दुष्प्रयोग होता है।

5. जहां कि दण्ड देने की शक्ति प्रशासनिक प्राधिकारियों के निम्नस्तर के व्यक्तियों को अनुदत्त की जाती है वहां अन्तर्निहित तथा वास्तविक कठिनाई के शक्ति की परिसीमाओं को लागू करने में अनुभूत की जाती है।

198. प्रिजन मैनुअल में आक्षेपणीय शेष उपबन्ध जैसे कि कोड़े मारने तथा गांधी टोपी आदि तीव्र ग्राह्यता हमें दिखाई देती है। इस पुस्तक में अभी भी यूरोपीय लेखकों के लिए बेहतर वर्गीकरण विद्यमान है। मेरा यह विचार है कि कारागार संबंधी सुधार के प्रति तुरन्त ध्यान दिया जाएगा क्योंकि इस देश में अच्छे राजनीतिक व्यक्ति इसकी आवश्यकता को जानते हैं और हमसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि हम मानव अधिकारियों के अनन्य संक्रमणीय न्यूनतम भावों की चर्चा करें जिन्हें हमारे सांविधानिक-व्यवस्था में अत्यन्त आदर प्राप्त है। यह उल्लेखनीय है कि जैसा **फुरमैन** बनाम **जोर्जिया**[1] वाले मामले में मृत्यु दण्डादेश के प्रति न्यायाधिपति डगलस तथा मार्शल द्वारा संकेत किया है। अधिकतर दुःखदायी कारागार-सम्बन्धी क्रूरताएं प्रायः सामाजिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर तथा विरोधी राज्य सरकारों पर अधिरोपित की जाती हैं। व्यवहार के लिए वर्गीकरण के विषय में तथा निवारक अथवा दण्डात्मक आरोपों के विषय में मामले कारागारों के प्रति समान आलोचना की जा सकती है। विचारशील समाज विज्ञानी हमें ऐसा प्रतीत होता है कि कारागार के अन्दर कोठरी का व्यवहार मुख्य रूप से विरोध करने वाले विसम्मत विद्यमान अवस्था की खुली मर्जी करने वाले जन साधारण तथा कमजोर वर्गों को हानि सहन करनी पड़ती है। इसके अलावा, दण्डात्मक निहित हित कभी भी निवारात्मक पर्दा में ढका रहता है न कि उसे चुनौती दी जाती है और उसमें अविश्वसनीय विश्वास की रेत में अपने स्वरों को दबाकर अविवेकशील अन्याय से दूर नहीं कर सकते हैं। न्यायालय उतना उच्चतर होना चाहिए कि वह सुधारात्मक निर्वचन यह है कि बन्दियों के विरुद्ध इस अपराधी को समाप्त कर सकें।

199. सलाखों के पीछे स्वतन्त्रता हमारी सांविधानिक रीति का एक भाग है और हमारी सामूहिक जकड़ता की सूचक है। मानव गरिमा का पुष्प

1 33 लाइयर्स एडीशन द्वितीय संस्करण 346.

कदापि नहीं मुरझाता यह बात हमारे साँसारिक परम्परा का एक भाग है। बंदी कोठरी में एकान्त परिरोध कोड़ों से मारपीट हत्या के आधार पर मनुष्य का वर्गीकरण और इस प्रकार की अन्य बातें कारागृहों में से बहिष्कृत कर दी जानी चाहिए और कारावास के स्थलों के अन्तर्गत मानविक सिद्धान्तों को स्थान दिया जाना चाहिए। संक्षेप में जकड़ता का परिणाम सामाजिक उत्पादन को दूर करने का एक निश्चित अभिरक्षात्मक उपाय है। यह मानव के विकास के लिए एक कुंचनी है जो कि कारागार के अन्तर्गत और बाहर मनुष्य के अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों का केन्द्र है।

200. पुनः मानवीकरण—आध्यात्मवाद, संगीत, आत्माभिव्यक्ति की कलाएं खेलकूद मजूरी सहित उपयोगी कार्य कारावास में होने वाले त्यौहार, ग्राम दान और सेवा के उद्देश्यों से किये जाने वाले कार्यकलाप कुटुम्बों के व्यक्तियों से जाकर मिलना और उनके द्वारा वहां आकर मुलाकात, यहां तक कि सम्मिलित की जाने वाली परियोजनाएं और नियन्त्रित सामुदायिक जीवन पुनः मानवीकरण की नीतियों के अन्तर्गत आते हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है। कारागार के संदर्भ में सामाजिक न्याय की एक ऐसी कृतशील विविधता है जिसकी कदाचित ही खोज की गई हो।

201. हमारे संविधान की जड़ें भद्दी राजनीति, कुटुम्बों में होने वाले झगड़ों तथा उदात्त परपीड़न की परिपक्व अवस्था से परे न्यायिक समाज के सूक्ष्मतर आध्यात्मिक स्रोतों में गहराई तक पहुंचे हुए हैं और मनुष्य में गूढ़ आस्था द्वारा तथा उसकी अन्तर्निहित गरिमा एवं इस विश्वास में कि दयाभाव से जिस बात को आप परिपूर्ण कर सकते हैं उसे आप शक्ति से नहीं कर सकते अपने आपको बनाए हुए हैं और यही कारण है कि कारागार अधिनियम के उपबन्धों तथा स्वयं जेल मैन्युल को पुनरीक्षित किया जाना चाहिए जिससे कि आचार सम्बन्धी सिद्धांतों, सुधारात्मक प्रवृत्तियों और मानविक प्रगति में कारागार कर्मचारिवृन्द तथा बन्दियों दोनों में ही समान रूप से यह गूढ अर्थ परिलक्षित हो हम मनुष्यों से घृणा करने वाले लोगों का रूप धारण कर सकते और न ही मूल्यों का परित्याग कर सकते। यदि हम किसी इक्के-दुक्के खूंखार प्रवृत्ति के व्यक्ति के अपराध से भयभीत हो जाते हैं। तत्पश्चात् भयानक संदिग्ध व्यक्तियों के शरीर के अंगों को काट देना अधिक सुनिश्चित अभिरक्षा अध्युपाय होगा और अत्यन्त समय बीत जाने के पश्चात् शारीरिक दण्ड समय-समय पर दिया जाएगा। इन दोनों मामलों में मेरी राय का सार यह है कि विधि के पाषाणों में जिनसे कि कारागार बनाये जाते हैं संविधान की उच्चतर जागरूकता को अन्तर्विष्ट किया जाना चाहिए।

202. हमारे बन्दीगृहों में परिवर्तन की वायु का संचार किया जाना चाहिए और आत्माभिव्यक्ति तथा आत्मसम्मान एवं आत्मानुभूति अमानवीकृत उपचारों के स्थान पर सृजनात्मक रूप से प्रतिस्थापित कर दी जानी चाहिए और कारागार के स्थलों में आज भी वहशी जीवन की तकनीकें विद्यमान हैं उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया जाना चाहिए। कुछ कारावास कुपात्र जो आज भी विद्यमान हैं अनेक मानविक व्यक्तियों को शहीद नहीं बनाएंगे और इन गिने-चुने व्यक्तियों में से भी विश्वास धीरे-धीरे आस्था का रूप धारण कर लेगा। सर्वोदय और अन्त्योदय के आकार दाण्डिक स्वरूप के होते हैं जिन्हें कि हमारे सामाजिक न्याय की जागरूकता को समझाना चाहिए और वास्तविक रूप देना चाहिए। मैं इस संप्रेक्षण को एक उदात्त किन्तु अधूरें अनुभव (अथवा अननुध्यात महाकाव्य) के प्रति निर्देश से न्यायोचित ठहराऊंगा जिसके द्वारा श्री जयप्रकाश नारायण ने पश्चात्ताप करने वाले मृत्यु के घाट उतारने वाले चम्बल घाटी के खतरनाक डकैतों को जीवन में जो कि जेल के अन्तर्गत थे अथवा बाहर महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाया था। उनका पुनर्वास करने के लिए जो पश्चातवर्ती कार्यवाही की गई वह संभवतः विफल रही।

203. संक्षेप में जागरूकता के स्तर को उभारने की तकनीक न कि उन्हें दबाकर घृणा उत्पादित करने से कारावास के वातावरण को सुरक्षित करने की रीति एवं सामाजिक प्रतिरक्षा को सुरक्षित बनाने की रीति दर्शित होती है। दण्डवाद तथा जागरूकता सामाजिक संरक्षण में एक-दूसरे के साथी हैं।

अन्तिम निर्देश

204. मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि हांलांकि धारा 30 शक्त्यर्गत है, बत्रा को कालकोठरी में निरन्तर अभिरक्षक के अधीन अकेले नहीं रखा जाएगा जब तक कि वह स्वयं अनन्य तथा एकाकी जीवन की मांग करे यदि वह निरन्तर उच्चतम न्यायालय तक एवं सर्वोच्च कार्यपालक पर्यन्त पराजित होता जाता है और, केवल तभी, उसे अन्य बन्दियों से अलग तथा सशस्त्र अभिरक्षक की निरन्तर देखरेख में रखा जाएगा। निस्सन्देह यदि वे आधार जो साबित किए जा चुके हैं अनुशासनिक विलगता की अपेक्षा करते हैं तो उचित सुनवाई एवं पुनर्विलोकन किए जाने के पश्चात् यह अनुज्ञेय है।

205. पिटीशनर सोबराज को यह अनुतोष अनुदत्त नहीं किया जा सकता कि धारा 56 को अथवा इसमें पुनर्वास नियमों को अभिखण्डित कर दिया जाए किन्तु वह सार्वजनिक रूप से बेड़ियां पहनाये जाने की व्यथा के बारे

में सफल होता है । ऐसी शृंखलाएं तुरन्त उतार दी जाएंगी और उसे जेल के अन्तर्गत विचारणाधीन व्यक्तियों की स्वतन्त्रता अनुज्ञात की जाएगी जिसके अन्तर्गत इधर-उधर आना-जाना भी है। परन्तु यह तब यदि उसे पहले ही सिद्धदोष न कर दिया गया हो। ऐसी अवस्था में जिसमें कि वह हिंसा का प्रदर्शन करता है अथवा भाग निकलने के प्रयत्न करता है अथवा ऐसा विश्वसनीय साक्ष्य विद्यमान है कि उसके द्वारा ऐसे दुस्साहसों का किया जाना संभव है तो उसे अवरोध के अन्तर्गत रखा जाएगा। उस पर लोहे की सलाखों तक नहीं थोपी जाएंगी जब तक आपातकालीन स्थिति न हो और कोई अन्य चारा न हो यदि किसी भी अवस्था में ऐसी यंत्रणा नैसर्गिक न्याय का अनुसरण किये बिना एवं निर्णय में उपदर्शित अन्य परिसीमाओं का अनुवर्तन किए बिना लागू नहीं की जाएगी।

206. कारागार सम्बन्धी विधियां जो कि इस समय अनुचित अवस्था में हैं उनका पुनर्वास किया जाना आवश्यक है। कारागार कर्मचारिवृन्द जो कि बीते समय से राज की परम्पराओं में डूबा हुआ है उसे नवीन रूप देना होगा। कारागार और उसकी पद्धतियों में जो कि बदले की भावना की कठोर व्यवस्था को बनाये हुए पुनः रचित की जानी चाहिए, बन्दी जो कि निःस्तब्ध व्यक्ति हैं और एक ऐसा समूह गठित करते हैं मुखरित रूप धारण नहीं कर सकते चिकित्सीय तकनीक के लिए चीखपुकार के पात्र हैं और कारागार संबंधी न्याय दीर्घ विधिशास्त्रीय, गतिशीलता के पश्चात् अब निश्चित रूप से न्यायिक युक्ति द्वारा पुनर्जन्म लेंगे यदि इसकी आवश्यकता हो। अब संविधान को कारागार में रहने वाले समाज से अलग नहीं रखा जा सकता क्योंकि व्यापक सामाजिक न्याय भारतीय मानविकता की दृढ़ आस्था है। मैं आशावान रूप से राष्ट्र को जागृत करता हूं और प्रशासन के प्रति यह टिप्पणी करते हुए यह आग्रह करता हूं कि वह पत्थर की दीवारें तथा लोहे की सलाखें किसी राष्ट्र की प्रगति सुनिश्चित नहीं बनातीं और क्रान्तिकारी इतिहास हमें यह सिखाता है कि तनावपूर्ण किले मानव उत्थान के समक्ष टूट जाते हैं और लोहे की कोठरियों के अनेक निवासी आने वाले समय के सम्वेदनशील उदीयमान व्यक्ति होते हैं—जैसे कि सुकरात, श्री अरविन्द, तिलक, थोरो, भगतसिंह, गांधी। यही कारण है कि कारागार के आयाम तथा कारागार के न्याय के बीच मानविक अंतराल को समाहित करना अत्यावश्यक है। एक प्रकार से यह 'कालों' के बीच लड़ाई है और एक अन्य रूप में सामाजिक न्याय के लिए लाज़मी है।

207. यदि मैं उस प्रश्न के उत्तर से इस निर्णय को समाप्त करूं जो कि आरम्भ में प्रस्तुत किया गया था, जब तक कि सांविधानिक गारण्टियां विनिमय साध्य न हों (नान नेगोशिएबल) तब तक राष्ट्रीय मांगपत्र में निहित मानव अधिकारों को प्राधिकारी द्वारा दास नहीं बनाया जाएगा। आपातकाल, आकस्मिकता, संकटापन्नता, अनुशासन, सुरक्षा तथा स्वायत्तता सैद्धान्तिक रूप से ऐसी अभिव्यक्तियां हैं जो देखने में अच्छी लगती हैं किन्तु ऐसे संसार में जहां कि कारागृह नियंत्रण की प्रयोगशालाएं हैं अथवा ऐसे भण्डागार हैं जिनमें कि मानव रूपी पण्य क्रूरतापूर्वक रखे जाते हैं और उसमें निवास करने वालों का विचित्र वर्ण दोलायमान काष्ठा रूपी युवकों से लेकर प्रबल विसम्मति करने वालों पर्यन्त विद्यमान हैं वहां न्यायालय और अन्य सांविधानिक अभिकरणों—को ऐसी सम्मति प्रदान नहीं करनी चाहिए जिससे कि जेलों को न्यायाधीश—रुद्ध बनाकर अश्रुयुक्त अन्याय में परिवर्तित कर दिया जाए। जब तक कि वर्तमान कारागार-निदान का उपचार नहीं हो जाता और कारागार न्याय बहाल नहीं कर दिया जाता तब तक पत्थर की कठोर दीवारें और लोहे की सलाखें आज के समाज के सम्मुख दाण्डिक कठिनाई को हल नहीं कर सकेंगे।

208. मुझे इस बात का पता है कि जो आन्तरिक प्रश्न प्रस्तुत किये गये हैं उनके उत्तरों का सौष्ठवमय संक्षेप मेरे विद्वान् बन्धु न्यायाधिपति देसाई द्वारा प्रस्तुत किया गया है और मैं इस निष्कर्ष की पुष्टि करता हूं। किन्तु जब विवाद्यक गम्भीर हो और राष्ट्र यदा-कदा इस कारण कराहता रहे क्योंकि कारागृह भय तथा आतंक को जन्म देते हैं और मिथ्या सुधार तर्क करने वाले भ्रामक रूप को धारण करते रहें तथा अवास्तविकता का वचनदान देते रहें तो मेरे विचार में संक्षिप्तता का लुभावनापन विनष्ट हो जाता है और देश भर को साधारण सत्यताओं को बताने के लिए एकाकी रूप से काम करना अनावश्यक हो जाएगा। यदि संसद् तथा सरकार आज ध्यान नहीं देते तो भविष्य में उन्हें ऐसा करना होगा और मानविक भविष्य के प्रति अपील में "यदि कोई व्यक्ति आपके प्रश्न का उत्तर नहीं देता, तो अकेले चलते जाइये"—न्यायिक शक्ति एक मानविक न्यास है जिसके द्वारा आपके समय में किंचित् और दरार पड़ जाती है और यह महसूस करना कि इन असंख्य लोगों में आपने किंचित न्याय अथवा प्रसन्नता या सम्पन्नता, मानविकता या नैतिक गरिमा की भावना, देशभक्ति की धारा, बुद्धिजीवी प्रकाश का भोर अथवा कर्त्तव्य का ऐसा विचलन प्रस्तुत किया है जहां कि वह पहले विद्यमान नहीं था; यही पर्याप्त है।

209. पिटीशन सिद्धान्त की दृष्टि से सफल होता है, किन्तु अन्तरिम आदेशों को ध्यान में रखते हुए जो कि कार्यान्वित किए जा चुके हैं और इससे सम्बन्धित अधिनियम के सुसंगत उपबंधों का जो परिशीलन किया जा रहा है, अभिखण्डित करने की प्रार्थना निरर्थक हो जाती है। बत्रा और सोबराज ने भागतः लड़ाई में पराजय प्राप्त की है, किन्तु उन्होंने युद्ध को पूर्णतया जीत लिया है।

210. मैं इस बात से सहमत हूं कि पिटीशनों को खारिज कर दिया जाए।

भू०

न्यायाधिपति देसाई के मतानुसार

न्यायाधिपति देसाई—

211. तिहाड़ केन्द्रीय कारावास में परिरुद्ध दो नजरबन्द व्यक्तियों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इन दो पिटीशनों में कारागार अधिनियम की धारा 30 और 56 की अधिकारिता को चुनौती दी गई है। मृत्यु दण्डादेश के अधीन दोषसिद्ध सुनील बत्रा के कारागार अधिनियम (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 30 के उपबन्धों द्वारा समर्थित अपने एकांत परिरोध को चुनौती दी है। चार्ल्स सोभराज ने जो एक फ्रेंच राष्ट्रिक और उस समय विचारणाधीन बन्दी था, 6 जुलाई, 1976 को उसके बन्दीकरण की तारीख से 24 फरवरी, 1978 को इस न्यायालय द्वारा अन्तरिम आदेश के द्वारा मध्यक्षेप करने वाले आदेश की तारीख तक की असाधारण लम्बी कालावधि के लिए उसे सलाखों-बेड़ियों में रखने के लिए जेल अधीक्षक की कार्यवाही को चुनौती दी है। इस प्रकार का घृणास्पद और रोंगटे खड़े करने वाला दृश्य सुनवाई के चरण में बतलाया गया था और मुख्य न्यायाधिपति एम० एच० बेग, न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर और पी० एस० कैलासम् ने, जिनके पास उस समय पिटीशन थी, तिहाड़ केन्द्रीय कारावास का 23 जनवरी, 1978 को दौरा किया। उनकी निरीक्षण टिप्पणियां अभिलेख का एक भाग हैं।

212. दोनों पिटीशनों में विस्तृत रूप से कई सामान्य दलीलें दी गई हैं और प्रत्येक पिटीशन में विनिर्दिष्ट दलीलों पर विचार करने से पूर्व, पहले उन पर विचार कर लिया जाना चाहिए। अब इस बात पर बहस की गुंजाइश नहीं है कि दोषसिद्ध व्यक्तियों को पूर्ण रूप से उनके मूल अधिकारों से विरहित नहीं किया गया है। संविधान और बन्दी के बीच अब रहस्य का कोई अभेद्य

पर्दा नहीं डाला जा सकता। बन्दी उस समय तक सभी सांविधानिक अधिकारों के हकदार हैं जब तक कि उनकी स्वतन्त्रता का सांविधानिक रूप से हरण नहीं कर लिया जाता (देखिये **प्रोक्युनियर बनाम मार्टीनेक्स**)[1]। तथापि बन्दी की स्वतन्त्रता उसके परिरोध के तथ्य द्वारा नियंत्रित बातों पर निर्भर करती है। उसके लिए सीमित स्वतन्त्रता में उसका हित अधिक सारभूत है। अपराध के लिए दोषसिद्धि किसी व्यक्ति को अमानव नहीं बना देती जिसके अधिकार कारागार प्रशासन की सनक के अधीन हों और इसलिए कारागार पद्धति के भीतर कोई बड़ा दण्ड अधिरोपित करना प्रक्रियात्मक रक्षोपाय के अनुपालन की शर्त के अधीन रहता है (देखिये **वुल्फ बनाम मैकडोनल**)[2]। बन्दीकरण के तथ्य के कारण बन्दी मूल अधिकारों के सर्वांगत्र का अधिभोग करने की स्थिति में नहीं होते चूंकि ये अधिकार उस शासन द्वारा अधिरोपित निर्बन्धनों के अधीन होते हैं, जिनके वे विधिपूर्ण ढंग से वचनबद्ध हैं। **डी० भुवन मोहन पटनायक और एक अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य**[3] के मामले में हममें से एक न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ ने इस प्रकार मत व्यक्त किया था—

> "केवल दोषसिद्धि के कारण ही दोषसिद्ध व्यक्ति उन सभी मूल अधिकारों से जिनका वे अन्यथा अधिभोग करते हों, विरहित नहीं हो जाते। दोषसिद्धि होने पर विधि के प्राधिकार के अधीन कारागृह में रहने की बाध्यता भारत के संघ राज्य क्षेत्र में स्वतन्त्र रूप से घूमने या वृत्ति करने जैसे अधिकार का स्वयं वंचन हो जाता है। इस प्रकार से वृत्ति करने वाला कोई व्यक्ति अपने दण्डादेश को भुगतते समय परामर्श करने के अपने अधिकार से विहीन हो जाता है। परन्तु संविधान सम्पत्ति को अर्जित करने, धारण करने और उसका निपटान करने के अधिकार के समान अन्य स्वतन्त्रताओं की गारंटी लेता है, जिसके प्रयोग के लिए बन्दीकरण कोई बाधा नहीं है। इसी प्रकार से यहां तक कि दोषसिद्ध व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारन्टीकृत मूल्यवान अधिकार का हकदार है और उसे विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिवाय उसके जीवन या वैयक्तिक स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।"

---

1 40 लाइयर्स एडीशन सेकंड 224.

2 41 लाइयर्स एडीशन सेकंड 935.

3 (1975) 2 एस० सी० आर० 24.

निःसन्देह, विधिपूर्ण बन्दीकरण इन मूल अधिकारों में से कुछ को आवश्यक रूप से वापस ले लेता है या उन्हें परिसीमित कर देता है यह प्रतिकर्षण दण्ड पद्धति के अन्तर्निहित विचार द्वारा उचित है (देखिए **पाल बनाम प्रोक्यूनियर**)[1]।

213. सचेत रूप से और जानबूझकर हमें चुनौती की परीक्षा करते समय अपना ध्यान एक मूल तथ्य की ओर केन्द्रित करना चाहिए कि हमसे दण्ड के सुधारवादी आधुनिक सिद्धान्त के संदर्भ में संविधान-पूर्व कानून की विधिमान्यता की परीक्षा करने की अपेक्षा की गई है जबकि कारावास को सुधार संस्था के रूप में माना जाता है। परन्तु बन्दीकरण के तथ्य के आवश्यक सहगामी कारागार की निश्चिन्तता और बन्दी की सुरक्षा के बारे में सबसे पहले विचार करना होगा। यह बात नहीं है कि न्यायालय मूल अधिकारों का वर्णन करने और उनकी सुरक्षा करने के अपने सांविधानिक दायित्व को छोड़ देगा अपितु उसे साथ-साथ दण्डात्मक और निरोधात्मक बन्दीकरण के अन्तर्निहित दोनों उद्देश्यों में सन्तुलन रखना होगा। न्यायालय को कारागार प्रशासन की समस्या के सम्बन्ध में 'दूर रहो' दृष्टिकोण को अंगीकार करने की आवश्यकता नहीं है जैसा कि अक्सर संयुक्त राज्य में संघीय न्यायालयों द्वारा किया जाता रहा है। ऐसा इसलिए होता है चूंकि दोषसिद्ध व्यक्ति न्यायालय के आदेश और निदेश के अधीन कारागार में होता है। इसलिए न्यायालय को मनुष्यत्वविहीन कारागार के वातावरण और आन्तरिक व्यवस्था अनुशासन के परिरक्षण, भाग जाने के विरुद्ध संस्थागत सुरक्षा को बनाए रखने और बन्दियों को पुनर्वास के बीच एक सन्तुलन बनाए रखना होता है।

214. कारागार अधिनियम की धारा 30 निम्न प्रकार गठित हैं—

30 (1) "ऐसे प्रत्येक बन्दी की, जिसे मृत्यु दण्डादेश दिया गया है, दण्डादेश के पश्चात् कारागार में आते ही तुरन्त जेलर द्वारा या उसके आदेश से तलाशी ली जाएगी और उससे वे सभी वस्तुएं ले ली जाएंगी जिन्हें जेलर उसके पास छोड़ना खतरनाक या असमीचीन समझता है।

(2) ऐसा प्रत्येक बन्दी अन्य सभी बन्दियों से अलग एक कोठरी में परिरुद्ध किया जाएगा और उसे रात-दिन पहरेदार की निगरानी में रखा जाएगा।"

---

1 41 लाइयर्स एडीशन सैकेंड 495 पृष्ठ 501.

215. इस दलील का महत्त्व यह है कि अधिनियम की धारा 30 की उपधारा (2) कारागार प्राधिकारियों को मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी को उसे एकांत परिरोध अधिरोपित करके अन्य बन्दियों से अलग एक कोठरी में परिरुद्ध रखने के लिए प्राधिकृत नहीं करती। यह अभिकथित किया गया है कि उसे मृत्यु दण्डादेश देते हुए सेशन न्यायाधीश द्वारा उसकी दोषसिद्धि की तारीख से बत्रा को एकांत परिरोध में रखा जा रहा है।

216. श्री चितले ने, जिसने श्री बत्रा की ओर से न्याय-मित्र के रूप में हमारी सक्षम सहायता की, असीमित कालावधि के लिए एकांत परिरोध, के अधीन बन्दियों में विकसित मनोरोग विज्ञान संलक्षण की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करने के पश्चात् यह कहा कि अधिनियम की धारा 30 कारागार प्राधिकारियों को बन्दी को एकांत परिरोध में रखने के लिए सशक्त नहीं करती। यह कहा गया था कि यदि धारा 46(8) और (10) कारागार प्राधिकारियों को जेल अपराधों के लिए दण्ड स्वरूप पृथक् और कोषीय परिरोध अधिरोपित करने के लिए प्राधिकृत करती है तो एकांत परिरोध प्रभावतः अधिक यातनाप्रद होने के कारण बन्दी को अधिरोपित नहीं किया जा सकता इसलिए भी कि चूंकि यह स्वयं में दण्ड है जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 73 और 74 के अधीन ही दिया जा सकता है और वह भी न्यायालय के द्वारा। जेल प्राधिकारी स्वयं धारा 30 की उपधारा (2) को प्रभावित करने के वेश में ऐसे दण्ड को अधिरोपित करने की शक्ति का दावा नहीं कर सकता। किसी भी स्थिति में यह दलील दी गई थी कि यदि अधिनियम की धारा 30 की उपधारा (2) का अर्थान्वयन इस अर्थ में किया जाता है कि यह कारागार प्राधिकारियों को एकांत परिरोध अधिरोपित करने के लिए प्राधिकृत करती है तो यह संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 20 और 21 का अतिक्रमण है।

217. यह माना जा सकता है कि एकांत परिरोध का बन्दियों पर भी अपमानजनक मनुष्यत्वविहीन प्रभाव पड़ता है। सतत अपीड़ामुक्त कैदियों का अलगाव इतना गैरनैसर्गिक है कि इससे उन्मत्तता पैदा हो सकती है सामाजिक बहिष्कार अधिक विनाशक और असाधारण परिवेश को प्रस्तुत करता है। लम्बे एकांत परिरोध के परिणाम उन लोगों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए अनर्थपूर्ण हैं जो उसके अधीन होते हैं। इंगलैण्ड में इसे समाप्त कर दिया गया है परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका में यह अभी भी कायम है।

218. यदि धारा 30 की उपधारा (2) कारागार प्राधिकारी को मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी को एकांत परिरोध अधिरोपित करना न केवल

कारागार के अनुशासन के अतिक्रमण के परिणामस्वरूप अपितु मात्र इस आधार पर कि बन्दी मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी है प्राधिकृत करती है तो उपधारा (2) में अन्तर्विष्ट उपबन्ध प्रथमतः अनुच्छेद 20 और अनुच्छेद 14 और 19 का अतिक्रमण करते हैं। यदि एकांत परिरोध अधिरोपित करने से सहबन्दियों में समुदाय सदस्यता, सह-सम्पर्क और बातचीत करने का पूर्ण वंचन है तो यह अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होगा। विद्वान् अपर सॉलीसिटर जनरल ने किसी आधिकारिक स्थिति को स्वीकार न करते हुए यह कहा कि प्रत्यर्थियों की ओर से यह दलील नहीं है कि उपधारा (2) प्राधिकारी को एकांत परिरोध अधिरोपित करने के लिए सशक्त करती है अपितु यह केवल बन्दी के उसके अपने हित में बन्दी की सुरक्षा के लिए कानूनी अलगाव को अनुज्ञात करती है और उपबन्ध का खण्डन करने के स्थान पर हमें इस धारा के इस प्रकार पढ़ने का प्रक्रम बनाना चाहिए जिससे कि यह अमानवीय बातों को स्पष्ट कर दें।

219. तत्काल इस बात को स्पष्ट किया जाना चाहिए कि धारा 30 की उपधारा (2) कारागार प्राधिकारी को इस भाव में एकांत परिरोध अधिरोपित करने के लिए प्राधिकृत नहीं करती जिसमें कि उस शब्द को जेल नियमावली के पैरा 510 में मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी पर अधिरोपित समझा गया है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 73 और 74 में इस बारे में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं है कि एकांत परिरोध स्वयं में अधिष्ठायी दण्ड है जो केवल न्याय द्वारा ही अधिरोपित किया जा सकता है, जिसे किसी की सनक पर नहीं छोड़ा जा सकता। इसे कारागार प्राधिकारियों की सनक या मन की मौज पर नहीं छोड़ा जा सकता। एकांत परिरोध की परिसीमा, जिसे न्याय के आदेश के अधीन अधिरोपित किया जा सकता है, सर्वथा विहित है और उसके बारे में प्रजा पर इसके असाधारण प्रभाव के बारे में आन्तरिक साक्ष्य का उपबन्ध है। एकांत परिरोध, जो कि अधिष्ठायी शास्ति है, किसी भी प्रकार से एक समय में 14 दिनों से अधिक नहीं हो सकती जिसमें ऐसी कालावधि से अधिक के मध्यक्षेप होने चाहिए और फिर इसे तब तक अधिरोपित नहीं किया जा सकता जब तक कि चिकित्सा अधिकारी उसके वृत्तपत्र पर यह प्रमाणित न कर दें कि बन्दी इसे भुगतने के योग्य है। एकांत परिरोध भुगतते समय प्रत्येक बन्दी का निरीक्षण चिकित्सा अधिकारी करता है और जब ऐसा परिरोध 3 माह की कालावधि के लिए होता है तो यह दिए गए पूण कारावास के 1 महीने में 7 दिनों से अधिक नहीं हो सकता जो साथ ही ऐसी परिरोध कालावधियों के बीच में उन्हीं कालावधियों से अन्यून

अन्तराल होंगे (देखिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 74)। न्यायालय 3 मास से अनधिक चाहे कारावास की कालावधि 1 वर्ष से अधिक हो एकांत परिरोध नहीं दे सकता (देखिये भारतीय दण्ड संहिता की धारा 73)। आन्तरिक साक्ष्य, यदि कोई आवश्यक हो, एकांत परिरोध के घृणास्पद स्वरूप को दर्शाता है। आधुनिक समाज वैज्ञानिक और विधि सुधारवादियों के लिए यह इतना वीभत्स है कि विधि आयोग ने अपनी 42वीं रिपोर्ट के पृष्ठ 78 पर यह सिफारिश की कि एकांत परिरोध का दण्ड आधुनिक विचारों के अनुसार नहीं है और उसका दण्ड संहिता में दाण्डिक न्यायालय द्वारा आदिष्ट दण्ड के रूप में कोई स्थान नहीं होना चाहिए चाहे जेल अनुशासन के अध्युपाय के रूप में यह करना आवश्यक ही क्यों न हो। धारा 30 की उपधारा (2) जेल अनुशासन के भंग के लिए ऐसे दण्ड का उपबन्ध करने के लिए तात्पर्यित नहीं है। धारा 46 अधीक्षक को ऐसे किसी व्यक्ति को जिसे जेल के अपराध करने के लिए अभिकथित किया गया है प्रश्नगत करने और ऐसे अपराध के लिए उसे दण्डित करने के लिए शक्ति प्रदत्त करती है। धारा 45 में कारावास अपराध उपवर्णित है। विद्यमान प्रयोजन के लिए सुसंगत उपखण्ड (8) और (10) हैं जो निम्न प्रकार पठित हैं—

> "46. अधीक्षक ऐसे किसी अपराध से सम्पृक्त किसी व्यक्ति की परीक्षा कर सकेगा और तब उसका अवधारण कर सकेगा तथा ऐसे अपराध के लिए निम्नलिखित दण्ड दे सकेगा।
>
> × × × ×
>
> (8) 3 मास से अनधिक किसी अवधि के लिए पृथक् परिरोध :
>
> **स्पष्टीकरण**
>
> प्रत्येक परिरोध से, श्रम-सहित या श्रम-रहित, ऐसा परिरोध अभिप्रेत है जो किसी बन्दा को अन्य बन्दियों के सम्पर्क से, न कि उनकी दृष्टि से, अलग रखता है और जिसमें उसे प्रतिदिन कम-से-कम एक घण्टे के व्यायाम और एक या अधिक अन्य बन्दियों के साथ मिलकर भोजन करने की अनुज्ञा रहती है।
>
> × × × ×
>
> (10) चौदह दिन से अनधिक का किसी अवधि के लिए कोठरी-बन्द परिरोध।
>
> परन्तु कोठरी-बन्द परिरोध की ऐसा प्रत्येक अवधि के पश्चात्, उस अवधि से अन्यून अवधि का अन्तराल, उस बन्दी को कोठरी-बन्द

या एकांत परिरोध के लिए फिर से दण्डादिष्ट करने से पूर्व अवश्य बीत जाना चाहिए ।

स्पष्टीकरण —

कोठरी-बन्द परिरोध से श्रम-संहित या श्रम-रहित, ऐसा परिरोध अभिप्रेत है जो किसी बन्दी को अन्य बन्दियों के सम्पर्क से न कि उनकी दृष्टि से पूर्णतया अलग रखता है ।"

220. उप-खण्ड (8) का स्पष्टीकरण इस बात को स्पष्ट कर देता है कि वह पूर्ण रूप से अन्य बन्दियों से पृथक् नहीं किया जाता है चूंकि उसे अन्य बन्दियों की दृष्टि से नहीं हटाया जाता है और वह एक या अधिक अन्य बन्दियों के साथ भोजन करने का हकदार है। प्रत्येक ऐसा पृथक् परिरोध 3 माह से अधिक नहीं हो सकता । कोठरी-बन्द परिरोध किसी बन्दी को अन्य बन्दियों के सम्पर्क से दूर रखता है परन्तु अन्य बन्दियों की दृष्टि से दूर नहीं रखता । तथापि पंजाब जेल मेनूयल के पैरा 847 और उसके उपबन्ध यदि उन्हें अक्षरशः प्रवृत्त किया जाए जिनमें विस्तृत अनुदेश विहित है कि किस प्रकार से दोषसिद्ध बन्दी को रखना होता है तो वह ऐसे बन्दी को पूर्णतया इस परिधि से अर्थात् दृष्टि और आवाज़ से बाहर रखता है। न तो पृथक परिरोध न हा कोठरी-बन्द परिरोध इतने कष्टपूर्ण या भयानक होंगे जितना कि सिद्धदोष बन्दी का परिरोध है। धारा 30 की उपधारा (2) मात्र मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी के परिरोध के लिए अन्य बन्दियों से अलग कोठरी में परिरोध का उपबन्ध करती है और उसे पहरेदार की निगरानी में दिन और रात रखा जाता है। ऐसा परिरोध न तो कोठरी-बन्द परिरोध है और न ही पृथक् परिरोध और किसी भी दशा में यह एकांत परिरोध नहीं हो सकता। हमारी राय में धारा 30 की उपधारा (2) जेल प्राधिकारियों को मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी को परिरुद्ध करने के वेश में अन्य बन्दियों से भिन्न कोठरी में उस पर एकांत परिरोध अधिरोपित करने के लिए सशक्त नहीं करती । यहां तक कि जेल अनुशासन भी जेल दण्ड के उपाय स्वरूप एकांत परिरोध का निषेध करता है। यह पूर्ण रूप से ऐसे किसी सुझाव को नकार देता है कि चूंकि बन्दी मृत्यु दण्डादेश के अधीन है इसलिए और केवल उस विचार के कारण ही, जेल प्राधिकारी उस पर अतिरिक्त और पृथक् एकांत परिरोध का दण्ड अधिरोपित कर सकते हैं। उन्हें न्यायालय द्वारा अधिरोपित दण्ड में कुछ जोड़ने की शक्ति नहीं है जो अतिरिक्त दण्ड स्वयं न्यायालयों द्वारा ही अधिरोपित किया जाना चाहिए परन्तु वास्तव में अधिरोपित नहीं किया गया। सही अर्थान्वयन

पर धारा 30 की उपधारा (2) कारागार प्राधिकारी को मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी को एकांत परिरोध अधिरोपित करने के लिए सशक्त नहीं करती ।

221. यदि धारा 30(2) जेल प्राधिकारी को किसी सिद्धदोष बन्दी को एकांत परिरोध में रखने के लिए सशक्त नहीं करती तो "ऐसा बन्दी सभी अन्य बन्दियों से अलग कोठरी में परिरुद्ध किया जाएगा" अभिव्यक्ति को कुछ युक्तिपूर्ण अर्थ देना होगा जिससे कि उपबन्ध के पीछे प्रयोजन को पूरा किया जा सके, जिससे एकांत परिरोध का दोष न आ सके । अब हम जब से अभियुक्त को मृत्यु दण्डादेश दिया जाता है और जब तक वह निष्पादित नहीं कर दिया जाता तब तक के निरोध के स्वरूप के बारे में बतलाएंगे और साथ-साथ आक्षेपित उपबन्ध को प्रवृत्त करते समय कौन से आवश्यक कदम उठाए जाते हैं उनका वर्णन करेंगे ।

222. अगला प्रश्न यह है : मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी कौन है और जब कि वह दण्डादेश के निष्पादन से पूर्व कारागार में परिरुद्ध हो तो उस समय उस पर किस प्रकार कार्यवाही की जानी चाहिए ? क्या एकांत परिरोध या कोठरी या पृथक् परिरोध किसी मामले में तीन माह की कालावधि से अधिक अधिरोपित नहीं किया जा सकता, क्या मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी पर धारा 30 (2) के शब्दों में सेशन न्यायाधीश द्वारा मृत्यु दण्डादेश दिए जाने के समय से दण्डादेश के अन्तिमतः निष्पादित किए जाने तक परिरोध अधिरोपित करना ठीक होगा । सेशन न्यायाधीश द्वारा अधिरोपित मृत्यु दण्डादेश को तब तक निष्पादित नहीं किया जा सकता जब तक कि इसे उच्च न्यायालय ने पुष्ट न कर दिया हो [देखिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 366(1)] । तथापि हमें इस बात में संदेह नहीं है कि कारागार प्राधिकारी ऐसे दोषसिद्ध व्यक्ति को, ऐसे वारंट के आज्ञापत्र के बावजूद जिसके अधीन उसे निरुद्ध किया गया हैं, धारा 30 (2) द्वारा शासित समझते हैं कि दण्डादेश न्यायालय से अगले आदेश प्राप्त होने तक निष्पादित नहीं किया जाएगा । निःसन्देह किसी व्यक्ति पर मृत्यु दण्डादेश अधिरोपित करते समय सेशन न्यायाधीश के लिए यह बाध्यता है कि वह उसे वारंट के अधीन जेल अभिरक्षा के सुपुर्द करें । अब दोषसिद्ध व्यक्ति को जेल अभिरक्षा में इस प्रकार सुपुर्द किए जाने के पश्चात् सेशन न्यायाधीश दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 366 द्वारा यथा-आपेक्षित उच्च न्यायालय को मामला भेजता है उच्च न्यायालय या तो दण्डादेश को पुष्ट करेगा या विधि

द्वारा समर्थित कोई अन्य दण्डादेश पारित करेगा या यहां तक कि ऐसे व्यक्ति को दोषमुक्त कर सकेगा। इसके पश्चात् संविधान के अनुच्छेद 134 (ग) के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त प्रमाण-पत्र या अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाज़त द्वारा उच्चतम न्यायालय को अपील की जा सकेगी। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 415 में या तो उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणपत्र के आधार पर या उच्चतम न्यायालय (दाण्डिक अपीली अधिकारिता का विस्तारण), ऐक्ट, 1971 के अधीन अधिकार के मामले के रूप में या अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इज़ाज़त द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील के मामले में मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन की मुलतवी का उपबन्ध है। फिर संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 के अधीन राष्ट्रपति और राज्यपाल को मृत्यु दण्डादेश के मामले में क्षमा, प्रविलम्बन या छूट देने या दण्डादेश के लघुकरण करने की शक्ति प्राप्त है। मृत्यु दण्डादेश जैसा कि सेशन न्यायालय द्वारा अधिरोपित किया गया है और दया के लिए आवेदन की अन्तिम नामंजूरी के बीच लम्बे समय के अन्तराल के बारे में कोई भी अनभिज्ञ नहीं है ऐसे मामले अज्ञात नहीं हैं जहां पर कि केवल लम्बे समय का समाप्ति के पश्चात् न्यायालय द्वारा मृत्यु दण्डादेश को लघुकृत करके इस एकमात्र आधार पर आजीवन कारावास में बदल दिया गया कि बन्दी काफी समय से मृत्यु की छाया के यातनाप्रद प्रभाव के अधीन रह रहा था। तो फिर क्या यह कहा जा सकता है कि धारा 30 की उपधारा (2) के अधीन ऐसे बन्दो को सेशन न्यायाधीश द्वारा उसे मृत्यु दण्डादेश के समय से अन्य बन्दियों से अलग कोठरी में बन्द किया जाए। ऐसे पृथक् परिरोध में कैदी असाधारण लम्बे समय के लिए आघात सहता रहेगा और इस उपबन्ध को अधिनियमित करते समय विधान-मण्डल का कभी भी यह आशय नहीं रहा है। ऐसे विशेष सतर्कतापूर्ण उपाय जो दोषसिद्ध व्यक्ति पर अकथित दुःख संचित करते हो काफी लम्बे समय तक नहीं बने रह सकते जो उसे अन्य बन्दियों के साथ शारीरिक और मानसिक सम्पर्क द्वारा खिन्नता से कोई छुटकारा नहीं देते। फिर धारा 30 में "ऐसा बन्दी जिसे मृत्यु दण्डादेश दिया गया है।" अभिव्यक्ति का अन्तर्निहित अर्थ क्या होना चाहिए जिससे कि उस कालावधि को पर्याप्त रूप से कम किया जा सके जिस के दौरान बन्दी इस अत्यन्त या अतिरिक्त यन्त्रणा को भुगतता है।

223. धारा 30 के उपधारा 2 के संदर्भ में "ऐसा बन्दी जिसे मृत्यु दण्ड दिया गया है" अभिव्यक्ति का अभिप्राय केवल ऐसे बन्दी से है जिसका मृत्यु दण्डादेश अन्तिम, निश्चायक और अपरिहार्य हो गया है और जिसे किसी न्यायिक या सांविधानिक प्रक्रिया के द्वारा बातिल या शून्य

नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में यह ऐसा दण्डादेश होना चाहिए जिसे निष्पादित या क्रियान्वित करने के कर्त्तव्य से प्रभारी प्राधिकारी के हस्तक्षेप के बिना उसे निष्पादित या क्रियान्वित कर सके। **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **सिन्धी रमन**[1] के मामले में कुछ भिन्न संदर्भ में यह कहा गया था कि ऐसे अभियुक्त व्यक्ति का, जिसे मृत्यु दण्डादेश दिया गया है, विचारण सेशन न्यायालय में कार्यवाहियों की समाप्ति पर समाप्त नहीं होता, जिसका कारण यह है कि सेशन न्यायालय द्वारा पारित मृत्यु दण्डादेश उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि के अधीन होता है। विचारण को तब तक अन्तिम नहीं समझा जा सकता जब तक कि फांसी देने का दण्डादेश सक्षम न्यायालय द्वारा पारित नहीं किया जाता। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 303 के संदर्भ में **शेख अब्दुल अजीज** बनाम **कर्नाटक राज्य**[2] के मामले में यह कहा गया था कि द्वितीय हत्या करने के समय अभियुक्त आजीवन कारावास के दण्डादेश के अधीन नहीं हो सकता जब तक कि उसने वास्तव में ऐसे दण्डादेश को भुगत न लिया हो या विधिक रूप से न्यायिकतः अन्तिम दण्डादेश अस्तित्व में न हो, जिसे भुगतने के लिए वह ऐसे दण्डादेश को सजीव बनाने के लिए जो अन्यथा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के अधीन छूट के कारण समाप्त हो चुका था पृथक् आदेश की अपेक्षा के बिना भुगतने के लिए बाध्य हो। इसलिए कैदी को केवल उस समय मृत्यु दण्डादेश के अधीन नहीं कहा जा सकता जब कि मृत्यु दण्डादेश न्यायिक संवीक्षा के परे हो और किसी अन्य प्राधिकारी से हस्तक्षेप के बिना प्रवर्तनशील हो। धारा 30 का उपधारा (2) के संदर्भ में उस समय तक वह व्यक्ति जिसे मृत्यु दण्डादेश दिया गया है मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी नहीं कहा जा सकता। हमें आशा है कि यह निर्वचनात्मक प्रक्रिया काफी हद तक धारा 30 की उपधारा (2) में स्पष्ट यन्त्रणा और यातना से छुटकारा देगी और ऐसे परिरोध की कालावधि को काफी अवधि के लिए कम कर देगी।

224. तब ऐसे बन्दी के परिरोध का स्वरूप क्या है जिसे सेशन न्यायाधीश द्वारा मृत्यु दण्डादेश दे दिया गया है और दण्डादेश के समय से दण्डादेश के स्वयं निष्पादनीय बन जाने तक कोई अन्य दण्ड नहीं है? दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 366(2) न्यायालय को ऐसे किसी सिद्धदोष व्यक्ति को जिसे मृत्यु दण्डादेश दिया गया है जेल अभिरक्षा में वारंट के

---

1 (1975) 3 एस० सी० आर० 574.

2 (1977) 3 एस० सी० आर० 393.

अधीन सुपुर्द करने के लिए समर्थ करती है, वारंट में यह स्पष्ट है कि बन्दी को न तो सादा, ना ही कठोर कारावास दिया गया है। धारा 366 की उपधारा (2) को अधिनियमित करने के पीछे बन्दी को उस समय जबकि दण्डादेश निष्पादित किया जाना अपेक्षित हो उपलभ्य कराने का प्रयोजन है। उसे जेल अभिरक्षा में रखना पड़ता है। परन्तु यह अभिरक्षा सादा या कठोर कारावास भुगतने वाले व्यक्ति की अभिरक्षा से कुछ भिन्न है। जब कभी ऐसी स्थिति उद्भूत हो, उसे दण्डादेश के निष्पादन के लिए उपलब्ध कराने के लिए जेल अभिरक्षा में रखा जा रहा है। जब दण्डादेश निष्पादनीय हो जाता है तो उसे रात-दिन की चौकसी में अन्य बन्दियों से अलग रखा जाता है। परन्तु यहां पर भी जब तक कि विशेष परिस्थितियां न हों उसे अन्य बन्दियों के पास रखा जाना चाहिए जिससे कि वे उसके बारे में कुछ सुन सकें और उनके साथ बैठकर खाना खा सकें।

225. यदि मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी को जेल अभिरक्षा में रखा गया है तो जेल प्राधिकारियों द्वारा कारागार अपराधों के लिए दण्डादेश के सिवाय कोई दण्डात्मक निरोध अधिरोपित नहीं किया जा सकता। जब कोई बन्दी वारंट के अधीन दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 366(2) के अधीन जेल अभिरक्षा के सुपुर्द कर दिया जाता है और यदि उसे एकांत परिरोध में, निरुद्ध कर दिया जाता है जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 73 द्वारा विहित दण्ड है, तो यह एक ही अपराध के लिए दो बार दण्ड अधिरोपित करना होगा जो अनुच्छेद 20 (2) का अतिक्रमण होगा। परन्तु चूंकि बन्दी को एकांत परिरोध में नहीं रखा जा सकता और वह अभिरक्षा जिसमें उसे धारा 30(2) के अधीन रखा गया है, जिसका हमने निर्वचन किया है वह एकांत परिरोध को समाप्त कर देगा उसे दूसरा दण्ड अधिरोपित करने का कोई कारण नहीं है और इसलिए धारा 30(2) अनुच्छेद 20 का अतिक्रमी नहीं है।

226. अनुच्छेद 21 जीवन और दैहिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा की गारंटी देता है। यद्यपि यह नकारात्मक भाषा से व्यक्त है, यह जीवन और दैहिक स्वतन्त्रता के मूल अधिकार को प्रदत्त करता है। इस हद तक मान लीजिए धारा 30 की उपधारा (2) एकांत परिरोध को अनुज्ञात करती है, मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी की सीमित दैहिक स्वतन्त्रता का अभद्रता से हरण कर लिया जाता है और एकांत परिरोध में जीवन आजीवन कारावास की अपेक्षा बदतर हो जाता है। "जीवन और स्वतन्त्रता" शब्दों का विस्तार जो संयुक्त राज्य के संविधान के 5वें और 14वें दोनों संशोधनों में

आये हैं, जो कुछ हद तक अनुच्छेद 21 के अग्रदूत हैं उन्हें मुन बनाम इलिनॉयस[1] के मामले में न्यायाधिपति फील्ड ने बहुत स्पष्ट रूप से यह कहा है —

> "जैसा कि यहां पर प्रयोग किया गया है 'जीवन' शब्द से पशु जीवन से कुछ अधिक अभिप्रेत है। इसके वंचन के विरुद्ध रोक इन सभी सीमाओं और सुविधाओं तक विस्तारित होती है जिसके द्वारा जीवन का आनन्द लिया जाता है। समान रूप से यह उपबन्ध शरीर की विकृति या भुजा या पैर के विच्छेदन को या आंख को निकालने या शरीर के किसी अन्य अंग को जिसके माध्यम से आत्मा बाहरी विश्व के साथ सम्पर्क रखती है..... नष्ट करने को प्रतिषिद्ध करता है। स्वतन्त्रता शब्द के द्वारा जैसा कि उपबन्ध में प्रयोग किया गया है, केवल भौतिक अवरोध या जेल के बन्धनों से स्वतन्त्रता की अपेक्षा कुछ अधिक अभिप्रेत है।"

विधि का यह कथन खड़ग सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[2] तथा डी० बी० पटनायक के मामले में इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा अनुमोदित था। अनुच्छेद 21 में यथा प्रयुक्त दैहिक स्वतन्त्रता, को सारभूत शब्द माना गया है जिसमें उन अधिकारों की प्रत्येक किस्म को सम्मिलित किया गया है जो अनुच्छेद 19(1) के खण्ड (घ) में चर्चित स्वतन्त्रता से भिन्न अन्य व्यक्तियों की दैहिक स्वतन्त्रता है। उनके संक्षेपण को न्यायोचित ठहराने का भार स्पष्टतः राज्य के ऊपर है।

227. अब ऐसा कोई संविवाद नहीं है जो ए० के० गोपालन बनाम मद्रास राज्य[3] के मामले में अभिव्यक्त दृष्टिकोण के बारे में काफी लम्बी अवधि से फैला हुआ था कि संविधान के कुछ अनुच्छेद अनन्य रूप से कुछ विनिर्दिष्ट मामलों पर चर्चा करते हैं और जहां पर प्रश्नगत किसी विशेष मामले से सम्बन्धित किसी अनुच्छेद की अपेक्षाएं पूरी कर ली जाती हैं और अनुच्छेद द्वारा गारंटीकृत मूल अधिकार का अतिलंघन नहीं किया गया है तो एक अन्य अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार का सहारा नहीं लिया जा सकता। अनन्यता के इस सिद्धान्त को गम्भीरता से आर० सी० कूपर बनाम भारत संघ[4] के मामले में प्रश्नगत किया गया था और इसे इस न्यायालय के

---

[1] (1877) 94 यू० एस० 113 पृष्ठ 142.

[2] (1964) 1 एस० सी० आर० 332 पृष्ठ 347.

[3] (1950) 1 एस० सी० आर० 88.

[4] (1971) 1 एस० सी० आर० 512.

न्यायाधीशों के बहुमत के द्वारा नामंजूर कर दिया गया था जिसमें न्यायाधिपति रे ने विसम्मति प्रकट की थी। वास्तव में मेनका गांधी बनाम भारत संघ[1] के मामले में न्यायाधिपति भगवती ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया था—

> "इसलिए इस विधि को सुनिश्चित जाना जाना चाहिए कि अनुच्छेद 21, अनुच्छेद 19 को अपवर्जित नहीं करता और कि चाहे कोई ऐसी विधि हो जिसमें दैहिक स्वतन्त्रता से किसी व्यक्ति को वंचित करने के लिए प्रक्रिया विहित की गई हो और परिणामस्वरूप अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार का अतिलंघन नहीं होता है, ऐसी विधि, जहां तक कि यह अनुच्छेद 19 के अधान किसी मूल अधिकार को लघुकृत करती है या हटा देती है तो उसे उस अनुच्छेद की चुनौती का सामना करना होगा.....यदि अनुच्छेद 21 के अर्थान्तर्गत दैहिक स्वतन्त्रता से किसी व्यक्ति को वंचित करने वाली विधि और उस प्रयोजन के लिए प्रक्रिया विहित करने की अनुच्छेद 19 के अधीन प्रदत्त मूल अधिकारों में से एक से अधिक की कसौटी पर पूरा उतरना है जो किसी दी हुई परिस्थिति में लागू होता है तो उपधारणा स्वरूप इसे अनुच्छेद 14 के निर्देश में भी जांच के दायित्वाधीन होना चाहिए।"

228. अनुच्छेद 21 के अधीन चुनौती धारा 20 की उपधारा (2) के हमारे निर्वचन के कारण असफल होनी चाहिए। व्यक्ति की, जिसे कारावास में रखा गया है, दैहिक स्वतन्त्रता का काफी हद तक दाण्डिक निरोध के कारण हरण हो जाता है। इसका हरण, निवारक निरोध में भी हो जाता है। यदि सह-बन्दियों के पास आने-जाने, उनसे मिलने-जुलने या बातचीत करने, साथ-साथ रहने की स्वतन्त्रता का सारभूत रूप से हरण कर लिया जाता है तो यह अनुच्छेद 21 की अतिक्रमी होगी जब तक कि इस हरण को विधि का समर्थन प्राप्त नहीं है। धारा 30 की उपधारा (2) उस प्रक्रिया को स्थापित करता है जिसके द्वारा इसका हरण किया जा सकता है परन्तु इसे हमारे निर्वचन के अनुसार पढ़ा जाना चाहिए। "विधि द्वारा विहित प्रक्रिया" अभिव्यक्ति में "विधि" शब्द का जो अनुच्छेद 21 में है, निर्वचन मेनका गांधी के मामले में इस अर्थ में कर दिया गया है कि विधि सही, ठीक और उचित होनी चाहिए और न कि मनमानी, काल्पनिक या असह्य। अन्यथा यह बिल्कुल भी कोई प्रक्रिया नहीं रहेगी और अनुच्छेद 21 की अध्यपेक्षा पूरी

[1] (1978) 1 एस० सी० आर० 248.

नहीं होगी। यदि यह मनमानी है तो यह अनुच्छेद 14 की अतिक्रमी होगी। एक बार जब धारा 30(2) को उस प्रकार से पढ़ा जाता है जिस प्रकार से हमने पढ़ा है तो इसका हानिकारक तत्व अपमार्जित हो जाता है और यह नहीं कहा जा सकता कि यह मनमानी है या कि विधि के प्राधिकार के बिना यह दैहिक स्वतन्त्रता का वंचन है।

229. प्रासंगिक रूप से यह भी दलील दी गई थी कि मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी की धारा 30 द्वारा प्रकल्पित वर्गीकरण अयुक्त है और यह किसी सुगंत वैशिष्ठ्य पर आधारित नहीं है जो एक श्रेणी के व्यक्तियों में अन्य श्रेणी के व्यक्तियों से भेद करेगा और प्रभेद के आधार का विधि की स्वीकृत नीति के उद्देश्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इस स्पष्ट विश्वास के लिए कोई समर्थन नहीं है कि मृत्यु दण्डादेश के अधीन प्रत्येक बन्दी आवश्यक रूप से हिंसक है या खतरनाक है जिसे पृथक् रखने की आवश्यकता है। अनुभव यह दर्शाता है कि वे उदासीन और विनीत बन जाते हैं और अपने जीवन के अन्तिम दिनों को पृथ्वी पर अपने सृष्टा के संसर्ग में बिताने के लिए प्रवृत्त हैं। इसलिए, यह कहा गया था कि इस धारणा पर चलने के लिए कि मृत्यु दण्डादेश के अधीन प्रत्येक बन्दी आवश्यक रूप से हिंसक प्रवृत्ति का हो जाता है और सह-बन्दियों के समुदाय के लिए खतरनाक हो जाता है, अयुक्तियुक्त है और दण्डादेश के आधार पर वर्गीकरण कोई सुगम प्रभेद नहीं करता। इस उपबन्ध के अन्तर्निहित तर्क आधार ये हैं कि मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी की स्थिति और दशा का वही स्वरूप, जिसका हमने अर्थान्वयन किया है, ऐसी स्थिति में पहुंचा देती हैं और ऐसे व्यक्तियों के लिए विशेष समस्याएं खड़ी कर देती है जिनसे उनके पृथक् वर्गीकरण और जेल प्रशासन और कारागार अनुशासन के उपाय के रूप में पृथक् व्यवहार का औचित्य प्रतिपादित करते हैं। मुश्किल से इस बात को प्रश्नगत किया जा सकता है कि मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी का एक पृथक् वर्ग होता है और उनका पृथक् वर्गीकरण माना जाना चाहिए। इंग्लैण्ड में मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी को पृथक्तया वर्गीकृत माना जाता है जैसाकि हेल्सबरीज द्वारा लिखित लॉस ऑफ इंग्लैंड, तृतीय संस्करण भाग 30 पैरा 1151 से स्पष्ट है। स्वागत कक्ष में उसकी तलाशी ली जाती है और ऐसी प्रत्येक वस्तु ले ली जाती है जिसे कि प्रशासक यह समझता है कि इसे उसके पास छोड़ना खतरनाक या असमीचीन है। उसे पृथक् कोठरी में परिरुद्ध किया जाता है. अन्य सभी बन्दियों से पृथक् रखा जाता है और उससे कार्य नहीं करवाया जाता है। सम्बन्धियों, मित्रों और

विधिक सलाहकारों को, जिनको कि बन्दी मिलना चाहता है, उससे मिलने की आज्ञा दी जाती है। यह सत्य है कि इस अनुमान का कोई समर्थन नहीं है कि मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी आवश्यक रूप से हिंसक प्रवृत्ति का है और या वह अपने सह-बन्दियों के लिए खतरनाक है। उस दृष्टिकोण से मामले पर विचार करते समय हमने धारा 30 की उपधारा (2) का इस अर्थ में निर्वचन किया कि उसे अत्यधिक आवश्यकता के मामलों के सिवाय जिन्हें विनिर्दिष्ट रूप से बनाया जाना चाहिए और वह भी जब कि वह इस अभिव्यक्ति के सही भाव में मृत्यु दण्डादेश के अधीन बन्दी बन जाता है, पूर्ण रूप से पृथक् नहीं रखा जाना चाहिए। सुरक्षा प्रयोजन के लिए दण्डादेश के अनुसार वर्गीकरण निश्चित रूप से विधिमान्य है और इसलिए धारा 30(2) अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं करती। इसी प्रकार से इस दृष्टिकोण से जो हमने धारा 30(2) की अध्यपेक्षा के बारे में अपनाया है, निर्बन्धन अयुक्तियुक्त दिखायी नहीं देता। इसे बन्दी की सुरक्षा को और कारागार सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अधिरोपित किया जाता है और यह अनुच्छेद 19 का अतिक्रमी नहीं है। किसी भी प्रकार से यह चुनौती असफल होती है।

230. चार्ल्स सोबराज को, जो कि एक विदेशी है, 6 जुलाई, 1976 को गिरफ्तार किया गया था और 15 जुलाई, 1976 को उसे आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम, 1971 की धारा 3 के अधान - निरोध आदेश की तामील की गई थी। उसका आरोप यह है कि जब से उसे तिहाड़ केन्द्रीय कारागार में बन्द किया गया है उसे सलाखों और बेड़ियों में रखा गया है और उसकी बेड़ियां दिन में 24 घण्टे लगातार लगी रहती हैं और यह एक असंविवादात्मक तथ्य है कि उसके निरोध के समय से उसे 24 फरवरी, 1978 तक सलाखें और बेड़ियां पहनाई गईं जब इस न्यायालय ने विद्वान अपर महा सालीसिटर द्वारा प्रत्यर्थी की ओर से दिए गए आश्वासन को अभिलिखित करते हुए यह विश्वास दिलाया था कि बेड़ियां और सलाखें उस समय के सिवाय जब कि बन्दी को कारागार से न्यायालय में और न्यायालय से कारागार में ले जाया जाएगा और जब कि उसे किसा पिटीशनर के साक्षात्कार के प्रोयजन के लिए लाया जाएगा परन्तु यदि साक्षात्कार कोठरी में है तो ऐसी सलाखें और बेड़ियां नहीं लगेंगी 14 दिनों तक की कालावधि के लिए तुरंत हटा दी जाएंगी। पश्चात्वर्ती आदेशों के द्वारा 24 फरवरी, 1978 के इस आदेश को जारी रखा गया। इस प्रकार जुलाई, 1976 से फरवरी, 1978 तक पिटीशनर को सलाखों और बेड़ियों में रखा गया। प्रत्यर्थी संख्या 3 तिहाड़ केन्द्रीय कारागार के अधीक्षक की ओर से 5 सितम्बर, 1977 के उत्तर में

शपथ-पत्र में पिटीशनर के दाण्डिक कार्यकलापों के हिसक विवरण उपवर्णित किये हैं जिसमें उसके साथ-साथ यह कहा है कि पिटाशनर एक बहुत असाध्य और खतरनाक प्रवृत्ति का व्यक्ति है जिसकी उपस्थिति इंटरपोल द्वारा अपेक्षित है और इसलिए उसे जेल में बेड़ियों में रखना आवश्यक समझा गया है। धारा 56 की सांविधानिक विधिमान्यता की परीक्षा करते हुए इन प्रकथनों द्वारा हमने अपना दृष्टिकोण नहीं बदला है हमने पक्षपातपूर्ण या लघुकृत नहीं बनाया है चूंकि हमारी राय में पिटीशनर द्वारा दी गई मुख्य दलील सुसंगत नहीं है।

231. पिटाशनर ने यह दलील दी है कि कारागार अधिनियम की धारा 56, जहां तक कि यह अधीक्षक को किसी बन्दी को कारागार में परिरुद्ध करने के लिए अनियंत्रित, असरणीबद्ध और मनमानी शक्तियां प्रदत्त करती हैं, अनुच्छेद 14 और 21 की अधिकारतीत हैं, अनुच्छेद 19 के अधीन इसे चुनौती की छूट नहीं है। धारा 56 निम्न प्रकार वर्णित है—

> "56. जब कभी अधीक्षक, किन्हीं बन्दियों की निरापद सुरक्षा के लिए (कारागार की दशा या बन्दियों के आचरण के प्रसंग में) यह आवश्यक समझे कि उन्हें बेड़ियां लगाकर परिरुद्ध रखना चाहिए तब वह ऐसे नियमों और अनुदेशों के अधीन रहते हुए, जो राज्य सरकार की मंजूरी महानिरीक्षक द्वारा निर्धारित की जाएं, उन्हें इस प्रकार परिरोध में रख न सकेगा।"

232. पंजाब जेल मैनुअल के पैरा 399 के उप-पैरा (3) में इस बात का उपबन्ध है कि खतरनाक बन्दियों की अभिरक्षा के लिए विशेष सतर्कता बरता जानी चाहिए जिसमें, यदि आवश्यक हो, अन्य बातों के साथ-साथ उसे सलाखों और बेड़ियों में रखना भी सम्मिलित है। रक्षोपाय, जिसका उपबन्ध इसमें किया गया है वह यह है कि यदि अधीक्षक उसे बेड़ियों में रखने का विनिश्चय करता है तो उसे पत्रिका में बेड़ियां पहनाने के लिए विशेष कारण अभिलिखित करने चाहिएं और इसे बन्दी के हिस्ट्री टिकट में भी लिखा जाना चाहिए। कारागाराध्यक्ष का यह कर्त्तव्य है कि वह इस बात के लिए अपना समाधान करें कि बेड़ियां सही हैं। पैरा 435 में इस बात का उपबन्ध है कि सुरक्षा के लिए लगाई गई बेड़ियां उस समय अधीक्षक हटा सकेगा जबकि उसकी यह राय बन जाए कि ऐसा सुरक्षित रूप से किया जा सकता है। अध्याय VI में पैरा 69 में यह उपबन्ध है कि अधीक्षक महानिरीक्षक के नियंत्रण के अधीन अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करेगा और उसके द्वारा पारित सभी आदेश महानिदेशक द्वारा पुनरीक्षण के अधीन होंगे।

233. निस्सन्देह बंदीकरण में रहते समय सीमित गमनागमन जिसका बन्दी अधिभोग करता है, गम्भीर रूप से सलाखों और बेड़ियों में रहने से कम हो जाता है। इस बात को जताने के लिए कि किस प्रकार की सलाखें बेड़ियां होती हैं और जब कि कोई बन्दी उनके अध्यधीन है कि प्रकार से उसके गमनागमन को अत्यन्त कम कर दिया जाता है, एक सलाख हमें पहले दिखाई गई थी और उसके प्रयोग को न्यायालय में प्रदर्शित किया गया था। यहां पर इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि लोहे के कड़े जो घुटने में पहनाये जाते हैं उन्हें वैल्ड कर दिया जाता है। इसलिए जबकि बेड़ियां हटानी होती हैं तो कड़ी को तोड़ना पड़ता है। फिर उसमें आड़ी छड़ें होती हैं जो दोनों पैरों को अलग-अलग रखती हैं और उनमें दो खड़ी सलाखें होती हैं जो कमर के लिए बड़ी कुटिल होती हैं और जिससे धीमे चलना भी बहुत असुविधाजनक हो जाता है। यदि इसके साथ हथकड़ियां भी कैदी को पहना दी जाती हैं तो यदि हम संयम से इस बात पर विचार करें तो उसका जीवन असहनीय हो जाता है। सलाखें-बेड़ियां रात-दिन पहनाई रखी जाती हैं यहां तक कि जब कि बन्दी को जेल कोठरी के परिरोध में रखा गया हो। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अधिक विस्तृत वर्णन की आवश्यकता नहीं है कि सलाखें बेड़ियां काफी हद तक, यदि पूर्ण रूप से नहीं, तो गमनागमन को कम कर देती हैं या उससे वंचित कर देती हैं जो दैहिक स्वतन्त्रता का एक पहलू है और इसे बन्दी को घूमने-फिरने से जैसा कि दूसरे करते हैं रोकने की दृष्टि से रक्षोपाय के रूप में और उसे भागने से रोकने के लिए लगाया जाता है। तीक्ष्ण रूप से यह कहा गया कि बन्दियों को विधिपूर्ण अभिरक्षा से भागने की कोई मूल स्वतन्त्रता नहीं है और इसलिए वे इस सावधानीपूर्ण उपाय के विरुद्ध शिकायत नहीं कर सकते जो कारागार से भागने में बाधा है।

234. अनुच्छेद 21, विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसरण के बिना, दैहिक स्वतन्त्रता के वंचन को प्रतिषिद्ध करता है और उस हद तक दैहिक स्वतन्त्रता की कमी जो दैहिक स्वतन्त्रता को नकारना है, वंचन है। सलाखें बेड़ियां सीमित दैहिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप हैं जिसका बन्दा अधिभोग करता है और इसलिए इसमें कमी को न्यायोचित ठहराने से पूर्व इसे विधि का प्राधिकार प्राप्त होना चाहिए। एक चरण में यह अनुभव किया गया था कि पैरा 399(3) में अन्तर्विष्ट उपबन्ध अनुच्छेद 21 के प्रयोजन के लिए विधि की मंजूरी का उपबन्ध करेगा। धारा 56 कारागार के महा-निदेशक द्वारा राज्य सरकार की मंजूरी से अनुदेश जारी करने के लिए शक्ति प्रदत्त करता है

और धारा 59 राज्य सरकार को ऐसे नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त करती है जिसमें बेड़ियों में परिरोध को नियमित करने के नियम सम्मिलित हैं। पैरा 399 के अधिनियमन के पीछे मंजूरी का गम्भीरता से परीक्षण करने के पश्चात् अंत में विद्वान अपर महा सालासिटर ने प्रत्यर्थियों का ओर से यह कथन किया कि पंजाब जेल मैनुअल का पैरा 399 कारागार अधिनियम, 1894 की या तो धारा 59 या 60 को निर्देशनीय कानूनी नियम नहीं है। विद्वान काउन्सेल ने यह कहा कि सभी प्रयत्नों के बावजूद प्रत्यर्थी धारा 56 में निर्दिष्ट स्थानीय सरकार की मंजूरी की मूल प्रति या केवल उसकी प्रति प्राप्त करने में असमर्थ थे। इसलिए हमारा यह निष्कर्ष है कि पैरा 399 में अन्तर्विष्ट उपबन्ध कानूनी नहीं है और उसे विधि का प्राधिकार प्राप्त नहीं है।

235. इसलिए, प्रश्न यह है कि क्या धारा 56 द्वारा अधीक्षक को प्रदत्त शक्ति अनियंत्रित और इस भाव में असरणीवद्ध है कि अधीक्षक किसी बन्दी को इतने लम्बे समय के लिए सलाखों और बेड़ियों में रखने के लिए मनमाने रूप से चुन सकता है जैसा कि वह उचित समझे और जो ऐसे प्रयोजन के लिये हो जिसे वह वांछनीय दण्डात्मक या अन्यथा समझें।

236. धारा 56 का मात्र परिशीलन यह दर्शाएगा कि अधीक्षक किसी बन्दी को बेड़ियां पहना सकेगा (i) जबकि वह इसे आवश्यक समझे; (ii) या तो कारागार की दशा के या बन्दी के चाल-चलन के निर्देश में, और (iii) बन्दी की सुरक्षा के लिए। अब हम कारागार की दशा की आवश्यकता पर विचार नहीं करेंगे चूंकि यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि पिटीशनर को तिहाड़ केन्द्रीय कारागार की वास्तविक दशा को ध्यान में रखते हुए सलाखों और बेड़ियों में रखा गया था। परन्तु अधीक्षक को पहले बेड़ियों और सलाखों में बन्दी को रखने की आवश्यकता के बारे में अपने-आप का समाधान करना है और निश्चित रूप से (आवश्यकता) मात्र औचित्य के विरुद्ध है। बन्दी को सलाखों और बेड़ियों में रखने की आवश्यकता की बन्दी के चाल-चलन और बन्दी की सुरक्षा के संदर्भ में परीक्षा की जानी चाहिए। बन्दी की सुरक्षा में बन्दी की सुरक्षा जिसे सलाखों और बेड़ियों में रखा जा रहा है और कारागार में उसके साथी दोनों आ जाते हैं। यहां पर हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अधीक्षक से इस बात की अपेक्षा है कि वह अपनी पत्रिका में और बन्दी के हिस्ट्री टिकट में पूर्ण रूप से बन्दी को सलाखें और बेड़ियां पहनाने के कारण अभिलिखित करेगा। जबकि यह कहा गया कि

धारा 56 द्वारा प्रदत्त शक्ति असरणीबद्ध और अनियन्त्रित है तो इस बात को ध्यान में रखना होता है कि इस चुनौती की विधान की विषय-वस्तु अर्थात कारागारों के संदर्भ में परीक्षा करनी होती है और स्वयं विषय-वस्तु कुछ मामलों में मार्गदर्शक सिद्धान्त बता देती है। इस संदर्भ में हम लाभदायी रूप से प्रोक्यूनियर के मामले को निर्दिष्ट करेंगे। इसमें यह कहा गया है—

> "हस्तगत मामला कारागारों के संदर्भ में उद्भूत होता है। सरकार के मुख्य कार्यों में से एक कार्य सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना है जो दाण्डिक विधि के प्रवर्तन के माध्यम से होता है और दाण्डिक संस्थाओं का रख-रखाव उस बात का अनिवार्य भाग है। इस बात में विचाराधीन पहचानने योग्य सरकारी आन्तरिक हित और अनुशासन बनाए रखना और भागने या अप्राधिकृत प्रवेश के विरुद्ध संस्थागत सुरक्षा बनाए रखना और बन्दियों का पुनर्वास है।"

कारागार अनुशासन के संदर्भ में मूल विचार बन्दियों की सुरक्षा, कारागार सुरक्षा और बन्दी के रक्षोपाय हैं। यह सुसंगत विचार होने के कारण किसी विशेष बंदी को सलाखें और बेड़ियां पहनाने की आवश्यकता उन्हें बतलाई जानी चाहिए। इसलिए हमारी यह राय है कि धारा 56 के अधीन शक्ति का केवल उन्हीं कारणों और विचारों से प्रयोग किया जा सकता है जो कानून के उद्देश्य अर्थात बंदी के रक्षोपाय से संबंधित हों जो बंदी के चाल-चलन और उसकी प्रवृत्ति के सम्बन्ध में विचार है। इन और सभी प्रकार के अन्य विचारों का सीधा संबंध बंदियों के रक्षोपाय से है चूंकि उनका उद्देश्य मुख्य रूप से उनके भागने को रोकने से संबंधित है। सलाखों और बेड़ियों में किसी बंदी को रखने की आवश्यकता का अवधारण प्रत्येक बंदी के विशेष और विशिष्ट चाल-चलन को ध्यान में रखते हुए करना होता है। बन्दी द्वारा किए गए अपराध, दण्डादेश का स्वरूप और उसकी लम्बाई या उसका विस्तार उस प्रश्न का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं है।

237. फिर धारा 56 के अधीन शक्ति अनर्गल नहीं है चूंकि पैरा 399 के संदर्भ में उपपैरा (3) द्वारा यथा-अपेक्षित विशेष सतर्कता इस तथ्य के होते हुए भी कि क्या उनका विचारण किया जाना है या उन्हें दोषसिद्ध कर दिया गया है। खतरनाक बंदियों की निरापद सुरक्षा के लिए बरतनी होगी। संक्षिप्त रूप से इस बात की परिभाषा करना बड़ा कठिन है कि बंदी के कौन

से गुण उसके 'खतरनाक' के रूप में वर्गीकरण को न्यायोचित ठहराते हैं। परन्तु ये कुछ व्यवहारिक समस्याएं हैं जिन्हें व्यवहारिक और हस्तक्षेपा विचार पर निपटाना होगा जो जेल प्रशासकों के कार्य का निर्वहन करने वाले व्यक्ति ही कर सकते हैं।

238. अब हम रक्षोपाय की सरणीबद्धता पर विचार करेंगे जो स्वयं धारा 56 में और पैरा 399 में प्रतिबिम्बित हैं जो यद्यपि कानूनी नहीं है अपितु अधीक्षक पर आबद्धकर हैं। सलाखों और बेड़ियों में बन्दी को रखने की आवश्यकता का अवधारण बन्दी के चाल-चलन से संगत होना चाहिए और बन्दी की निरापद सुरक्षा के अनुरूप होना चाहिए। ऐसा सब कुछ प्रत्येक बंदी के विशेष और विशिष्ट गुणों पर विचार करने के पश्चात् ही किया जा सकता है। साधारण या सामान्य कारण इसके लिए पर्याप्त नहीं हो सकते। इन कारणों को अधीक्षक की पत्रिका और बंदी के हिस्ट्री टिकट में पूर्ण रूप से अभिलिखित करना होगा। इन कारणों को देने का कर्त्तव्य जो कम से कम न्यायसंगत हो, अधीक्षक को प्रदत्त मनमानी शक्ति को कम कर देगा। यह बात स्पष्ट की जा सकती है कि जहां तक सम्भव हो इन कारणों को बन्दी द्वारा सुगम और समझने योग्य भाषा में बन्दी के हिस्ट्री टिकट में अभिलिखित किया जाना चाहिए जिससे कि अगले रक्षोपाय को अर्थात कारागार के महा निदेशक को पैरा 69 के अधीन पुनरीक्षण पिटीशन को प्रभावी बनाया जा सके। अधीक्षक पर एक और बाध्यता यह है कि सुरक्षा के लिए अधिरोपित बेड़ियां अधीक्षक द्वारा उस समय तुरन्त हटा ली जाएंगी जबकि उसकी यह राय बन जाती है कि इसे पैरा 435 द्वारा यथा-अपेक्षित सुरक्षित रूप से किया जा सकता है। पैरा 435 की अपेक्षाओं को पूर्ण रूप से प्रभावित करने के लिए अधीक्षक को इस बात को अभिनिश्चित करने के लिए नियमित और सामान्य अन्तरालों में बन्दी के मामले का स्वयं पुनर्विलोकन करना होगा कि क्या बेड़ियां सुरक्षा की अपेक्षा को ध्यान में रखते हुए हटायी जा सकती हैं। इस प्रकार से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि धारा 56 में काफी मार्गदर्शन है जिसमें अधीक्षक द्वारा सलाखों बेड़ियों के दुष्प्रयोग के विरुद्ध काफी रक्षोपाय हैं। कारण देने के कर्त्तव्य के साथ ऐसा परिगत परिसरीय मनमानापन जो उच्च प्राधिकारियों द्वारा पुनरीक्षणीय है, उसे मनमाना नहीं कहा जा सकता जिससे कि ये अनुच्छेद 14 का अतिक्रामी हो।

239. यह दलील दी गई कि पैरा 426 और 427 में अन्तर्विष्ट उपबन्ध को दृष्टिगत करते हुए बन्दी को कारागार सुरक्षा की आवश्यकता के

होते हुए और बन्दी के चाल-चलन द्वारा अप्रभावित होकर भी असंगत और बाहरी कारणों से, जैसे कि दण्डादेश की लम्बाई और दोषसिद्धि की संख्या को ध्यान में रखते हुए सलाखें और बेड़ियां पहनाई जा सकती हैं। बन्दी को सलाखें और बेड़ियां पहनाने के लिए या उसे लोहे की बेड़ियों में परिरुद्ध करने के लिए एकमात्र कारण उसका चाल-चलन, उसका पूर्ववृत्त और बन्दी की नैसर्गिक प्रवृत्तियां हैं। दण्डादेश का स्वरूप या लम्बाई या दोषसिद्धियों की संख्या या अपराध का घृणाजनक स्वरूप जो कि बन्दी ने किया है वे स्वय सुसंगत नहीं हैं और इन पर अधीक्षक इस हद तक अवधारण नहीं कर सकता जिस हद तक कि उनका सम्बन्ध बन्दी की सुरक्षा या निरापद सुरक्षा से है।

240. धारा 56 को अधिनियमित करने के पीछे विधायी नीति जैसा कि हमने निर्वचन किया है, स्पष्ट और प्रत्यक्ष है और धारा द्वारा विहित मार्गदर्शन का प्रभाव किसी विशेष वर्ग के व्यक्तियों को इस उपबन्ध को लागू करने तक सीमित है। ऐसी स्थिति में धारा 56 को विशिष्ट रूप से लागू करने के लिए कारागार के आन्तरिक मामलों का प्रबन्ध करने के कर्त्तव्यों से भारित कारागार प्राधिकारी में विहित अपेक्षा द्वारा परिगत मनमानापन निश्चित रूप से अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं करेगा।

241. यह कहा गया था कि किसी बन्दी को निरन्तर बेड़ियों में रात दिन रखना बन्दी को मानव से पशु बना देता है और कि इस प्रकार का व्यवहार इतना क्रूर और असाधारण है कि सलाखों और बेड़ियों का प्रयोग संविधान की आत्मा के लिए कलंक है। अब हमारे संविधान में संयुक्त राज्य संविधान के 8वें संशोधन के समान कोई उपबन्ध नहीं है जो राज्य को क्रूर और असाधारण दण्ड अधिरोपित करने से मना करता हो जैसा कि **जगमोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**[1] के मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा बताया गया था। परन्तु हम इस बात से अचेत नहीं हैं कि मानव के साथ ऐसे व्यवहार जो मानव-गरिमा का निरादर करता है, परिहार्य यातना अधिरोपित करता है और मानव को पशु के स्तर तक गिरा देता है, निश्चित रूप से मनमाना होगा और अनुच्छेद 14 के अधीन प्रश्नगत किया जा सकता है। फिर, बन्दी की सुरक्षा का सम्यक् ध्यान और कारागार की सुरक्षा का ध्यान किए बिना काफी लम्बी कालावधि तक असाधारण रूप से सलाखें और बेड़ियां पहनाना निश्चित रूप से धारा 56 के अधीन न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। फिर भी इस मामले में यह पता चला कि चिकित्सीय राय के

[1] (1973) 2 एस० सी० आर० 541.

अनुसार सलाखों और बेड़ियों को हटाने का सुझाव दिया गया था और यह अभिकथन किया गया है कि उन्हें उसके पश्चात् भी बनाए रखा गया है। कोई भी व्यक्ति काफी ज़ोरदार शब्दों में की गई इस बहस का समर्थन नहीं कर सकता कि जेल से भागने को सलाखों और बेड़ियों में निरन्तर रूप से बन्दी को रखने के सिवाय नहीं रोका जा सकता। कारागार प्रशासन और शासकों के बारे में यह एक दुःखद टिप्पणी होगी। इसलिए धारा 56 असाधारण रूप से लम्बी कालावधि के लिए रात-दिन सलाखों और बेड़ियों के प्रयोग को अनुज्ञात कहीं करती और वह भी जब कि बन्दी किसी सुरक्षित कोठरी में परिरुद्ध हो जहां से भागना कुछ अबोधगम्य हो। अब जबकि पिटीशनर की सलाखें और बेड़ियां फरवरी, 1978 में हटा दी गई हैं तो उन्हें फिर से अधिरोपित करने का प्रश्न तब तक नहीं उठता जब तक कि इसमें वर्णित अपेक्षा और इसमें उपबन्धित रक्षोपायों का पालन न किया जाए।

242. परिणामस्वरूप हमारे निर्वचन के अनुसार धारा 56 अनुच्छेद 14 और 21 की अतिक्रामी नहीं है। इसलिए चुनौती असफल होती है।

243. दोनों पिटीशनें तदनुसार निर्णय में किए गए मतों को देखते हुए निपटाई जाती हैं।

244. हम अपने विद्वान बन्धु न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर के इस उद्वेग और चिन्ता में सम्मिलित हैं जो उन्होंने बन्दियों की ओर दृष्टिकोण के पुनिर्धारण के लिए और कारागारों के सुधार के लिए शीघ्र और प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता के बारे में व्यक्त की है। जेल नियमावली विस्तृत रूप से समयातीत है और उसमें कोड़े मारने और गांधी टोपी के प्रयोग का वर्जन जैसी कालदोष-विषयक बातें अभी भी हैं। उसके पुर्नवास और सामाजिक जीवन की मुख्य धारा में उसे बनाए रखने और उसकी स्वीकृति के दृष्टिकोण से बन्दी का बर्बर व्यवहार अन्त में प्रतिउत्पादक बन जाता है।

245. न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर ने हमारे समक्ष उठाये गए महत्वपूर्ण विवाद्यकों से सम्बन्धित विस्तृत निर्णय सुनाया है जो काफी विस्तार में है और जिसमें काफी सतर्कता बरती गई है और चिन्तनशीलता व्यक्त की गई है। हमने न केवल इसलिए कि हम मूल बातों में उनसे भिन्न हैं अपितु इसलिए कि हमने अपने समक्ष बहस किये गये प्रश्नों के कतिपय पहलुओं पर अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करने की आवश्यकता समझी है, अपनी पृथक् राय व्यक्त की है।

पिटीशन खारिज किए गए।

स०/भू०